खण्ड 2, अंक 1, 2013

ISSN : 2321-2934

प्रगति

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की शोध शैक्षणिक पत्रिका

चिकित्सा विज्ञान संस्थान विशेषांक

(आधुनिक एवं दन्त चिकित्सा)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

राजभाषा प्रकोष्ठ

चिकित्सा विज्ञान संस्थान के निदेशक

चिकित्सा विज्ञान संस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का सर्वोच्च संस्थान है। यहाँ पर पदारूढ़ निदेशकों की एक स्वस्थ परम्परा रही है। सभी निदेशक अपने विषय के मूर्धन्य विद्वान थे और अपने सामर्थ्य के अनुसार संस्थान की उन्नति एवं विकास के लिए हर सम्भव प्रयास किए। उनका नाम व कार्यकाल निम्न है :

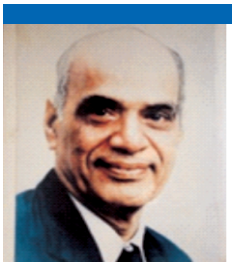

प्रो. के.एन. उडुपा
संस्थापक निदेशक
(1960 से 31 जुलाई 1980)

प्रो. जे. नाग चौधरी
(01.08.80 से 31.10.82)

प्रो. शमेर सिंह
(01.11.82 से 30.06.84)

प्रो. एस.एम. तुली
(01.07.84 से 24.06.87)

प्रो. एम.पी. वैद्य
(25.09.87 से 30.11.90)

प्रो. पी.एन. सोमानी
(01.12.90 से 31.01.91)

प्रो. एच.एस. वाजपेयी
(01.02.91 से 29.02.92)

प्रो. एस.के. गुप्ता
(01.03.92 से 09.08.92)

प्रो. एन.एन. खन्ना
(10.08.92 से 31.12.93)

प्रो. के.एन. अग्रवाल
(01.01.94 से 31.07.94)

प्रो. वी.एन.पी. त्रिपाठी
(01.08.94 से 10.09.95)

प्रो. जे.के. सिन्हा
(11.09.95 से 30.04.96)

प्रो. पी. तिवारी
(01.05.96 से 31.01.97)

प्रो. वी.पी सिंह
(04.02.97 से 02.02.2002)

प्रो. गजेन्द्र सिंह
(04.02.2002 से 19.07.2002,
01.11.2004 से 31.10.2009)

प्रो. एस. मोहन्ती
(20.07.2002 से 31.10.2004)

प्रो. टी.एम. महापात्रा
(01.11.09 से 30.11.12)

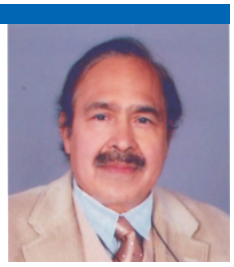

प्रो. आर.जी. सिंह
(01.12.12 से अब तक)

चिकित्सा
विज्ञान
संस्थान

INSTITUTE OF MEDICAL SCIENCES

सर सुन्दरलाल चिकित्सालय

चिकित्सा विज्ञान संस्थान

Graphics : Manish Arora, BHU

ट्रामा सेन्टर

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

BANARAS HINDU UNIVERSITY

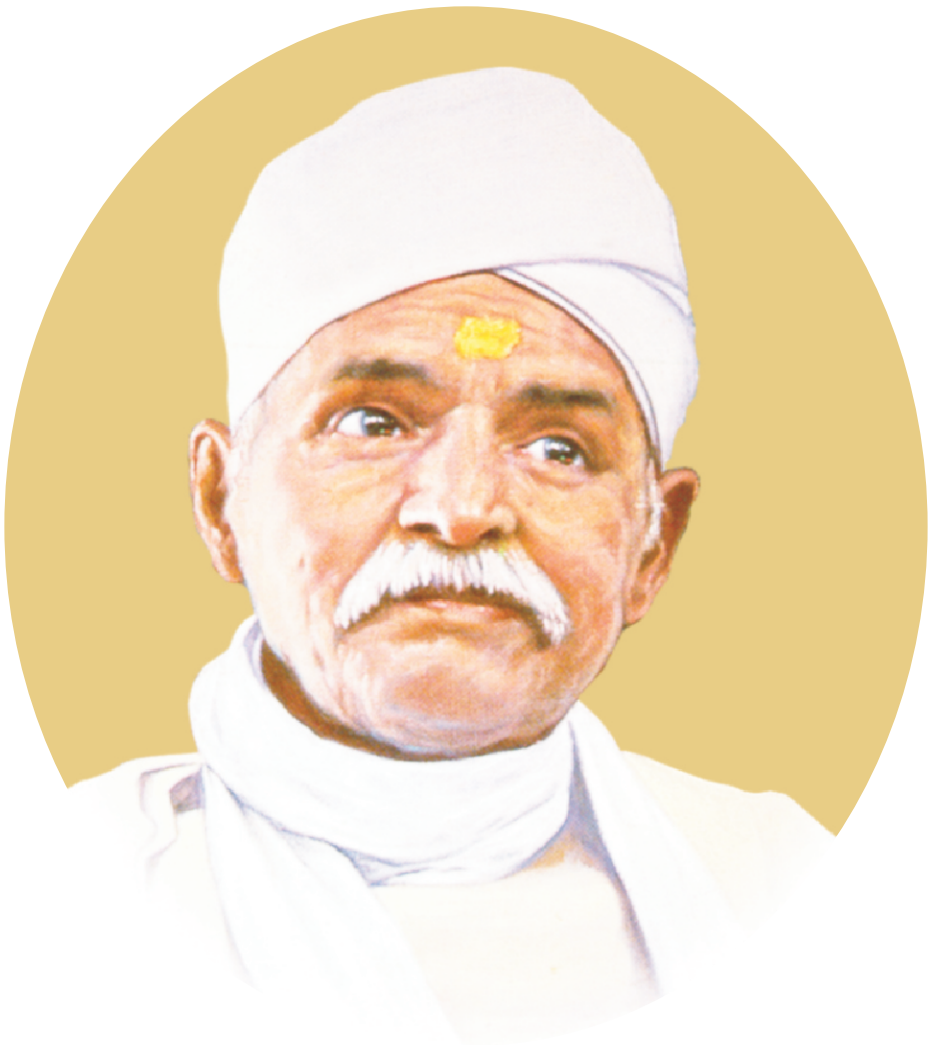

मुझे राज सुख, स्वर्ग सुख और पुनर्जन्म का सुख नहीं चाहिए। मैं दुःख से संतप्त प्राणियों के आर्त को दूर कर सकूँ, यही हमारी पूर्ण कामना है।

महामना पं० मदन मोहन मालवीय

प्रगति

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की शोध–शैक्षणिक पत्रिका

संरक्षक

डॉ. लालजी सिंह

कुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

मुख्य सम्पादक

प्रो. सुशीला सिंह, महिला महाविद्यालय

सम्पादक–मण्डल

प्रो. अवधेश प्रधान, हिन्दी विभाग

प्रो. चम्पा सिंह, हिन्दी विभाग

प्रो. शशिभूषण अग्रवाल, वनस्पति विज्ञान विभाग

प्रो. माया शंकर पाण्डेय, संयोजक, बी.एच.यू. प्रेस

डॉ. सुनीता चन्द्रा, उप–कुलसचिव, कृषि विज्ञान संस्थान

श्री राजन श्रीवास्तव, उप–कुलसचिव, प्रशासन शिक्षण

श्री विचित्रसेन गुप्त, हिन्दी अधिकारी

विशेषांक अतिथि सम्पादक

प्रो. यू.पी. शाही, चिकित्सा विज्ञान संस्थान

डा. अतुल भटनागर, चिकित्सा विज्ञान संस्थान

प्रकाशक: राजभाषा प्रकोष्ठ, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आवरण सज्जा: डॉ. मनीष अरोरा, दृश्य कला संकाय

मुद्रक: बी.एच.यू. प्रेस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

डा. लालजी सिंह
कुलपति
Dr. Lalji Singh Ph.D., D.Sc. (Hon.)
FNA, FASc, FNASc, FNAAS, FTWAS
Padmashri
Bhatnagar Fellow (CSIR)
Former Director, CCMB, Hyderabad
Vice-Chancellor

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
BANARAS HINDU UNIVERSITY
(Established by Parliament by Notification No. 225 of 1916)
VARANASI-221 005 (INDIA)
Phones : 91-542-2368938, 2368339
Fax : 91-542-2369100, 2369951
e-mail : vcbhu1@gmail.com, vc_bhu@sify.com
website : www.bhu.ac.in

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि राजभाषा हिन्दी प्रकोष्ठ, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा पत्रिका "प्रगति" का प्रकाशन किया जा रहा है। प्रगति का यह अंक चिकित्सा विज्ञान संस्थान विशेषांक के रूप में प्रकाशित हो रहा है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के महान संस्थापक महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी की गुणवत्तायुक्त शिक्षा के द्वारा देश व समाज के समग्र विकास में चिकित्सा विज्ञान संस्थान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गरीब से गरीब तबकों तक स्वास्थ्य सेवायें पहुँचाने में चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अग्रणी भूमिका निभाता चला आ रहा है। महामना राष्ट्रभाषा के पुजारी थे तथा उनका मानना था कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होने पर शिक्षा ज्यादा उपयोगी होती है। वैज्ञानिक उपलब्धियों को जनमानस तक पहुँचाये बगैर देश की समृद्धि सम्भव नहीं है। बढ़ती जनसंख्या को सीमित संसाधनों के अंतर्गत उत्तम स्वास्थ्य सुविधायें उपलब्ध कराना कठिन कार्य है परन्तु चिकित्सा विज्ञान संस्थान इन्हीं चुनौतियों को स्वीकार करते हुए संस्थान का विकास करता आ रहा है तथा विश्वस्तरीय चिकित्सा सुविधायें उपलब्ध कराने हेतु कार्यरत है। उक्त पत्रिका में न केवल चिकित्सा विज्ञान संस्थान एवं सर सुन्दरलाल चिकित्सालय द्वारा जनमानस को प्रदान की जाने वाली उच्च स्तरीय सेवाओं तथा अनुसंधान कार्यों को संकलित किया गया है बल्कि भविष्य में संस्थान व चिकित्सालय के योजनान्तर्गत विकास कार्यों की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गयी है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका हमारे क्षेत्र एवं देश में जन-जन को संस्थान में उपलब्ध सेवाओं और चिकित्सीय अनुसंधानों से अवगत कराने में सार्थक सिद्ध होगी।

मैं, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की तरफ से, पत्रिका के इस अंक के प्रकाशन से जुड़े समस्त लोगों को हार्दिक बधाई देता हूँ तथा पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

लालजी सिंह

प्रो. राणा गोपाल सिंह

एम.डी. (वृक्क), एम.एन.ए.एम.एस. (वृक्क), एफ.आई.सी.ए.
एफ.एफ.आई.एम., एफ.आई.एम.ए.ए.एम.एस., एफ.आई.ए.
सी.एम., एफ.जी.एस.आई., एफ.एम.एम., एफ.आई.सी.पी.
एफ.आई.ए.एस.एम., एफ.आई.ए.वाई., एफ.आई.एस.एच.
एफ.आई.सी.ए.ए.आई., एफ.ए.एम.एस.
निदेशक
चिकित्साविज्ञान संस्थान
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005

दूरभाष : 0542–2367568, 2367406, 6703248
2307500, 2309450 (आफिस)
0542–2369936, 2369939 (घर)
फैक्स (91) 0542–2367568
ई–मेल directorims@gmail.com
rgsingh@bhu.ac.in
profrgsingh@yahoo.com

घर – निदेशक बंगलो, पी.जी.–1,
मधुवन, बी.एच.यू., वाराणसी–221005

प्राक्कथन

मुझे जानकर यह प्रसन्नता हुई है कि 'प्रगति' शोध एवं शैक्षणिक पत्रिका का वर्तमान अंक चिकित्सा विज्ञान संस्थान विशेषांक निकल रहा है। परम आदरणीय पद्मश्री डॉ. लालजी सिंह, कुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की यह अप्रतिम सोच आकार ले रही है। यह अत्यन्त ही प्रगतिशील कदम है। उनका सपना है कि संस्थानों, संकायों एवं विभागों में जो कार्य अध्यापकों, छात्रों द्वारा किया जा रहा है, उसे पूरा समाज जाने। पत्रिका में जो लेख हैं वे शोध एवं प्रयोग पर आधारित हैं। इससे आम जनता का ज्ञानवर्धन होगा एवं उनमें जागरूकता आयेगी।

वस्तुतः चिकित्सा क्षेत्र के तीन प्रमुख आयाम हैं– प्रथम– रोग से बचाव, द्वितीय– स्वास्थ्य संवर्धन एवं तृतीय–रोग निदान। पत्रिका में तीनों आयामों पर निबन्ध विशेषज्ञ लेखकों द्वारा लिखे गये हैं। निबन्धों की भाषा सरल, सुबोध एवं सर्वग्राह्य हिंदी है। आशा है, इससे आम जनता लाभान्वित होगी। व्यस्तता के बावजूद जिन लेखकों ने अपना अमूल्य योगदान किया है वे बधाई के पात्र हैं।

चिकित्सा विज्ञान संस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का बृहत्तर संस्थान है। इसमें तीन संकाय समाहित हैं, इसके अतिरिक्त नर्सिंग कालेज एवं सर सुन्दर लाल चिकित्सालय सम्बद्ध हैं। यद्यपि पत्रिका में सभी क्षेत्रों को समाहित करने की चेष्टा की गई है, फिर भी समयाभाव और चिकित्सकों की व्यस्तता के कारण कुछ विषय अछूते रह गये हैं। हम अगले अंक में इस कमी को पूरा करने का प्रयास करेंगे।

चिकित्सा विज्ञान संस्थान एवं सर सुन्दर लाल चिकित्सालय विश्वस्तरीय संस्थान हैं, जो पूर्वांचल की जनता को कम बजट में बेहतर सुविधाएं प्रदान कर रहे हैं। इससे करोड़ों रोगी लाभान्वित हो रहे हैं। रोगियों एवं आम जनता में जागरूकता पैदा करना भी चिकित्सक का एक कर्तव्य है। प्रगति–पत्रिका उस कमी को पूरा करेगी।

हमें आशा एवं विश्वास है कि आम लोग इससे लाभान्वित होंगे।

प्रो. राणा गोपाल सिंह
निदेशक

सम्पादकीय

स्वस्थ व सशक्त भारत के स्वप्नद्रष्टा पं. मदनमोहन मालवीय जी ने विश्वविद्यालय के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप से चिकित्सा विज्ञान शिक्षा और उसी से सम्बद्ध एक चिकित्सालय की स्थापना कर उसके विकास का प्राविधान किया। स्वास्थ्य सेवा का उद्देश्य समस्त भारतवासियों के स्वास्थ्य के स्तर को अधिक से अधिक सम्भव ऊँचाई तक पहुँचाना है। भारत के संविधान के अनुसार हर प्रदेश का यह प्रमुख दायित्व बनता है कि वो अपने समस्त प्रदेशवासियों के पोषण और रहन–सहन के स्तर को अपेक्षित मानक तक बढ़ाये और सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार लाये। स्वास्थ्य सम्बन्धी चुनौतियाँ विशेष रूप से कुपोषण, मातृ–शिशु मृत्यु दर और अनेक बीमारियाँ जो सुरक्षित पीने के पानी की कमी से होती हैं, उनसे मुक्त होना है। देश में लोक स्वास्थ्य क्षेत्र के समानान्तर निजी स्वास्थ्य क्षेत्र हैं। शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों से लोग अधिकतर निजी स्वास्थ्य सेवाओं का ही प्रयोग करते हैं। ऐसी स्थिति में लोक स्वास्थ्य क्षेत्र में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान का अपना विशेष स्थान और योगदान है। यह संस्थान गुणवत्तायुक्त स्वास्थ्य सेवायें उत्तर प्रदेश, बिहार, नेपाल से आये विशाल जनसमूह को उपलब्ध कराता है।

प्रगति के चिकित्सा विज्ञान संस्थान विशेषांक के अंक में विभिन्न स्वास्थ्य सेवाएँ और महत्वपूर्ण अनुसन्धानों की जानकारी जनहित में उपलब्ध है। इस अंक के सभी सहयोगी लेखक साधुवाद के हकदार हैं क्योंकि तकनीकी वैज्ञानिक विषय को उन्होंने सरल हिन्दी भाषा में अथक प्रयास कर उपलब्ध कराया है। सम्पादक मण्डल की ओर से और अपनी ओर से मैं उनका हृदय से आभार प्रकट करती हूँ।

हम माननीय कुलपति डॉ. लालजी सिंह का हृदय से आभार प्रकट करते हैं जो प्रगति पत्रिका के मूल प्रेरणास्त्रोत हैं। उनका मानना है कि विज्ञान और वैज्ञानिक चिकित्सीय अनुसन्धानों का जनहित में ज्यादा से ज्यादा उपयोग हो और उनका सन्देश कि विश्वविद्यालय अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को विभिन्न आयामों के द्वारा – प्रमुख रूप से चिकित्सा विज्ञान संस्थान के माध्यम से पूरा कर रहा है। प्रगति पत्रिका इसी दिशा में एक प्रयास है।

सम्पादन समिति के सभी सदस्यों का और उन सभी का जिनका सहयोग हमें सहजता से प्राप्त रहा है, हम सभी के प्रति धन्यवाद व्यक्त करते हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के राजभाषा प्रकोष्ठ का यह सराहनीय प्रयास है। अपेक्षा है प्रकोष्ठ इसी प्रकार विश्वविद्यालय के शोध–शैक्षणिक पक्ष को जन–जन तक पहुँचाता रहेगा।

सुशीला सिंह
मुख्य सम्पादक

चिकित्सा विज्ञान संस्थान की उपलब्धियों की एक झलक

चिकित्सा विज्ञान संस्थान का क्रमिक विकास

1924 सर सुन्दर लाल चिकित्सालय का शिलान्यास।

1925. 96 शैय्या के साथ अस्पताल का शुभारम्भ।

1927 आयुर्वेदिक महाविघालय की शुरुआत।

1960 आधुनिक चिकित्सा पद्धति के साथ कॉलेज आफ मेडिकल साइंसेज की शुरुआत।

1962 ट्रामा वार्ड की शुरुआत।

1963 नर्सिंग स्कूल की शुरुआत।

1964 नेत्र चिकित्सालय का शुभारम्भ।

1965 बालरोग चिकित्सालय का शुभारम्भ एवं भारत का प्रथम वृक्क प्रत्यारोपण।

1968 रेडिएशन थिरेपी की शुरुआत।

1971 बहिरंग एवं अन्तरंग भवन का शिलान्यास, दन्त रोग विज्ञान एवं मानसिक रोग विभाग की शुरुआत

1976 नये बहिरंग एवं अन्तरंग भवन का जनता की सेवा के लिए लोकार्पण एवं डीएम/एमसीएच पाठ्यक्रम की शुरुआत।

1978 विशेष विशेषज्ञता अनुभाग अस्तित्व में आया।

1979 केन्द्रीय नैदानिक प्रयोगशाला की शुरुआत, एमडीएस पाठ्यक्रम की शुरुआत।

1993 जापान द्वारा 30 करोड़ मूल्य की उच्चीकृत मशीनरी प्राप्त।

1995 सी टी स्कैन की स्थापना एवं ब्लड बैंक का आधुनिकीकरण एवं कम्पोनेन्ट थिरेपी की शुरुआत।

1998 विशेष विशेषज्ञता वाले विभाग प्लास्टिक सर्जरी, यूरोलाजी, कार्डियोथोरेसिक सर्जरी, न्यूरोसर्जरी, पेडियाट्रिक सर्जरी, गैस्ट्रोइन्ट्रोलाजी, इन्डोक्रायनोलाजी, न्यूरोलाजी, कार्डियोलाजी, नेफ्रोलाजी की स्थापना।

1999 एम आर आई की सुविधा उपलब्ध एवं वृक्क प्रत्यारोपण का प्रारम्भ।

2000 16 शैया वाला सुसज्जित आई सी यू की शुरुआत।

2001 वृक्क प्रत्यारोपण परियोजना की शुरुआत।

2005 सर्जिकल आंकोलाजी विभाग की स्थापना।

2006 नवजात शिशु भवन का निर्माण।

2008 दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय में बी डी एस पाठ्यक्रम की शुरुआत।

2009 कालेज आफ नर्सिंग की शुरुआत, ओपेन हार्ट सर्जरी की शुरुआत।

2011 कार्डियो कैथ लैब की शुरुआत एवं नये रक्त शोधन विभाग लोकार्पण।

2012 आश्रय का लोकार्पण।

2013 आपात चिकित्सा विज्ञान एवं वृद्ध चिकित्सा विभाग की शुरुआत।

2014 रक्त एवं इम्यूनो हिस्टोलाजी सेवा का शुभारम्भ।

2014 दन्त संकाय एवं बाल चिकित्सा विभाग का विस्तारीकरण।

सर सुन्दरलाल अस्पताल में उपलब्ध मुख्य सुविधाएं

कैंसर रोगियों के लिए कोबाल्ट थिरेपी की उपलब्धता।
हेमोडायलिसिस की उपलब्धता।
किडनी स्टोन की चिकित्सा हेतु लीथोट्रिप्सी।
किडनी प्रत्यारोपण।
16 बिस्तरों वाला सघन चिकित्सा इकाई।
कार्डियक पेसेमेकर की सुविधा।
नवजात शिशु शल्य के लिए सघन चिकित्सा इकाई।
इंडोस्कोपी की सुविधा।
क्षारसूत्र थिरेपी,
पंचकर्म थिरेपी।
नेत्र कोष
64 स्लाइस सी.टी.स्कैन।
अन्नपूर्णा भोजनालय
स्वच्छ रसोईघर
पी.सी.ओ. बूथ।
स्वस्थ बच्चा एवं टीकाकरण केन्द्र।
जेरियाट्रिक क्लीनिक।
नशा- उन्मूलन केन्द्र।
नेस्ले कॉफी कार्नर।
घाव क्लीनिक।
डाट्स क्लीनिक।
हेमेटोलॉजी क्लीनिक।
ग्लूकोमा क्लीनिक।
एडोलसेन्ट एवं मेनोपाजल क्लीनिक।
ए आर टी क्लीनिक।
पोस्ट पार्टम क्लीनिक।
डायविटिक कम्पलीकेशन क्लीनिक।
थैलेसीमिया डे केयर यूनिट।
फिजियोथिरेपी एवं पुनर्वास इकाई।
विश्राम कुटीर।
1.5 टेस्ला एम. आर. आई।
कार्डियो कैथ लैबोरेटरी।
ब्लड कम्पोनेन्ट थिरेपी
लीनियर एक्सीलेटर की स्थापना।
ओपेन हार्ट सर्जरी।
दन्त रोग सेवायें।
आई बैंक एवं कार्निया प्रत्यारोपण।
सायंकालीन बहिरंग रोगी सेवा।

भविष्यगत योजनाएं

ट्रामा सेन्टर।
बोनमैरो ट्रांसप्लान्टेशान एण्ड स्टेम सेल रिसर्च।
टरश्यरी कैंसर सेन्टर।
हास्पिटल इन्फारमेशन सिस्टम एण्ड टेलीमेडिसिन।
प्रशासनिक भवन/ मेट सेल का निर्माण।
सेन्ट्रल फैसिलिटि फार इम्यूनालार्जी
स्थापना स्थल पर आवासीय चिकित्सक छात्रावास (सुश्रुत छात्रावास)।
बी एस एल-3 कन्टेन्मेन्ट (बायो सेफ्टी-3)
बी एस एल-4 (बरकछा)

विषय सूची

1. **चिकित्सा विज्ञान संस्थान के सतत् बढ़ते कदमः एक विहंगम दृष्टि** **1**
   —प्रो. राणा गोपाल सिंह एवं डा. रामजीत विश्वकर्मा
2. **अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण एवं स्टेम कोशिका शोध केन्द्र – एक परिचय** **6**
   —डा. एस.पी. मिश्रा, डा. वेदव्रत मुखोपाध्याय एवं डा. आशुतोष वाजपेयी
3. **ट्रामा सेन्टरः एक वरदान** **8**
   —प्रो. डी.के. सिंह
4. **चिकित्सा विज्ञान संस्थान के संस्थापक प्रोफेसर के.एन. उडुपा** **10**
   —डॉ. रामजीत विश्वकर्मा
5. **चिकित्सा विज्ञान संस्थान—पूर्वांचल का एम्स** **12**
   —प्रो. यू.पी. शाही
6. **कालाअजार रोग चुनौतियाँ और समाधान** **13**
   —डॉ. संगीता कंसल एवं प्रो. श्याम सुन्दर
7. **आपात चिकित्सा प्रभाग : सर सुन्दरलाल चिकित्सालय** **18**
   —डॉ. कुन्दन कुमार
8. **अस्थि चिकित्सा विभाग का वर्तमान स्वरूप** **19**
   —प्रो. अमित रस्तोगी
9. **औषधि गुण एवं प्रायोगिकी विज्ञान विभाग (फार्माकोलॉजी)** **20**
   —प्रो. बी.एल. पाण्डेय
10. **डेंगू बुखार** **21**
    —डॉ. जया चक्रवर्ती एवं प्रो. श्याम सुन्दर
11. **जनरल सर्जरी विभाग** **24**
    —प्रो. राहुल खन्ना
12. **पैथोलॉजी एवं इम्यूनोलॉजी विभाग में उपलब्ध सुविधाएं** **25**
    —प्रो. ऊषा
13. **इंडोक्राइनोलॉजी एवं मेटाबोलिज्म विभाग** **28**
    —प्रो. एस.के. सिंह
14. **विधि चिकित्सा शास्त्र विभाग (फॉरेन्सिक विज्ञान)** **29**
    —प्रो. एस.के. त्रिपाठी
15. **मस्तिष्क ज्वरः समस्या एवं रोकथाम** **30**
    —डॉ. सैफ अनीस
16. **संज्ञाहरण (निःसंज्ञा) जन जागरण** **31**
    —डॉ. अनिल कुमार पासवान
17. **बाल शल्य विभाग— परिचय और उपलब्धियाँ** **34**
    —विजयेन्द्र कुमार, ए.एन. गंगोपाध्याय, डी.के. गुप्ता एवं एस.पी. शर्मा

18. **कार्डियोवैस्कुलर एवं थोरैसिक सर्जरी (हृदय, वक्ष एवं फेफड़ा शल्य) विभाग** **36**
—प्रो. दमयन्ती अग्रवाल
19. **नाक, कान, गला विभाग** **37**
—प्रो. राजीव कुमार जैन
20. **रेडियोथेरैपी एवं रेडिएशन मेडिसीन विभाग** **38**
—प्रो. यू.पी. शाही
21. **दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय की कार्यविधियाँ, विशेषताएँ एवं उपलब्ध सुविधायें** **39**
—प्रो. टी.पी. चतुर्वेदी
22. **मधुमेहः पूर्ववर्ती इतिहास एवं वर्तमान शोध की संभावनाएँ** **41**
—प्रो. के.के. त्रिपाठी
23. **मधुमेह सम्बन्धी जानकारी** **43**
—प्रो. एस.के. सिंह
24. **कटे हुए होंठ और तालूः प्लास्टिक सर्जन उत्तम परिणाम के लिए एकमात्र विकल्प** **48**
—प्रो. वी. भट्टाचार्य एवं डॉ. एन. के. अग्रवाल
25. **पौरूष ग्रन्थि (प्रोस्टेट) का बढ़ाव लक्षण एवं उपचार** **51**
—प्रो. यू.एस. द्विवेदी
26. **पित्ताशय की थैली का कैंसर** **58**
—रूही दीक्षित एवं विजय कुमार शुक्ला
27. **कमरदर्द** **63**
—डॉ. एस.के. सर्राफ
28. **स्तन कैंसर** **68**
—प्रो. अजय खन्ना
29. **जलने की घटनाएंः कारण, निवारण एवं प्राथमिक उपचार** **72**
—प्रो. प्रदीप जैन एवं वैभव जैन
30. **एचआईवी/एआईडीएस के विषय में महत्वपूर्ण एवं आवश्यक जानकारियाँ** **74**
—प्रो. यू.पी. शाही
31. **एच.आई.वी./एड्स के क्षेत्र में चिकित्सा विज्ञान संस्थान का योगदान** **76**
—डॉ. प्रद्योत प्रकाश
32. **दमा : लक्षण, बचाव एवं इलाज** **79**
—डॉ. जी.एन. श्रीवास्तव
33. **आँखों में चोट (आकुलर इन्जरी)ः कारण, जटिलताएं एवं रोकथाम** **83**
—डॉ. राजेन्द्र प्रकाश मौर्या, प्रो. विरेन्द्र प्रताप सिंह एवं प्रो. महेन्द्र कुमार सिंह
34. **आधुनिक कोशिका और जीन चिकित्सा पद्धत्तियाँ** **88**
—प्रो. राजावशिष्ठ त्रिपाठी
35. **जोड़—दर्द (आर्थराइटिस) के निदान में पैथोलॉजी जाँच की भूमिका** **93**
—प्रो. ऊषा एवं डॉ. शशिकांत च.उ. पटने

36. **एफ.एन.ए.सी.–कैंसर के जाँच की एक सरल विधि** **96**
–प्रो. मोहन कुमार
37. **वृद्धावस्था में रोगों से बचाव** **98**
–प्रो. आई.एस. गम्भीर
38. **रेडियोलॉजिकल निदान के नवीन आयाम** **101**
–प्रो. ओ.पी. शर्मा
39. **ग्लूकोमा – अंधता से प्रकाश की ओर** **103**
–प्रो. एम.के. सिंह एवं डॉ. प्रशान्त भूषण
40. **नेत्रदान, नेत्रबैंक एवं हमारी नैतिक जिम्मेदारी** **105**
–डॉ. दीक्षा प्रकाश, डॉ. अभिषेक चंद्रा एवं प्रो. ओ.पी.एस. मौर्य
41. **कान का बहनाः कारण एवं निवारण** **107**
–प्रो. राजेश कुमार
42. **उच्च रक्तचाप** **110**
–डॉ. आशुतोष बाजपेयी एवं डॉ. रागिनी श्रीवास्तव
43. **रहस्यमयी रक्त कणिका–''प्लेटलेट''** **112**
–डॉ. प्रतिभा गवेल एवं डॉ. डी. दास
44. **मुख कैंसर की पूर्वावस्था के रोगः एक दृष्टि में** **114**
–डा. अखिलेश चन्द्र, डा. राहुल अग्रवाल, डा. अदित, डा. अजीत परिहार एवं डा. अर्चना अग्निहोत्री
45. **हृदय रोग का उपचार और आधुनिक तकनीक** **117**
–डॉ. धर्मेन्द्र जैन
46. **ओपेन हार्ट सर्जरी** **121**
–डॉ. सिद्धार्थ लखोटिया
47. **कमर दर्द – कारण व निवारण** **124**
–डॉ. आर. के. गुप्ता
48. **गुर्दा रोगः लक्षण एवं निदान** **126**
–डॉ. शिवेन्द्र सिंह
49. **धूम्रपान का मानव स्वास्थ्य एवं वातावरण पर दुष्प्रभाव** **128**
–डॉ. शशिकांत च.उ. पटने
50. **मानव स्वास्थ्य में अनुजीवियों (प्रोबायोटिक्स) का महत्व** **132**
–डॉ. अजय कुमार गोयल, डॉ. परितोष मालवीय, डॉ. सरिता परिहार एवं डॉ अजित विक्रम परिहार
51. **एन्टीऑक्सीडैन्ट एवं फ्री रेडिकल्स** **135**
–डॉ. आभाज्योति, डॉ. वेद ब्रत एवं डॉ. एस.पी. मिश्रा
52. **बायोडिग्रेडेबल इम्पलाण्ट : अस्थि शल्य चिकित्सा हेतु वरदान** **137**
–प्रो. अमित रस्तोगी एवं डॉ. कुमार प्रीतेश
53. **प्रसवोत्तर रक्तस्राव** **139**
–डॉ. अंजली रानी

54. **कृपया मुझे जानिए–मौखिक गर्भ निरोधक गोलियाँ** **142**
–डॉ. मधु जैन
55. **बहु अंगीय चोट (पॉलीट्रामा): कारण एवं प्रबन्धन** **144**
–डॉ. राजेन्द्र प्रकाश मौर्या
56. **एक बार में रूट कैनाल उपचार–नया दौर** **150**
–डॉ. पुष्पेंद्र कुमार वर्मा, डॉ. रूचि श्रीवास्तव, डॉ. अखिलेश चन्द्र एवं डॉ. अतुल भटनागर
57. **दाँतो में सनसनाहट: कारण एवं निवारण** **152**
–डॉ. रूचि श्रीवास्तव, डॉ. अखिलेश चन्द्र, डॉ. पुष्पेन्द्र वर्मा एवं डॉ. रजत कुमार सिंह
58. **बच्चों के टेढ़े–मेढ़े दाँत एवं उनका उपचार (आर्थोडोन्टिक उपचार)** **154**
–प्रो. टी.पी. चतुर्वेदी
59. **दाँत में कीड़ा लगना एवं रोकथाम** **157**
–डॉ. राजेश बंसल
60. **दन्तविहीन अवस्था में मरीज की मनोदशा** **159**
–डॉ. अतुल भटनागर, डॉ. टी.पी. चतुर्वेदी एवं डॉ. पवन कुमार दूबे
61. **डेन्टल इम्प्लान्ट–कृत्रिम दाँतो का एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प** **162**
–डॉ. रोमेश सोनी, डॉ. अखिलेश चन्द्र, डॉ. राजुल विवेक एवं डॉ. अंकिता सिंह
62. **मुँह की जलन: एक रहस्य** **163**
–डॉ. अदित, डॉ. अखिलेश चन्द्र एवं डॉ. राहुल अग्रवाल
63. **नर्सिंग व्यवसाय** **165**
–डी.एल.एस. अग्रहरी
64. **बाल रोग परिचर्या के महत्वपूर्ण आयाम: चुनौतियाँ एवं समाधान** **167**
–पूनम ज्योति राना
65. **रोगी परिचर्या में एक कुशल नर्स की मूलभूत विशिष्ट योग्यताएं** **171**
–ज्योति श्रीवास्तव
66. **सामुदायिक स्वास्थ्य एवं नर्सिंग** **173**
–कमला सिंह
67. **चिकित्सा क्षेत्र में योग का महत्व** **175**
–अभिषेक कुमार
68. **मरीजों के अधिकार** **176**
–प्रो. यू.पी. शाही
69. **चिकित्सक–रोगी सम्बन्ध एवं मर्यादाएं** **179**
–डॉ. आर.के. उपाध्याय
70. **नेशनल फैसिलिटी फॉर ट्राइबल एण्ड हर्बल मेडिसिन** **181**
जनजातीय औषधियों के वैज्ञानिक अध्ययन का अतिविशिष्ट एकल राष्ट्रीय केन्द्र
–डॉ. सत्यप्रकाश, डॉ. प्रवीण कुमार सिंह, डॉ. सुषमा तिवारी एवं राजीव कुमार दूबे

चिकित्सा विज्ञान संस्थान के सतत् बढ़ते कदमः एक विहंगम दृष्टि

प्रो. राणा गोपाल सिंह एवं डा. रामजीत विश्वकर्मा

चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चिकित्सा विज्ञान संस्थान का वर्तमान स्वरूप हमारे अद्भुत, विलक्षण प्रतिभा एवं करिश्माई व्यक्तित्व के धनी पूर्व निदेशकों, पूर्व कुलपतियों, अध्यापकों एवं कर्मचारियों के कठिन परिश्रम, लगन व उदात्त भावना का प्रतिफल है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रवेश द्वार के समीप स्थित यह संस्थान और उससे सम्बद्ध सर सुन्दर लाल चिकित्सालय पूर्वी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बिहार, झारखण्ड़, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं पड़ोसी देश नेपाल के रोगियों की सेवा कर रहा है। सर सुन्दर लाल चिकित्सालय पूर्वांचल का एम्स कहलाता है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय–गौरवमयी विद्यामन्दिर की स्थापना महान राष्ट्रवादी नेता, स्वतन्त्रता सेनानी, विधि वेत्ता, समाज सुधारक, शिक्षाविद, परमश्रद्धेय प्रातः स्मरणीय महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय जी के कर कमलों द्वारा सन् 1916 में पतित पावनी गंगा तट पर हुई और तब से इस विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खूब ख्याति अर्जित की और शिक्षा जगत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक कीर्तिमान स्थापित किया है। महामना जी दूरदर्शी व भविष्य दृष्टा थे। वे समग्रता के पक्षधर थे। उन्होंने ऐसे विद्यामन्दिर की स्थापना की, जहाँ एक छोर पर वेद ऋचाएं गुंजायमान होती हैं, प्राच्य विद्याओं पर गहन परिचर्चा होती है, तो दूसरे छोर पर अर्वाचीन विद्याओं का पठन–पाठन व शोध होता है। इस महान विभूति के ज्योतिर्मय प्रकाश पुँज की पृष्ठभूमि में दूसरा नाम जो देदीप्यमान नक्षत्रों की तरह उभरकर सामने आता है जो इस महान विश्वविद्यालय के छात्र भी थे, वह हैं हमारे प्रातः स्मरणीय प्रो. के. एन. उडुपा जी। वे चिकित्सा विज्ञान संस्थान के संस्थापक निदेशक भी थे। वे विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने ऐसे चिकित्सा विज्ञान संस्थान की स्थापना की जहाँ एक ही छत के नीचे आधुनिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद दोनों विधाओं में उत्कृष्ट शिक्षा, शोध एवं प्रशिक्षण मिलता है। हम अपनी व संस्थान परिवार की ओर से इन दोनों महान् विभूतियों को शत्–शत् नमन करते हैं।

अगर हम अपना जीवन मरीजों के सेवार्थ, चिकित्सीय शिक्षा के प्रसार में तथा मूल अनुसंधान एवं शोध कार्यो के माध्यम से ज्ञान के विभिन्न आयामों को विस्तारित करने के प्रति समर्पित कर दें तो यही इन महान् विभूतियों के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। मैं आशा करता हूँ कि हमारा मरीजों, शोध एवं चिकित्सा के प्रति हदय से समर्पण ही उनके द्वारा स्थापित मूल्यों की ईमानदारी से रक्षा होगी।

महामना मालवीय जी व्यक्तित्व विकास और स्वास्थ्य पर ध्यान विशेष देते थे। उनका सबसे प्रिय श्लोक निम्न था और उसमें कहे विशेष मर्म का आजीवन पालन भी किया।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग नाऽपुनर्भवम।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

(मुझे न तो राज्य की कामना है और न स्वर्ग की और न मैं पुनर्जन्म से मुक्ति चाहता हूँ। दुःख से पीड़ित प्राणियों के कष्ट दूर करने में मैं सहायक हो सकूँ, यही मेरी कामना है)।

महामना जी पारम्परिक ज्ञान को अक्षुण्ण रखने का उपाय सोचते रहते थे। स्वास्थ्य संवर्धन एवं ज्ञान प्रसार के लिए आयुर्वेद चिकित्सा पद्वति को बढावा देने के लिए उन्होने 1920 में संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय के अन्तर्गत आयुर्वेद विभाग की स्थापना की और सन् 1922 में आयुर्वेद में प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किया गया। सन् 1927 में उसे उच्चीकृत कर अलग आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना की। भारत में विश्वविद्यालय द्वारा संचालित यह आयुर्वेद का पहला संस्थान था जहाँ पर आयुर्वेद एवं आधुनिक चिकित्सा विधि द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता था। यहाँ पर पूरे देश से लोग प्रशिक्षण के लिए आते थे। परन्तु

समन्वित पाठ्यक्रम के कारण न तो यहाँ के स्नातक छात्रों को सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व मिलता था और न तो अपनी चिकित्सा पद्धति के संस्थानों में।

विश्वविद्यालय अकेले इस समस्या का समाधान खोजने मे असमर्थ था। सरकार की तरफ से भी कोई पहल नही हो रही थी। फलतः छात्रों ने हड़ताल कर दिया और अन्ततः शैक्षिक सत्र 1958–59 में महाविद्यालय को बन्द करना पडा। छात्रों की मांग थी कि जो व्यक्ति दोनों चिकित्सा पद्धतियों (आधुनिक एवं आयुर्वेद) में पारंगत हो, वही यहाँ का प्रधानाचार्य बने। वह महारत केवल प्रो. के. एन. उडुपा में थी, लेकिन वे उस समय हिमाचल प्रदेश में सरकारी सेवा में सर्जन पद पर कार्यरत थे। सरकारी तन्त्र के हस्तक्षेप पर प्रो. के. एन. उडुपा को यहाँ प्रधानाचार्य बनाकर भेजा गया।

डॉ. जीवराज मेहता, मुख्यमंत्री महाराष्ट्र द्वारा चिकित्सा विज्ञान संस्थान भवन का शिलान्यास (1961)

एम.बी.बी.एस. उपाधि की मान्यता देते हुए ब्रिटिश मेडिकल कौंसिल के सदस्य (1964)

इन्ही झंझावातों के बीच प्रो. के. एन. उडुपा ने प्रधानाचार्य का गुरूतर भार संभाला। तत्कालीन कुलपति डा. वी. एस. झा ने आयुर्वेद महाविद्यालय में चल रहे विवाद का स्थायी हल निकालने के लिए अपनी अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन किया जिसमें चार और सदस्य थे। समिति ने कई चक्र मंत्रणा के बाद यह निर्णय लिया कि इस महाविद्यालय को बन्द कर दिया जाय और उसके स्थान पर आयुर्वेद में एक स्नातकोत्तर एवं शोध केन्द्र की स्थापना किया जाय जिसमें अध्ययन–अध्यापन के साथ इस क्षेत्र में विस्तृत वैज्ञानिक शोध भी किया जाय और साथ ही यह निर्णय लिया गया कि इसके साथ एक मेडिकल कालेज की स्थापना की जाय जो स्नातक तक के छात्रों को प्रशिक्षित करे।

इस प्रस्ताव का अनुमोदन विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी एवं शैक्षिक परिषदों ने प्राथमिकता के आधार पर पारित किया। तत्कालीन वित्त मंत्री डा. सी. डी. देशमुख जो कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष भी थे, उन्होंने इस प्रस्ताव में रूचि ली। स्वास्थ्य मंत्रालय, योजना आयोग के हस्तक्षेप के बाद अन्ततोगत्वा सन् 1960 में मेडिकल कालेज खोलने का मार्ग प्रशस्त हुआ। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने 40 छात्रों को प्रवेश के लिए स्वीकृति दी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय केन्द्रीय विश्वविद्यालय होने के कारण प्रवेश प्रक्रिया अखिल भारतीय स्तर पर करवाने का निर्णय लिया गया। प्रवेश प्रक्रिया प्रणाली अखिल भारतीय चिकित्सा विज्ञान संस्थान (एम्स) को अपनाया गया।

अखिल भारतीय मेडिकल प्रवेश परीक्षा के बाद प्रवेश पाये एम.बी.बी.एस प्रथम वर्ष के छात्रों की कक्षाएं प्राचीन आयुर्वेदिक कालेज में 01 सितम्बर 1960 से प्रारम्भ हुई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित प्रथम विजिटिंग कमेटी ने विश्वविद्यालय का दौरा किया जिसके अध्यक्ष डा. बी. बी. दीक्षित, निदेशक, एम्स, नई दिल्ली थे, अनुशंसा की कि मेडिकल कालेज का नया भवन बनाया जाय एवं आवर्ती एवं अनावर्ती खर्चों का अनुमोदन किया। सन् 1962–63 में भारतीय चिकित्सा परिषद् के प्रतिनिधियों ने मेडिकल कालेज का निरीक्षण किया। विश्वविद्यालय के सुरम्य वातावरण में स्थित इस कालेज के विकास पर प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि पूरे देश में यह पहला मेडिकल कालेज है जो विश्वविद्यालय परिसर

में स्थित है और इसका पूरा प्रशासनिक नियन्त्रण इसके अधीन है।

सन् 1965–66 में पूरा कालेज नई बिल्डिंग में व्यवस्थित हो गया। पुनः सन् 1965 में भारतीय चिकित्सा परिषद् ने चिकित्सा विज्ञान संस्थान निरीक्षण के लिए निरीक्षण दल भेजा। सभी सदस्यों ने इसके प्रगति पर संतोष प्रकट किया और एक अच्छा प्रतिवेदन भारतीय चिकित्सा परिषद को सौंपा। फलतः चिकित्सा विज्ञान संस्थान को एम.बी.बी.एस. स्नातक पाठ्यक्रम चलाने के लिए मान्यता मिल गयी। इसी वर्ष ब्रिटिश सरकार की जनरल मेडिकल कौंसिल के प्रतिनिधियों व वहाँ के कुछ शिक्षाविदों ने कालेज का निरीक्षण किया। उन लोगों ने भी कालेज की भूरि–भूरि प्रशंसा की और कालेज एवं एम.बी. बी.एस. उपाधि को ब्रिटिश जनरल मेडिकल कौंसिल द्वारा भी मान्यता मिली। यह सब यहाँ के अध्यापकों, कर्मचारियों के कठिन श्रम, लगन व निष्ठा से संभव हो पाया। इसमें हमारे संस्थापक निदेशक प्रोफेसर के. एन. उडुपा की दूरदृष्टि, कुशल प्रबन्धन व प्रशासनिक दक्षता की मुख्य भूमिका थी। सन् 1966 में कालेज में मेडिसिन एवं सर्जरी में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम की शुरूआत हुई।

प्रो. के. एन. उडुपा ने जैव–चिकित्सा प्रयोगशाला की स्थापना की जिसमें अन्तर्विषयक शोध को प्रमुखता दी गयी। केन्द्रीय सरकार की एजेन्सियाँ जैसे आई.सी.एम. आर., यू.जी.सी., सी.एस.आई.आर., डी.एस.टी., डी.बी.टी., इंसा आदि ने शोध के लिए धन उपलब्ध कराया। किसी चिकित्सा संस्थान के लिए एक अच्छे चिकित्सालय की उपलब्धता बहुत आवश्यक है जिससें स्नातक छात्र प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें। तत्कालीन कुलपति न्यायमूर्ति एन.एच. भगवती ने इसमें रूचि ली। सन् 1959 में सरसुन्दर लाल चिकित्सालय में मात्र 100 बिस्तर थे। जिसमें 40 आयुर्वेद, 40 आधुनिक चिकित्सा एवं 20 छात्रों के लिए आवंटित था। कालेज में कम से कम 300 बिस्तरों की आवश्यकता थी। धन का अभाव था। उस समय इस विकट स्थिति में जिस व्यक्ति ने सबसे अधिक मदद की वह थे स्व. ज्योतिभूषण गुप्ता जो चिकित्सालय के मानद कोषाध्यक्ष थे। उन्होने धन का प्रबन्ध दान, चन्दा, ऋण आदि से किया।

इसी क्रम में बाल चिकित्सालय का निर्माण उ.प्र. सरकार के सौजन्य से हुआ। जिसका उद्घाटन सन् 1965 में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने किया। उ.प्र. सरकार एवं श्री भुवालका के वित्तीय सहयोग से आँख, कान, गला अस्पताल का निर्माण हुआ जिसका उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री–भारत सरकार, श्री लाल बहादुर शास्त्री ने किया। समय–समय पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सचिव श्री आर. के. छाबडा ने चिकित्सालय की भरपूर मदद की। नई ओ.पी.डी. बिल्डिंग बनाने व सुसज्जित करने का श्रेय पूर्व कुलपति डा. के. एल. श्रीमाली को जाता है, उन्ही के सत्प्रयास से बहिरंग, अन्तरंग, आपरेशन थिएटर, प्रयोगशाला आदि व्यवस्थित हो पाया।

प्रो. के. एन. उडुपा के प्रयास से आयुर्वेद में स्नातकोत्तर की उपाधि की मान्यता सन् 1963 में मिली जो कालेज का अंग था । स्थापना काल में कालेज का एक ही संकाय था। सन् 1978 में आयुर्वेद को अलग संकाय की मान्यता मिली। मेडिकल कालेज की उन्नति एवं विकास के कारण इसे विश्वविद्यालय संगठन ने कोलैबोरेटिव रिसर्च सेन्टर बनाया। सर्जरी एवं मेडिसिन में एम.सी.एच. एवं डी.एम. का पाठ्यक्रम 1976 में प्रारम्भ हुआ। सन् 1965 में एम.बी.बी.एस. का पहला बैच निकला।

संस्थान द्वारा संचालित एम.बी.बी.एस. को मान्यता देते हुए भारतीय चिकित्सा परिषद के सदस्य (1969)

संस्थान एवं सर सुन्दरलाल चिकित्सालय का निरीक्षण करते हुए श्री मोरारजी देसाई (1965)

संस्थान का अपना खूबसूरत ग्रन्थालय है। यहाँ पर नर्सिंग ट्रेनिंग 1960 मे प्रारम्भ हुई। स्कूल आफ नर्सिगं का उद्घाटन 1963 मे डा. सुशीला नायर, केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री के हाथो हुआ। सन् 2009–10 में डिप्लोमा के स्थान पर बी.एस.सी. नर्सिग पाठ्यक्रम की शुरूआत नर्सिग कालेज में हुई।

संस्थान में सन् 1974 से रेजीडेंसी प्रणाली लागू हुआ। सर्जरी विभाग का एक अनुभाग डेटल सर्जरी सन् 1971 में विभाग के रूप में परिणित हुआ। इस संकाय में बी.डी.एस. की कुल 50 सीटें है। संस्थान धीरे–धीरे विकास के पथ पर अग्रसर है। सन् 1962 में एम.बी.बी.एस. की कुल 60 सीट थी बाद में सन् 1963 में 70 सीटें और अब 2010 से एम.बी.बी.एस. में 84 सीटें हो गयी है।

चिकित्सा विज्ञान संस्थान के निम्न महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ हैः

1. आधुनिक चिकित्सा संकाय
2. आयुर्वेद संकाय
3. दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय
4. नर्सिंग कालेज
5. सर सुन्दर लाल चिकित्सालय
6. ट्रामा सेन्टर
7. क्षारसूत्र के लिए राष्ट्रीय संसाधन केन्द्र
8. नेशनल फैसिलीटी फॉर ट्राइबल एण्ड हर्बल मेडिसीन केन्द्र

चिकित्सा विज्ञान संस्थान का सर सुन्दर लाल चिकित्सालय महत्वपूर्ण अंग है। 1200 शैय्या वाला यह चिकित्सालय पूर्वांचल के जनता की सेवा कर रहा है। यहाँ पर उच्चविशेषज्ञता वाले विभागों जैसे कार्डियोलाजी, न्यूरोलाजी, इण्डोक्रिनोलॉजी, गैस्ट्रोइंट्रोलाजी, नेफ्रोलाजी, कार्डियोथोरैसिक सर्जरी, न्यूरोसर्जरी, यूरोलाजी, प्लास्टिक सर्जरी एवं बालशल्य चिकित्सा आदि विभागों में योग्य एव दक्ष चिकित्सक व सर्जन सेवारत है।

विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अस्पताल में विशेष क्लीनिक की भी स्थापना की गई है–

1. वेल बेबीक्लीनिक एण्ड इम्यूनाइजेशन क्लीनिक
2. जेरियाट्रिक क्लीनिक
3. डी–एडिक्शन क्लीनिक
4. घाव क्लीनिक
5. डाट्स क्लीनिक
6. एडोलसेन्ट ऐण्ड मेनोपाजल क्लीनिक
7. हेमैटोलाजी क्लीनिक
8. ग्लूकोमा क्लीनिक
9. क्षारसूत्र क्लीनिक
10. ए आर टी क्लीनिक
11. पोस्टपार्टम क्लीनिक
12. डायबेटिक काम्पलीकेशन क्लीनिक
13. पेडियाट्रिक हेमैटोलाजी– आंकोलाजी यूनिट ऐण्ड थैलेसेमिया डे केयर यूनिट

इन सुविधाओं के अतिरिक्त निम्न सुविधाएँ भी उपलब्ध हैः

1. कोबाल्ट थिरेपी
2. हेमोडायलिसिस
3. वीडियो इण्डोस्कोपी
4. लीथोट्रिप्सी
5. रेनल ट्रांसप्लाण्ट यूनिट
6. आई सी यू
7. यूरोडायनामिक्स
8. कार्डियक पेस मेकर इम्प्लाण्टेशन
9. नियोनेटोलाजी / नियोनेटल सर्जरी
10. डेंटल सर्विसेज
11. फिजियोथिरेपी एण्ड रिहैबिलिटेशन
12. ब्लड कम्पोनेन्ट थिरेपी यूनिट
13. कम्प्रीहेन्सिन आंकोलाजी सर्विसेज
14. ओपन हार्ट सर्जरी
15. कार्नियल ट्रांसप्लाण्टेशन
16. पंच कर्म

इसके अतिरिक्त चिकित्सालय मे 64 स्लाइस सी टी स्कैन, अन्नपूर्णा भोजनालय, स्वच्छ रसोई, पी.सी.ओ., धर्मशाला, स्पेशल वार्ड, साइकिल स्टेण्ड, सुरक्षा सेवाएं आदि सुविधाएं उपलब्ध हैं। इस संस्थान व चिकित्सालय की गौरवमयी विद्वत परम्परा रही है, जहाँ पर आयुर्वेद क्षेत्र के निष्णात विद्वान, पंण्डित सत्यनारायण शास्त्री, प्रो. राजेश्वर दत्त शास्त्री, प्रो. यदुनन्दन उपाध्याय,

प्रो. प्रियव्रत शर्मा, प्रो. पी.जे. देशपाण्डे, प्रो. एस. एन त्रिपाठी, प्रो. जी. एन. चतुर्वेदी, प्रो. ए. बी. रे., प्रो. शंकरन, प्रो. एल.एम. सिंह, प्रो. पी. वी. तिवारी, प्रो. आर. एच. सिंह की सेवाएं प्राप्त थी उन्हें राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली थी वही पर आधुनिक चिकित्सा क्षेत्र में प्रो. के. एन. उडुपा, प्रो. शमेर सिंह, प्रो. जानी, प्रो. मोहन्ती, प्रो. एस. एम. तुली, प्रो. टी. के. लाहिडी, प्रो. टी. पी. श्रीवास्तव, प्रो. एन. एन. खन्ना आदि का नाम उनके योगदान के लिए स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। उनके द्वारा तय किये गये मानकों पर वर्तमान पीढ़ी अग्रसर है।

प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना के अन्तर्गत निर्माणाधीन ट्रामा सेन्टर पूर्वी भारत का एक मात्र अस्पताल होगा, जहाँ पर एक ही छत के नीचे सभी विशेषज्ञ सुविधाएं उपलब्ध होगीं। उसका परिसर बहुत ही रमणीय है। यह शीघ्र ही सेवा के लिए उपलब्ध होगा। बोन मैरो ट्रांसप्लाण्ट एण्ड स्टेम सेल रिसर्च सेन्टर की स्थापना संस्थान की दूसरी स्वप्निल परियोजना है। इसका निर्माण शुरू हो गया है। असाध्य रोगों की चिकित्सा में यह वरदान सिद्ध होगा।

इण्डिया – टुडे द्वारा सम्पन्न कराये गये सर्वेक्षण में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का पूरे भारत में पहला और चिकित्सा विज्ञान संस्थान का छठा स्थान था। यद्यपि हमको अपने संस्थान/अस्पताल के सदस्यों की उपलब्धियों पर काफी प्रसन्नता है, लेकिन उनसे और अधिक अपेक्षाएं है। अपनी लगन, समर्पण व सेवा भावना को और विस्तार दें, जिससे भविष्य में यह संस्थान पूरे देश में प्रथम स्थान प्राप्त कर सके।

जेरियाट्रिक वार्ड का उद्घाटन करते कुलपति पद्मश्री डॉ. लालजी सिंह

बोन मैरो ट्रान्सप्लांटेशन सेन्टर की आधारशिला रखते कुलपति पद्मश्री डॉ. लालजी सिंह

प्रो. सरोज गोपाल चूड़ामणि एवं डॉ. कृष्ण चन्द्र चुनेकर को पद्मश्री अलंकरण मिलने पर निदेशक द्वारा सम्मान

ट्रामा सेन्टर भवन के लिए भूमि पूजन करते तत्कालीन कुलपति प्रो. डी. पी. सिंह

अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण एवं स्टेम कोशिका शोध केन्द्र – एक परिचय

डा. एस.पी. मिश्रा, डा. वेदव्रत मुखोपाध्याय एवं डा. आशुतोष वाजपेयी

चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में इस केन्द्र की स्थापना, शोध एवं अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण क्षेत्र में एक स्वर्णिम अध्याय का पदार्पण है। अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण की आवश्यकता भारत में प्रतिवर्ष हजारों की है, लेकिन सम्प्रति अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण केन्द्र मात्र 15 है। जबकि जनसंख्या की दृष्टि से देश में लगभग 50 केन्द्रों की आवश्यकता है। यह केन्द्र वाराणसी एवं पड़ोसी जनपदों की लगभग 15–20 करोड़ जनसंख्या को आच्छादित करेगा। यह सपना साकार हो रहा है, माननीय कुलपति पद्मश्री डा. लालजी सिंह के सत्प्रयासों से और इसे मूर्तरूप देने में प्रो. टी.एम. महापात्रा– विशेष कार्याधिकारी (योजना एवं विकास) की दृढ़ इच्छा शक्ति एवं प्रतिबद्वता से। चिकित्सा विज्ञान संस्थान में इस केन्द्र की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योकि बडी संख्या में सर सुन्दरलाल चिकित्सालय में रोगी आते हैं जिन्हें अस्थि मज्जा एवं स्टेम कोशिका प्रत्यारोपण की आवश्यकता होती है। उनमें से ऐसे रोगी भी है, जो बाहर जाकर इतना महॅगा इलाज नही करवा सकते। इस शोध केन्द्र में कुल 5 तल है जिसमें चौथे तल पर अस्थि मज्जा प्रत्यारोपण अनुभाग, तीसरे तल पर स्टेम कोशिका शोध अनुभाग, इसके अतिरिक्त 10 शैया वार्ड, नर्सिग स्टेशन, संगोष्ठी कक्ष, आपरेशन थिएटर, कैफेटेरिया तथा सी.सी.टी.वी. एवं सर्विलांस सिस्टम आदि अन्य तलों पर स्थित है। यह केन्द्र विश्वविद्यालय स्थापना स्थल पर ट्रामा सेन्टर के प्रांगण में स्थित है।

स्टेम कोशिकाः एक परिचय

स्टेम कोशिकाओं में प्रारम्भिक विकास की अवस्था में शरीर के कई अलग – अलग प्रकार की कोशिकाओं में विकसित होने की उल्लेखनीय क्षमता है। इसके अलावा इन कोशिकाओं में शरीर के विभिन्न ऊतको की आंतरिक मरम्मत करने की भी क्षमता होती है। जब एक स्टेंम कोशिका विभाजित होती है तो, या तो वह एक नयी स्टेंम कोशिका बन सकती है या फिर एक विकसित कोशिका जैसे लाल रक्त कणिका, मांसपेशी कोशिका या मस्तिष्क कोशिका बना सकती है।

प्रश्न यह उठता है कि स्टेम कोशिका अन्य कोशिकाओं से अलग कैसे है? वस्तुतः स्टेम कोशिका और शरीर की बाकी कोशिकाओं में दो मुख्य अन्तर हैः 1. स्टेम कोशिकायें अविकसित होती है लेकिन इनमें बार बार विभाजित होने की क्षमता होती है। 2. कुछ विशिष्ट शारीरिक या प्रयोगात्मक परिस्थितियों में ये विभाजित होकर शरीर की बाकी विकसित कोशिकाये बना सकती है। शरीर के कुछ हिस्सों में जैसे की ऑत और अस्थिमज्जा में स्टेम कोशिकायें नियमित रूप से विभाजित होती रहती है और इस तरह से क्षतिग्रत कोशिकाओं की जगह लेती रहती है। लेकिन शरीर के कुछ अन्य हिस्सो जैसे की अग्न्याशय और हदय में स्टेम कोशिकाये कुछ विशेष परिस्थितियों मे ही विभाजित होती है।

स्टेम कोशिकाओ के प्रकार

स्टेम कोशिकाये दो प्रकार की होती हैः भ्रूण स्टेम कोशिका और गैर भ्रूण स्टेम कोशिका। गैर भ्रूण स्टेम कोशिका को भी दैहिक और वयस्क इन दो भागो मे बाटा गया है।

स्टेम कोशिकायें अपनी कई विशेषताओं के लिये महत्वपूर्ण है। 3 से 5 दिन के भ्रूण मे ब्लास्टोसिस्ट के आंतरिक सतह पर पायी जाने वाली स्टेम कोशिकायें ही शरीर के विभिन्न ऊतक बनाती है। जबकि वयस्क में ये कोशिकायें मरम्मत का काम करती है।

स्टेम कोशिकाओं मे अद्वितीय रूप से पुनर्योजी क्षमताये होती है। इसका अर्थ यह है कि ये बार–बार विभाजित हो सकती है लेकिन इनकी विभाजन क्षमता में अन्तर नही आता। इस क्षमता की वजह से इनका उपयोग कई महत्वपूर्ण रोगो जैसे कि मधुमेह और हदय

रोगो में कर सकते है। इसके अतिरिक्त स्टेम कोशिका का उपयोग त्वचा को बदलने, चोटो के निशान को मिटाने, रीढ़ की हड्डी के घाव को भरने, ल्यूकीमिया और कैंसर आदि मे किया जाता है। इस क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रयासरत हैं हालाकि अभी काफी कुछ किया जाना शेष है।

वैज्ञानिक यह जानने की कोशिश में लगे हुए है कि स्टेम कोशिका में ऐसा क्या है जो उन्हे बाकी कोशिकाओं से अलग बनाता है और इस दिशा में काम करते हुए उन्हे उम्मीद है कि कोशिका की कुछ बेहद मूलभूत बातो का भी पता चलेगा।

वैज्ञानिक इन्ही बातो को जानने के लिए प्रयोशाला में स्टेम कोशिका पर विभिन्न दवाओं और माडलों के सहारे प्रयोग कर रहे है ताकि स्टेम कोशिकाओं की विशिष्टताओं का पता लगाया जा सके।

स्टेम कोशिकाओं पर अनुसंधान करने से यह पता लगाया जा सकता है कि कैसे केवल एक कोशिका से संम्पूर्ण जीव का निर्माण होता है और कैसे स्वस्थ कोशिकायें क्षतिग्रत कोशिकाओ को बदलती है। वर्तमान जीव विज्ञान में यह क्षेत्र उत्सुकताओं और आशाओं से भरा हुआ है, लेकिन जैसा कि अन्य अनुसंधान क्षेत्रो में भी होता है इस क्षेत्र के अनुसंधान जितनी तेजी से नये खोज कर रहे हैं उतनी ही तेजी से नये सवाल भी उठते जा रहे है।

अस्थि मज्जा प्रत्यारोपण

अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण जिसे हिमैटोपोयटिक सेल प्रत्यारोपण भी कहा जाता है, वस्तुत कैंसर के लिए उपचार का ही एक प्रकार है। अस्थिमज्जा के सामान्य कार्य को समझने से हमें इसके प्रत्यारोपण को समझने में मदद मिलेगी।

अस्थिमज्जा शरीर की कुछ बडी हड्डियों के केन्द्र में पाया जाने वाला एक नरम स्पंजी क्षेत्र है। यहॉ पर खून मे पाये जाने वाली कोशिकाये जैसे रक्त कणिका श्वेत रक्त कोशिका और प्लेटलेट बनती है। ये सारी कोशिकायें अस्थिमज्जा में पाये जाने वाली एक विशेष कोशिका से बनती है जिसे हिमैटोपोयटिक स्टेम कोशिका कहते है।

ये हिमैटोपोयटिक स्टेम कोशिका वैसे तो अस्थिमज्जा के केन्द्र में रहकर विभिन्न कोशिकाये बनाती रहती है, लेकिन इन कोशिकाओं में से कुछ कोशिकाये बाकी रक्त कोशिकाओं के साथ रक्त में आ जाती हैं जिन्हे हम वहाँ से एकत्रित कर सकते है।

कैसर के जो सबसे प्रभावी उपचार है जैसे कि विकिरण के द्वारा या रसायन चिकित्सा से, उनका एक सबसे बडा दोष ये है, कि ये दोनो विधियाँ कैंसर के साथ साथ अस्थिमज्जा को भी नुकसान पहुचा देती है जिससे अस्थिमज्जा का प्रत्यारोपण अवश्यंभावी हो जाता है।

अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण रक्त के विभिन्न अवयवों को फिर से बनाता है। अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण में जो कोशिकायें प्रत्यारोपण की जाती है उन्हें अस्थिमज्जा, रक्त या गर्भनाल (शिशु के जन्म के समय) से प्राप्त किया जा सकता है।

अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण के प्रकार

अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण के दो मुख्य प्रकार हैः

1. ऑटोलॉगस, 2. ऐलोजेनिक।

ऑटोलॉगस अस्थिमज्जा प्रत्यारोपणः इस विधि में शरीर की अस्थिमज्जा से हिमैटोपोयटिक स्टेम कोशिकाये शरीर को विकिरण या रसायन देने के पहले ही निकाल ली जाती हैं, जिन्हे बाद में उसी शरीर में वापस प्रत्यारोपित कर दिया जाता है।

ऐलोजेनिक प्रत्यारोपणः इस विधि में एक दाता के शरीर की अस्थिमज्जा से हिमैटोपोयटिक स्टेम कोशिका निकालकर प्रत्यारोपित करते है। आदर्श परिस्थितियो में दाता कैंसरग्रस्त व्यक्ति का भाई या बहन होता है। कुल मिलाकर दाता की जेनेटिक संरचना ग्राही से मिलती जुलती होनी चाहिये।

चिकित्सा विज्ञान संस्थान में कोशिका अलगाव सुविधा उपलब्ध है। सरसुन्दर लाल चिकित्सालय मे आधुनिक तकनीक से सुसज्जित ब्लड बैंक है जहॉ पर कम्पोनेन्ट सेपरेशन रोगियो के हित में होता है। इस शोध के माध्यम से अब वैज्ञानिकों को अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर मिलेगे। रोगी लाभान्वित होगे। करोड़ो लोगो की यातना का अन्त होगा।

ट्रामा सेन्टरः एक वरदान

प्रो. डी.के. सिंह

विशेषकार्याधिकारी (ट्रामा सेन्टर), चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

विकासशील देशों में मृत्यु का सबसे बड़ा कारण ट्रामा है। भारत सरकार ने इस समस्या को संज्ञान में लिया और तय किया कि देश में अधिकाधिक ट्रामा सेन्टर स्थापित किया जाय। इसी कड़ी में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को भारत सरकार ने प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना के अन्तर्गत ट्रामा सेन्टर की स्थापना के लिए प्रथम चरण में 100 करोड़ की धनराशि अवमुक्त की। फलतः यह सेन्टर विश्वविद्यालय स्थापना स्थल पर बनाने का निर्णय लिया गया। अब यह सेन्टर सेवा के लिए बनकर तैयार है। इसके निर्माण एवं आन्तरिक साज–सज्जा, सम्बन्धित मशीनों के क्रय में मानव संसाधन विकास मन्त्रालय ने 27 करोड़ तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी 20 करोड़ रूपये की स्वीकृति दी, जिससे यह मूर्त रूप ले सके। रोगियो के इमर्जेन्सी केयर और ट्रामा मैनेजमेन्ट के लिए अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान का जे.पी. ट्रामा एवं इमर्जेन्सी केयर से लाभ और सफलता ही पूरे देश का रोड माडल बना।

स्थापना स्थल मेडिकल हब बनने की दिशा में अग्रसर हैं। ट्रामा सेन्टर के पश्चिमी छोर पर अस्थि मज्जा प्रत्यारोपण एवं स्टेम कोशिका केन्द्र, दन्त रोग विज्ञान संकाय भवन, पूर्वी छोर पर रेजीडेन्ट डाक्टर्स हास्टल है, जिसमें 650 चिकित्सक रहेंगे। ट्रामा सेन्टर के पीछे एक तालाब है जिसके बीच में फौव्वारा लगा है। ट्रामा सेन्टर के चारों तरफ हरियाली के लिए वृक्षारोपण किया गया है।

इस ट्रामा सेन्टर में कुल 334 बेड हैं। 13 माडुलर ओ.टी., गैस पाइप लाइन, सी.एस.एस.डी. तथा लाण्ड्री का प्रबन्ध किया गया है। अत्याधुनिक मशीनें आ चुकी हैं, कुछ ही मशीनें आना बाकी हैं। बेड संख्या की दृष्टि से यह भारत का प्रथम ट्रामा सेन्टर है। सेन्टर प्रांगण में पार्किंग की सुविधा, दो बैंक तथा कैफेटेरिया भवन निर्माण प्रस्तावित है।

इस सेन्टर में सम्बन्धित विभाग रेडियोलाजी, आर्थोपेडिक, न्यूरोलाजी, न्यूरोसर्जरी, एनेस्थीसिया तथा प्लास्टिक सर्जरी अपने–अपने दायित्वों का निर्वहन करेंगे। सेन्टर का कुछ हिस्सा मेडिसिन तथा अन्य विभागों के लिए आवंटित होगा। प्रथम तल पर आगन्तुक कक्ष, टेलीफोन विभाग, बहिरंग रोगी सेवा, रेडियोलाजी, पैथोलाजी तथा ब्लड बैंक होगा। रेडियोलाजी विभाग में डिजिटल एक्स–रे मशीन आ चुकी है। प्रथम तल पर ही 128 सी.टी. तथा 3 टेक्सला एम.आर.आई. लगाने का प्रस्ताव है। प्रथम तल पर ट्राइएज एवं रिसासीटेशन रूम होगा। ट्राइएज विभाग मरीजों के रोग के अनुसार सम्बन्धित विभिन्न विभागों में भेजेगा। रिससीटेशन यूनिट उन मरीजों की सहायता करेगी, जिसे त्वरित चिकित्सा सुविधा की आवश्यकता होगी। सभी विभागों के लिए चार–चार आपरेशन थिएटर आवंटित किया गया है। दुर्घटना में घायल व्यक्तियों की चिकित्सा इस ट्रामा सेन्टर में होगी। इसके अतिरिक्त शरीरगत ट्रामा का इलाज भी यहाँ होगा। चतुर्थ मंजिल पर आई.सी.यू. और एच.डी.यू. बन चुका है। ट्रामा रोगी को ट्रामा के दौरान विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। क्रिटिकल इलनेस के

रोगी और ट्रामा रोगी की परिचर्या के लिए क्रिटिकल केयर विभाग का सृजन किया जायेगा। यह विभाग दक्ष चिकित्सकों एवं अत्याधुनिक मशीनों से सुसज्जित होगा। क्रिटिकल केयर विभाग के लिए प्रशिक्षित कर्मचारी व नर्स रखे जायेगे।

ट्रामा सेन्टर यह प्रयास करेगा कि ग्रामीण व शहरी जनसंख्या को भारतीय परिवेश में दुर्घटना होने वाले कारकों से उन्हें अवगत कराये और शिक्षित करे कि दुर्घटना से कैसे बचा जा सकता है जैसे सड़क सुरक्षा शिक्षा और दुर्घटना से बचाव। ट्रामा सेन्टर में आपदा प्रबन्धन इकाई एम्बुलेन्स सेवा से लैस होगा, जिससे रोगी को शीघ्रातिशीघ्र चिकित्सकीय सेवा उपलब्ध कराकर उसकी प्राण रक्षा की जा सके।

चिकित्सा विज्ञान संस्थान के संस्थापक प्रोफेसर के.एन. उडुपा

डॉ. रामजीत विश्वकर्मा

राजभाषा क्रियान्वयन प्रकोष्ठ, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

महामना जी ने देश के कोने–कोने से नामचीन विद्वानों का आह्वान किया और विश्वविद्यालय की सेवा के लिए उन्हीं की शर्तों पर उन्हें नियुक्त किया। उन्हीं मणियों में से एक थे प्रो. के. एन. उडुपा, जिन्होंने जन्म तो लिया कर्नाटक में, लेकिन उनकी कर्मस्थली रही काशी।

प्रो. के. एन. उडुपा का जन्म 28 जुलाई 1920 में कटील के निकट कोडेत्तर, कर्नाटक में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा कटील कर्नाटक और मद्रास में हुई। सन् 1936 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज में ए.एम.एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया। सन् 1943 में इसी विश्वविद्यालय से ए.एम.एस. की उपाधि ग्रहण की। उन्होंने हाउस जाब व क्रियात्मक प्रशिक्षण सन् 1943–46 में आर. ए. पोद्दार मेडिकल कालेज एवं के.इ.एम. हास्पिटल बम्बई से प्राप्त किया।

सन् 1948 में डॉ. उडुपा एम.एस. उपाधि के लिए अमेरिका गये। सन् 1949 में वे भारत लौटे। एम.एस., एफ. आर.सी.एस. डिग्री, शल्य क्षेत्र में निपुणता व विदेश में प्रशिक्षण के कारण वे हिमांचल प्रदेश में सर्जन नियुक्त हुए। बहुत अच्छा परिणाम देने के कारण उन्हें शिमला भेजा गया। दूसरी बार वे हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, स्कूल ऑफ मेडिसिन बोस्टन, चले गये। उन्होंने वहां पर प्रो. जे. इंग्लवर्ट डनफी नामक विख्यात सर्जन व जैव वैज्ञानिक के साथ सन् 1954 से सन् 1956 तक कार्य किया और उण्ड हीलिंग पर मौलिक शोध किया। उस पर उन्होंने लगभग आधे दर्जन शोध पत्र भी प्रकाशित किये। अमेरिका का प्रसिद्ध मेडिकल जर्नल एनल आफ सर्जरी, न्यू इंग्लैण्ड जर्नल आफ मेडिसिन, एस.जी.ओ., ब्रिटिश जर्नल आफ बोन एण्ड ज्वाइन्ट सर्जरी आदि में उनके शोध पत्र प्रकाशित हुए। उण्ड हीलिंग एवं टीसू रिपेयर पर उनके कार्य की विश्व भर में सराहना हुई। उन्होंने आधा दर्जन पुस्तकें, कई मोनोग्राफ एवं 200 से ऊपर शोध पत्र प्रकाशित किये। उनके शोध पत्र राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं, उनके निर्देशन में 50 शोध छात्रों ने पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की। उन्होंने जैव चिकित्सा विज्ञान व अन्तर्विषयक क्षेत्रों में शोध को वरीयता दी।

राष्ट्रीय स्तर पर आयुर्वेद की शिक्षा एवं शोध में सुधार हेतु केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा गठित उडुपा कमेटी के अध्यक्ष बने। उडुपा कमेटी की रिपोर्ट अप्रैल 1959 में सरकार को सौंपी गई तथा सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया और यह रिपोर्ट आगे चलकर इस विषय में राजकीय नीति नियामक सिद्ध हुई। इसी वर्ष प्रो. उडुपा को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रधानाचार्य पद के लिए निमंत्रित किया गया। वे यहाँ सर्जरी के प्रोफेसर एवं प्रधानाचार्य नियुक्त हुए। यहीं आयुर्वेद महाविद्यालय एम.बी.बी.एस. पाठ्क्रम प्रारम्भ करने के लिए 1960 में कालेज ऑफ मेडिकल साइंसेज में परिवर्तित हुआ। साथ ही 1963 से आयुर्वेद में स्नातकोत्तर {एम.डी. आयुर्वेद उपाधि} की शिक्षा प्रारम्भ हुई। एम.बी.बी.एस. स्नातक पाठ्यक्रम ए.बी.एम.एस. के स्थान पर स्थानापन्न हुआ और आयुर्वेद का स्नातक पाठ्यक्रम बंद कर दिया गया, जो 40 वर्षों बाद वर्ष 1999 में ही पुनः प्रारम्भ किया जा सका। प्रो. उडुपा के नेतृत्व में एक ही छत के नीचे दो चिकित्सा पद्धतियां समानान्तर रूप से पुष्पित एवं पल्लवित हो रही थी। यह इस तरह का भारत का प्रथम शिक्षा केन्द्र था जो डॉ. उडुपा की सोच का परिणाम था। सन् 1972 में कालेज ऑफ मेडिकल साइंसेज चिकित्सा विज्ञान संस्थान के रूप में उच्चीकृत हुआ। इस तरह प्रो. के. एन. उडुपा संस्थापक निदेशक बने और 28 जुलाई 1980 में अवकाश प्राप्ति तक निदेशक पद का गुरूतर भार संभाला।

उन्हीं के सत्प्रयास से कालेज ऑफ मेडिकल साइंसेज को भारतीय चिकित्सा परिषद, एवं ब्रिटिश

मेडिकल कौंसिल द्वारा मान्यता मिली। प्रो. उडुपा ने दर्जनों नये पाठ्यक्रम शुरू किये। प्रो. उडुपा की मेहनत रंग लाई और चिकित्सा विज्ञान संस्थान की पहचान चिकित्सा जगत में राष्ट्रीय स्तर पर बन गई। उनके प्रयास से ही कालेज ऑफ मेडिकल साइंसेज ने उच्चीकृत होकर चिकित्सा विज्ञान संस्थान का रूप लिया। डॉ. उडुपा के जनोपयोगी कार्यों के लिए भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया। अवकाश प्राप्ति के बाद उन्हें इमेरिटस प्रोफेसर नियुक्त किया गया। उन्होंने विश्व स्वास्थ्य संगठन के परामर्शदाता के रूप में विश्व भ्रमण किया और वहां पर भारतीय चिकित्सा पद्वति और स्वास्थ्य के बारे में भारतीय पक्ष को रखा।

प्रो. के. एन. उडुपा ने उच्च गुणवत्ता वाले शोध के लिए अलग से केन्द्रीय सर्जिकल प्रयोगशाला की स्थापना की जिसमें आधुनिक जैव चिकित्सा शोध की सुविधा उपलब्ध थी जो आयुर्वेद एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के शोधार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। यहाँ दोनों चिकित्सा पद्वतियों में शोध की हर सुविधा उपलब्ध थी। इस प्रयोगशाला का प्रयोग अधिकतर आयुर्वेद में पीएच.डी. करने वाले छात्र करते थे।

कुछ वर्षों के अन्तराल पर इस प्रयोगशाला की गतिविधियाँ नये नाम सेन्टर ऑफ एक्सपेरीमेंटल मेडिसिन एण्ड सर्जरी से प्रारम्भ हुई।

डॉ. के. एन. उडुपा एक अद्भुत चिकित्सक व कुशल सर्जन के साथ मानवीय संवेदनाओं से ओत–प्रोत थे। वे मरीजों के प्रति बड़े संवेदनशील थे। अस्पताल में सुविधाओं के अभाव में भी बहुत बड़े–बड़े आपरेशन किये जिसमें हार्ट की माइट्रल वाल्व सर्जरी, ब्रेन की ट्रामेटिक सर्जरी और किडनी प्रत्यारोपण सम्मिलित है। डॉ. उडुपा को भारत में सन् 1968 में प्रथम किडनी प्रत्यारोपण का श्रेय जाता है।

विश्वविद्यालय परिवार प्रो. उडुपा की प्रशासनिक क्षमता का कायल था। प्रो. के. एन. उडुपा की नियुक्ति प्रथम बार सन् 1967 में रेक्टर पद पर हुई। डॉ. उडुपा ने

भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री द्वारा नेत्र चिकित्सालय का उद्घाटन (1965)

निदेशक व अस्पताल की व्यस्तता के बावजूद रेक्टर पद की गरिमा को बनाए ही नहीं रखा वरन् उस अवधि में विश्वविद्यालय के विकास के लिए बहुत कार्य किया। सन् 1981 में प्रो. उडुपा को दूसरी बार रेक्टर व कार्यवाहक कुलपति नियुक्त किया गया।

अवकाश प्राप्ति के बाद उन्हें भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् एवं योजना आयोग ने एक बृहद् परियोजना वाराणसी जिले में प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं के क्रियान्वयन में सुधार का मॉडल तैयार करने हेतु दी थी। योजना आयोग, भारत सरकार ने प्रो. उडुपा की संस्तुतियों को पूरे देश में लागू किया है। संप्रति चल रहे नेशनल रूरल हेल्थ मिशन {एन.आर.एच.एम.} की मूल सोच डॉ. उडुपा की ही खोज है। वे किसानों को औषधीय पौधे, फलदायक पौधे लगाने की सलाह देते थे। प्राथमिक स्वास्थ्य उपलब्धता के लिए उन्होंने बड़ी बारीकी से मापदण्ड निर्धारित किये।

तथ्यों का संकलन मैंने प्रो. रामहर्ष सिंह, विशिष्ट आचार्य आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व प्रकाशित आलेख से किया है। इस आलेख लेखन में मुझे चिकित्सा विज्ञान संस्थान के निदेशक प्रो. राणा गोपाल सिंह ने प्रेरित किया इसके लिए मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूं।

चिकित्सा विज्ञान संस्थान–पूर्वांचल का एम्स

प्रो. यू. पी. शाही

रेडियोथेरैपी एण्ड रेडिएशन मेडिसीन, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अभी सिर्फ तीन वर्ष बीते हैं, जब चिकित्सा विज्ञान संस्थान का स्वर्ण जयन्ती समारोह पूरे जोश–खरोश से मनाया गया था। पूरे वर्ष (2010) के दौरान अनेकों कार्यक्रम आयोजित किये गये। अपने पूर्व छात्रों को याद किया गया, उपलब्धियों को याद किया गया एवं आगे बढ़ने का संकल्प लेते हुए संस्थान को विश्वस्तरीय एवं उच्चतर पायदान पर ले चलने के प्रयास आरम्भ किये गये हैं। वर्तमान कुलपति पद्मश्री डॉ. लालजी सिंह ने चिकित्सा विज्ञान संस्थान की उन्नति में विशेष रूचि प्रदर्शित की है, जिसके फलस्वरूप अनेकानेक स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धि सन्निकट भविष्य में सच होने जा रही है।

पद्मश्री एवं प्रो. वी. सी. राय पुरस्कार के साथ अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त विभूतियों की कड़ी में हमारे संस्थापक निदेशक प्रो. के. एन. उडुपा, प्रो. ए. पी. पाण्डेय के बाद प्रो. सरोज चूड़ामणि गोपाल एवं डॉ. कृष्ण चन्द्र चुनेकर सहित कई विद्वान शामिल हैं।

चिकित्सा विज्ञान संस्थान में तीन संकाय मजबूत स्तम्भों के रूप में शामिल हैं –

आधुनिक आयुर्विज्ञान, आयुर्वेद एवं दंत चिकित्सा।

तीन संकायों में स्नातक एवं परास्नातक की पढ़ाई के साथ–साथ डॉक्टरेट की उपाधि भी प्रदान की जाती हैं। यहाँ विश्वस्तर के चिकित्सक–शिक्षक शिक्षण–प्रशिक्षण एवं शोध कार्यों में अपना योगदान दे रहे हैं फलस्वरूप योग्य भावी चिकित्सक तैयार हो रहे हैं जो राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा रहे हैं। यहाँ के शिक्षकों को अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय फेलोशिप प्रदान किए गये हैं। वैज्ञानिक पत्र–पत्रिकाओं सहित अनेक पुस्तकों में शोध–पत्रों, पुस्तक अध्यायों एवं पुस्तकों के रूप में हमारे शिक्षकों एवं पूर्व छात्रों का विशेष योगदान है।

विभागीय एवं अस्पताल के स्तर पर मूलभूत सुविधाओं की अच्छी खासी बढ़ोत्तरी हुई है, जिससे मरीजों का उपचार, शिक्षण, प्रशिक्षण एवं शोध कार्य बेहतर हुए हैं। अस्पताल की सुविधाओं ने आमजनों के स्वास्थ्य सुधार में काफी वृद्धि की है। प्रयोगशाला की सुविधा भी बेहद आधुनिक स्तर की उपलब्ध है। सर सुन्दरलाल अस्पताल में लगभग 1200 रोगियों के लिये शय्या उपलब्ध है, और शीघ्र ही एक बहु आयामी एवं विशिष्ट ट्रॉमा चिकित्सा केन्द्र कार्य आरम्भ करने के लिये तैयार है। अस्पताल में मरीजों के निदान एवं उपचार हेतु अत्याधुनिक एवं श्रेष्ठ उपकरण जैसे 1-5 Tesla MRI, 64 Slice CT नेविगेशन उपकरण {न्यूरोसर्जरी के लिए}, लिनियर एक्सलेटर {रेडियोथेरैपी, शीघ्र ही कार्य आरंभ होगा} उपलब्ध कराये गये हैं। रक्त बैंक की आधुनिकतम व्यवस्था मरीजों के लिए वरदान साबित हुई है।

संस्थान द्वारा कालाजार, नैनो विज्ञान एवं न्यूरोफिजियोलॉजी के क्षेत्र में किये गये शोध ने हमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने में मदद की है। संस्थान में एड्स के रोगियों के इलाज हेतु ART केन्द्र काफी मददगार साबित हो रहा है।

कालाअजार रोग चुनौतियाँ और समाधान

डॉ. संगीता कंसल एवं प्रो. श्याम सुन्दर

मेडिसिन विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

कालाजार विशिष्ट रूप से पूर्ण अन्तःपरिजीवी, लीशमैनिया डोनोवनी से होता है। यह रोग (VL) तीन प्रजातियों द्वारा होता है; इसमें मुख्यतः लैशमैनिया डोनोवानी (भारतीय उपमहाद्वीप) लैशमैनिया इन्फेन्टम (पूर्वी अफ्रीका) और लैशमैनिया चगेजी (मध्य एवं दक्षिणी अफ्रीका के मध्य भूमध्य घाटी) है।

कालाजार का प्राकृतिक संचरण महिला बालू मक्खी द्वारा होता है। कालाजार लम्बे समय तक तिल्ली का बढ़ना यकृत का बढ़ना, बुखार, वजन घटना, प्रगतिशील एनीमिया (रक्त कणिकाओं की कमी), श्वेत एवं लाल रक्त कणिकाओं की कमी (रक्त क्षीणता) की विशेषता वाला एक प्रणालीगत रोग है, और गंभीर संक्रमण से जटिल है (यह रोग गंभीर संक्रमण से अधिक जटिल होता है।) ठीक (स्वस्थ) होने के बाद भी कुछ रोगियों (50 प्रतिशत सुडान और 1–3 प्रतिशत भारत) में पी.के.डी.एल. (पोस्ट कालाअजार डरमल लीशमेनियेसिस) जो कि रंजक रहित धब्बे, इनडुरेटैड बजीले टुकड़े और पिंड द्वारा पहचाना जाता है।

सम्पूर्ण विश्व में कालाजार के लगभग पाँच लाख मामले हर साल पाए जाते हैं। भारत, नेपाल, बंगलादेश, सुडान तथा ब्राजील में 67 प्रतिशत मामले पाए जाते हैं। भारत में प्रति वर्ष कालाजार के लगभग एक लाख 100000 मामले पाऐं जाते हैं, जिसमें 90 प्रतिशत अकेले बिहार में होते है। वनों की कटाई की वजह से पर्यावरण परिवर्तन, शहरीकरण, गैर प्रतिरक्षी लोगों का रोगजनित स्थान पर जाने (पलायन) से कालाजार की घटनाओं में वृद्धि हुई है।

रोगजनित (स्थानिक) क्षेत्र में एड्स के कारण प्रतिरक्षादमन से कालाजार के मामलों में कई गुना वृद्धि हुई है। कालाजार, एच.आई.वी. सह संक्रमण दक्षिणी यूरोप, ब्राजिल एवं अफ्रिका में एक बड़ी समस्या है। सह–संक्रमण के मामले पूरे विश्व में लगभग 35 देशों से प्राप्त हुई है।

कालाजार का निदान

कालाजार निदान के लिए स्थायीकरण परीक्षण की आव यकता है क्योंकि इसका नैदानिक प्रत्यक्षीकरण सामान्य रूप से पायी जाने वाली बीमारियों जैसे– मलेरिया, मियादी बुखार (टाइफाइड), क्षय रोग के समान हैं।

कालाजार की पहचान

परजीवी प्रदर्शनः परजीवी का प्लीहा एवं अस्थि मज्जा में प्रदर्शन निश्चित पहचान के लिए आवश्यक है। प्लीहा द्रव काला अजार की पहचान के लिए सोने के मानक माना जाता है। इसकी संवेदनशीलता 95 प्रतिशत से अधिक है।

अस्थि मज्जा से पहचान की संवेदनशीलता केवल 60 से 85 प्रतिशत होने के साथ बहुत दर्दनाक है। इस प्रक्रिया के लिए प्रशिक्षण एवं अनुभव की आवश्यकता है क्योंकि अनुभव हीन हाथों से घातक रक्तस्त्राव का जोखिम जुड़ा होता है।

परजीवी को पहचानने के लिए अनुभव एवं गहन खोज की आवश्यकता होती है। अमैस्टिगोट नीले पीले कोशिकाद्रव्य के साथ एक बड़े लाला नाभिक और नाभिक के साथ एक सही कोण पर काइनैटोप्लस्ट गहरे लाल या बैंगनी छडी की तरह शरीर के साथ मोनोसाइट और मैक्रोफेज के अन्दर गोल या अंडाकार निकायों के रूप में दिखाई देती है।

सीरम परीक्षणः हालांकि व्यापक रूप से इस्तेमाल किए जाने वाले एंटीबॉडी आधारित परीक्षण की दो प्रमुख कमियां है। पहली यह कि 32 प्रतिशत स्थानीय स्वस्थ्य व्यक्तियों में जिनका कोई पूर्व कालाजार इतिहास नही रहा, उनमें यह जाँच सकारात्मक दिखाता है। द्वितीय, इलाज के कई वर्षों के उपरान्त भी एंटीबॉडी का स्तर सीरम में पता लगने योग्य बना रहता है। इसलिए

पुनःसंक्रमण का एंटीबॉडी जाँच के द्वारा पता लगाना कठिन हो जाता है। दो प्रकार के सीरम जाँच डैट एवं rk39 आधारित आईसीटी विशेष रूप से क्षेत्र में उपयोग के लिए विकसित किया गया है। अप्रत्यक्ष प्रतिदीप्ति एंटीबॉडी जाँच जैसे ELISA के द्वारा अधिकांश अध्ययनों में सटीक परीक्षण पाया जाता है लेकिन क्षेत्र अध्ययन के लिए अनुकूल नहीं है।

डैटः इस परीक्षण में लोमेशिन ब्रिलिंएन्ट ब्लू द्वारा रोगी के सीरम का निरीक्षण किया जाता है। प्रारम्भ में जलीय प्रतिजन का उपयोग किया जाता था, लेकिन यह लम्बे समय तक संरक्षित नहीं किया जा सकता है। इस जाँच की संवेदनशीलता एवं विशिष्टता क्रमशाः 97.8 प्रतिशत और 85.9 प्रतिशत है। फिर भी, डैट का बड़ा नुकसान यह है कि जाँच के दौरान कठिन काम, जरूरत, लम्बे समय तक उश्मान प्रतिजन की ज्यादा लागत तथा उच्च गुणवक्ता के प्रतिजन का सीमित उत्पादन।

rk39 आधारित जाँचः लैशमैनिया चंगेजी की काइनेसिन सम्बन्धित प्रोटीन के 39 अमिनो एसिड का बना होता है जो लैशमैनिया डोनोवानी में भी पाया जाता है। rk39 पर आधारित इम्युनोक्रोमेटोग्राफिक पट्टी परीक्षण (आईसीटी) आसानी से किया जाने वाला, तेज, सस्ता तथा पैदावार प्रतिलिपि प्रस्तुत करने योग्य परिणामों के प्रदर्शन करने वाला है। मैघ विश्लेषण, जिसमें rk39 आईसीटी के 13 मानक अध्ययनों से पता लगा है कि ICT की संवेदनशीलता व विशिष्टता क्रमशः 93.9 प्रतिशत तथा 95.3 प्रतिशत है।

हाल में rk28 प्रतिजन कालाजार के सीरम निदान के लिए एक उम्मीदवार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जब rk39 एलाइजा को सूक्ष्म एलाइजा के प्रारूप में तुलना करने पर rk28 की विशिष्टता अस्थिानीय, स्थानीय स्वस्थ्य तथा भिन्न रोगों का क्रमशः 100 प्रतिशत 94.17 प्रतिशत और 98.45 प्रतिशत थी तथा संवेदनशीलता 99.6 प्रतिशत जो कि rk39 इलाइजा के समान थी।

यधपि rk28 का सीधा प्रारूप उपलब्ध है। अभी इसका व्यवसाइक होना बाकी है। इनका परीक्षण भारतीय उपमहाद्वीप में किया जा चुका है।

हाल ही में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने कालाजार के आदर्श प्रतिजन (BHUP-2) की खोज की, जिसकी संवेदनशीलता 94 प्रतिशत और इसकी संवेदनशीलता स्थानिक स्वस्थ नियंत्रण, गैर स्थानिक स्वस्थ नियंत्रण और रोग नियंत्रण क्रमशः 98, 100 और 97 प्रतिशत थी। प्रारम्भिक परीक्षण में 37 किलो डाल्टन प्रोटीन से यंत्र विकसित करने की उच्च क्षमता पायी गई।

प्रतिजन जाँचः एंटीबॉडी आधारित इन्यून-डाइग्नोस्टिक परीक्षण की तुलना में प्रतिजन जाँच अधिक विशिष्ट है, और ऐसी आशा की जाती है कि इसे मिश्रित रूप से परजीवी भार से जोड़ा जा सकता है। कालाजार रोगियों में कम आणविक वनज कार्बोहाइड्रेट प्रतिजन का पता लगाने के लिए एक लेटेक्स समूहन परीक्षण के प्रारम्भिक परिणाम आशाजनक दिखाई दिये हैं। पूर्वी अफ्रीका और भारतीय उपमहाद्वीप में आयोजित कई अध्ययनों में अच्छे विशिष्टता दिखाई दी लेकिन संवेदनशीलता केवल कम से मध्यम (48–8 प्रतिशत) लैटैक्स समूहन परीक्षण लैशमानियल उपचार के दौरान रोगी के इलाज से उच्च अनुपात में (94–100 प्रतिशत) अच्छी तरह सम्बन्धित रहता है। इस तकनीक के प्रदर्शन में सुधार के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। इसे इलाज के परीक्षण के लिए स्वीकारा गया है। जिसके लिए अभी कोई सीरम वैज्ञानिक परीक्षण प्रयोग में नही लाया गया है।

आणविक निदान

पी.सी.आर., परजीवी DNA का रक्त या अस्थि मज्जा द्रव्य में पता लगाने के लिए सूक्ष्म परीक्षण की तुलना में अधिक संवेदनशील है, जो कि लक्षण विहीन संक्रमण का पता लगाने में सहायक है। हालांकि यह तरीके तृतीयक देखभाल केन्द्रों तक ही सीमित है।

इस प्रकार कालाजार की जाँच के लिए rk39 आधारित परीक्षण व्यापक रूप से उपयोग में लाया जाता है। यधपि इसके कुछ प्रमुख दोष भी है जैसे इलाज के बाद लम्बे समय तक परिणाम का सकारात्मक आना और स्थानिक क्षेत्र में लम्बे समय तक उच्च अनुपात में व्यक्तियों का रहना है।

कालाजार का उपचारः सामान्य में कालाजार के उपचार संतोषजनक नहीं रहे है। मुख द्वारा ली जाने वाली मिल्टीफोसिन को छोड़कर सभी कालाजार की दवायें सूई द्वारा दी जाती हैं। इसके अलावा अधिकांश दवाऐं विषक

होती है तथा लम्बे समय तक भर्ती होने की आवश्यकता होती है।

मिल्टीफोसिन, परोमोमाइसिन, एकल खुराक लिपोसोमल एम्फोटैरिसिन बी और संयोजन चिकित्सा का प्रभाव वारिता ने कालाजार के पाम्परिक इलाज में क्रान्ति ला दी है।

पैन्टावेलैन्ट एन्टीमोनियलस

सोडियम स्टिवोग्लूकोनेट का 20 मिलीग्राम/किग्रा शीरी के वजन के अनुसार 28–30 दिनों के लिए भारत में मानक प्रथम लाइन दवाओं से किया गया है।

बिहार में इस दवा का बड़े पैमाने पर दुरपयोग किया जा रहा था। जिसमें गलत तरीके से दवा का लेना, नियमित नहीं लेना, दवा के घटिया बैच इस क्षेत्र में व्यापक रूप से एन्टीमॉनी प्रतिरोध के अविर्भाव के पीछे मुख्य कारण थे। भारत और उसे नजदीकी देश नेपाल में अप्रतिक्रियाशीलता 60 प्रतिशत स्तर तक पहुँच गई है। उच्च स्तरीय प्रतिरोध के कारण सोडियम स्टिबोग्लूकोनेट का प्रभाव इस क्षेत्र में समाप्त हो गया है।

(एम्फोटैरिसिन बी डीओक्सीकोलेट)

भारत में कालाजार के उपचार के लिए सबसे अधिक इस्तेमाल की जाने वाली दवा एम्फोटेरिसिन बी डीओक्सीकोलेट है। इस दवा से पूर्ण इलाज के लिए दवा को 15–20 बार एक दिन के अन्तराल पर .75 मि.ग्रा.–1 मि.ग्रा. की खुराक में सुई द्वारा दिया जाता है। इसके लिए मरीज को अस्पताल में 4–5 सप्ताह तक भर्ती रहना पड़ता है जिससे चिकित्सा की लागत बढ़ जाती है।

एम्फोटेरिसिन बी का लिपिड योग कम विषाक्त तथा उपचार हेतु कम समय लेता है। कालाजार को ठीक करने के लिए आव यक खुराक की मान भौगोलिक स्थिति के अनुसार बदलती रहती है। भारत में (कालाजार) ≥10/mg/kg की खुराक 95 प्रतिशत से अधिक लोगों को ठीक करती है तथा दक्षिणी यूरोप में 18-21mg/kg की खुराक भारत सहित इत्यादि देश में रोग को ठीक करने की क्षमता 90–100 प्रतिशत होती है। अतः इस दवा के उपयोग में अधिक मूल्य एक प्रतिबन्धित कारक है। सभी लिपिड योगों की लिपोसोमल प्रभावित क्षेत्रों में सबसे व्यापक रूप से परीक्षण किया और खाद्रय और औषधि प्रसाधन संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा इस मात्र दवा को अनुमेत्रित किया गया। अध्ययन की एक श्रृंखला के बाद यह स्थापित किया गया कि कई और एकल खुराक के साथ योग एम्फोटेशिसिन बी भारतीय में अत्यधिक प्रभावी है। भारत में एक महत्वपूर्ण अध्ययन के रूप से लिया गये 412 रोगियों को 3:1 अनुपात में लाइपोसोसल एम्फोटेरिसिन–वी (10mg/kg) की एक खुराक या परस्परागत एम्फोटेरिसिन बीडी आक्सीकोलेट 1mg/kg का 15 का अंतः प्रवाह, 29 दिन भी अस्पताल की भर्ती के दौरान हर एक दिन के बाद दिया गया। दोनों समूहों में 6 महीने तक रोग ठीक करने की गति एक समान, 95.7 (95 प्रतिशत विश्वासनीय अन्तराल) (93–4.95 प्रतिशत) प्रतिशत 95 प्रतिशत लाइपोसोपल उपचार ग्रुप में और 96. 3 (95 प्रतिशत विश्वासनीय अन्तराल) प्रतिशत परम्परागत उपचार ग्रुप में लाइपोसोमल रोग की एक मात्र खुराक का उत्पादन भारतीय उपमहाद्वीप में एक बेहतर विकल्प है। डब्ल्यू एच ओ ने इसे सुरक्षित और असरदार एक दिन की स्वीकृति हेतु सिफारिस की है।

मिल्टेफोसीन

एक मात्र औषधि एन्टीलिशमानियल कारक मिल्टेफोसीन मार्च 2002 में भारत में इस्तेमाल के लिए पंजीकृत किया गया। कुछ मरीजों में इस दवा के कारण यकृत और गुर्दा में प्रतिकूल असर पाया गया है। मिल्टेफोसीन टिरैटोजीनिक है, गर्भधारण करने वाली महिलाओं को उपचार अवधि को ज्यादा में रखना चाहिये तथा 3 महीने अतिरिक्त समय तक इसके लगभग एक सप्ताह लम्बे अद्धआयु के कारण, जो कि ड्रग प्रतिरोध पैदा करने के लिए इसे कमजोर बनाता है। हाल ही में भारत में चतुर्थ चरण के ड्रग प्रतिरोध के परीक्षण में उपचार की क्षमता केवल 82 प्रतिशत पायी गयी, जो कि 95 प्रतिशत प्रत्येक प्रोटोकाल के उपचार को ध्यान में रखते हुये। ये सब उपलब्धि यह निर्देशित करती है कि मिल्टेफोसिन उपचार का अध्ययन बढ़ते हुये ड्रग प्रतिरोध के वेहतर उपाय हो सकता है। वर्तमान समय में मिल्टेफोसीन का उपयोग रोग निदान हेतु 3 देशों में शुरू किया गया है।

पारमोमाइसिन (अमीनोसीडीन)

भारतीय उपमहाद्वीप में पारमोमाइसिन के तृतीय चरण अध्ययन, में इसको एम्फोटेरिसिन वी के समतुल्य दिखाया गया तथा भारत सरकार ने इसे कालाजार के उपचार हेतु अगस्त 2006 में इसे अनुमोदित किया। प्रति रोगी का खर्च 30 अमेरिकी डालर, इस दवा का मुख्य लाभ है। इसका नुकसान, इन्ट्रामस्कुलर सूई का प्रशासन की जरूरत, ट्रान्सअमीनेंज सीरा की देखरेख, तथा गर्भावस्था में प्रयोग हेतु अपर्याप्त जानकारी होती है।

संयोजन चिकित्साः संयोजन चिकित्सा के पीछे विचार यह है कि यह बढ़ते हुये ड्रग प्रतिरोध को रोकने, कम खुराक की आवश्यकता इस प्रकार निम्न दुष्प्रभाव और कम लागत होती है। मल्टीड्रग चिकित्सा प्रतिरोधक परजीवी के विकास की सम्भावना को कम करती है। इस प्रकार से मौजूद दवा का उपचारात्मक आयु बढ़ा देती है। एम्फोटेरिसिन वी के एकल अंतः प्रवाह के बाद एक संक्षिप्त समय हेतु स्वनिर्धारित मिल्टेफोसीन का उपयोग भारतीय कालाअजार में एक बहुत अच्छा विकल्प है।

भारत ने तृतीय चरण के परीक्षण में तीन दवाओं का संयोजन किया। (5mg/kg) एल. एम्फोटोरिसिन–वी, एकल सूई और 7 दिन 50mg मुख्य मिल्टेफोसीन या 11mg/kg का एकल 10 दिन अंतः पेशीय पारमोमाइसिस या 10 दिन तक रोजाना मिल्टेफोसीन और पारमोमाइसिनो यह सभी संयोजन एक उत्तम उपचार गति को दर्शाता (97 प्रशित से अधिक) और किसी भी मानक उपचार से कम नहीं है, जैसा कि एन्टीमानियल कारक की झमेला और मात्रा विभिन्न क्षेत्र में विभिन्न होती है। इसलिए विश्व स्वास्थ संगठन ने हाल ही में उपचार निर्देश जारी किया। डब्ल्यू एच ओ के अनुसार कालाजार आदर्श ठीक होना चाहिये तथा पी. केडीएल हेतु तथा बीमारी वे पुनरावर्तन के खतरे को कम करना और प्रतिरोधी परजीवी के प्रसारण को रोकना।

वैक्सीन / टीका

कालाजार रोग परजीवी रोगों के बीच अद्वितीय है क्योंकि एक टीका एक से अधिक जाति के खिलाफ रक्षा करने की क्षमता रखता है और 2 रोग के उपचार तथा रोग को रोकने में प्रभावशाली है। दुर्भाग्यश कालाजार के लिए कोई भी टीका अभी तक अनुमोदित नहीं है, जबकि टीका बनाने हेतु बहुत सारे कार्यक्रम चल रहे हैं।

एच.आई.वी. / कालाजार सहसंक्रमण का उपचार

इन सभी रोगियों में अधिक परजीवी बोझ, कमजोर प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया, दुर्बल, उपचार प्रतिक्रिया और बहुत ज्यादा रोग पुनरावर्तन पाया जाता है। पेन्टावैलेन्ट एन्टीमोमियल एच आई वी रोगी के लिए बहुत जहरीली होती है। जिसके कारण से दिल की बीमारी और प्रैक्रिया लीवर के लिए बहुत ही देखभाल की जरूरत होती है। इन रोगियों के लिए सबसे अच्छा विकल्प एम्फोटोरिसिन वी 4mg/kg का खुराक 1–5 दिन, 10, 17, 24, 31 और 38 वें दिन। बहुत सारे प्रकाशन में रोग के पुनरावर्तन को रोकने के लिये द्वितीयक उपाय बताया गया है, लेकिन रोग विषयक परीक्षण से अधिक सबूतों की जरूरत है इस विषय को प्रभावशाली बनाने के लिये। एच.आई.वी. के शुरू होने से कालाजार सहसंक्रमण नाटकीय रूप से कम हुआ है और रोग के पुनरावर्तन का अन्तराल भी बढ़ाता है। इसलिये एन्टीलिसमानियल दवा के साथ एच.आई.वी. का इलाज भी मरीज को दिया जाना चाहिये।

कालाजार उन्मूलन कार्यक्रम

2005 में, भारत, नेपाल बंगलादेश सरकार एक क्षेत्रीय कालाजार उन्मूलन शुरू किया है क्योंकि 67 प्रतिशत रोगियों को बोझ इन्हीं देशों में है। इस कार्यक्रम का लक्ष्य 2015 तक इन देशों से कालाजार से मुक्त करना है जो कि स्थानीय प्रस्ताव द्वारा रोग के प्रतिवर्ष होने की दर को 1 प्रति 10000 से भी कम करना है। भारतीय उपमहाद्वीप में कालाजार उन्मूलन के लिए तर्क इस प्रकार है–

इस क्षेत्र में यह रोग मनुष्य एन्थ्रोपोनोटिक है। मनुष्य इनका अेकला भण्डाग्रह है तथा बालू मक्खी केवल अेकली रोगाणूवाहक है। इस क्षेत्र में प्रभावी एवं उपलब्ध दवा तथा सीधे निदान जाँच rk39 इम्यूनोक्रोमैयेग्राफिक परीक्षण उपलब्ध है जो इस क्षेत्र में उपयोग किये जा सकते हैं। यहाँ मजबूत राजनैतिक प्रतिबधता और अन्तर राष्ट्रीय सहयोग है और यह रोग केवल सीमित जिलों में स्थानिक है।

समापन

rk39 आधारित इम्यूनोक्रोमेटोग्राफिक पट्टी परीक्षण कालाजार के निदान के लिए सबसे अधिक संवेदनशील, सरल तथा तेजी से काम करने वाला सबसे सस्ता परीक्षण है। लेकिन भविष्य में हमें रोग की सक्रिय अवस्था तथा परजीवी प्रतिशोध को जानने के लिये इस जाँच में सुधार की आवश्यकता है।

कई प्रभावी अग्रिम दवाऐं कालाजार के उपचार के लिए बनाई जा चुकी है। जैसे– एकल खुराक L-AmB, संयोजन चिकित्सा और परोमोमाइसिन जैसी नई दवाऐं। यधपि दवा प्रतिरोध दुबारा कालाजार के नियंत्रण को उलझा देती है। दवा से उत्पन्न प्रतिरोध कालाअजार इलाज में मुश्किलें पैदा कर रहा है। संयोजन चिकित्सा तथा इलाज की समयावधि को कम करके इन मुश्किलों को दूर किया जा सकता है। साथ ही चिकित्सा विज्ञान के रूप में रोग निरोधीकरण के लिए टीके और इम्यूनोमोड्यूलेटर के उपयोग से रोग नियंत्रण में एक लम्बा रास्ता तय करना होगा।

इसलिए, इस बीमारी से बचने के लिए प्रभावी कालाजार उन्मूलन कार्यक्रम के कार्यान्वयन के मामलों के शीघ्रनिदान और इलाज पूरा हो, सभी स्तरों और नैदानिक और संचाल अनुसंधान में निष्क्रिय और सक्रिय मामले का पता लगाने, सामाजिक जागरूकता और भागीदारी के निर्माण के माध्यम से एकीकृत वेक्टर प्रबंधन, प्रमुख रोग निगरानी पाँच सूत्री रणनीति होना चाहिए।

प्रो. श्याम सुन्दर और उनकी वैज्ञानिक टीम काशी हिन्दू विश्वविद्यलाय में बहुत ही सघन शोध कर रही है। उनकी देखरेख में बहुराष्ट्रीय प्रोजेक्ट कालाजार उन्मूलन के लिए चलाए जा रहे हैं और यह आशा की जाती है कि उनके द्वारा किया गया काम कालाजार उन्मूलन में बहुत ही उपयोग साबित होगा।

आपात चिकित्सा प्रभागः सर सुन्दरलाल चिकित्सालय

डॉ. कुन्दन कुमार

आपात चिकित्सा प्रभाग, सर सुन्दरलाल चिकित्सालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

किसी भी चिकित्सालय के हृदय के रूप में आपात चिकित्सा विभाग/प्रभाग की गिनती होती है। इसका मुख्य कारण दैनिक सामान्य रोगियों के पास क्षेत्र विशेष से लेकर देश–विदेश तक सामर्थ्य के अनुसार चिकित्सालय चुनने की सुविधा होती है। परन्तु आपात परिस्थितियों में शीघ्र ही निकटतम चिकित्सालय में जाने की आवश्यकता होती है। सर सुन्दरलाल चिकित्सालय में प्रारम्भ से ही आपात चिकित्सा कक्ष इसके पुराने भवन के एक कक्ष में स्थित था। सन् 1978 में यह सर सुन्दरलाल चिकित्सालय के नए भवन में स्थानान्तरित हो गया।

चौबीस घण्टे एवं सातों दिन सेवा प्रदान करने वाला यह प्रभाग पूर्वी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बिहार, उत्तरी पश्चिमी झारखण्ड, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के अलावा नेपाल से भी आये मरीजों को अपनी सेवाएं प्रदान करता है। सात चिकित्साधिकारियों के साथ प्रशिक्षु चिकित्सकों का दल सदैव अपनी सेवा देने में तत्पर रहता है। मानीटर, डिफिब्रिलोर, अल्ट्रासाउण्ड एवं ई.सी.जी. मशीन के साथ पूर्ण सुसज्जित ऑपरेशन कक्ष आपात चिकित्सा प्रभाग में ही मौजूद है। चिकित्सा विज्ञान संस्थान के सभी विभाग आवश्यकतानुसार यहाँ अपनी सेवाएं देते हैं।

पिछले दिनों में हुए श्रमजीवी रेल दुर्घटना, संकटमोचन बम ब्लास्ट, गंगा घाट एवं रेलवे स्टेशन बम ब्लास्ट, मुगलसराय रेलवे स्टेशन दुर्घटना, सोएपुर जहरीली शराब काण्ड आदि में आपात चिकित्सा प्रभाग ने उल्लेखनीय सेवाएं प्रदान की हैं। बढ़ती हुई सड़क दुर्घटनाओं के कारण यहाँ आने वाले रोगियों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है जो आज प्रतिवर्ष 80,000 के आंकड़े को पार कर गया है। इसी के मद्देनजर वर्तमान कुलपति पद्मश्री लालजी सिंह जी ने सौ शय्याओं वाले नए आपात चिकित्सालय के भवन का शिलान्यास किया है। केन्द्रीय सरकार से सहायता प्राप्त ट्रामा सेन्टर भी करीब–करीब बनकर तैयार है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी समिति ने आपात चिकित्सा को विभाग के रूप में बनाने की मंजूरी केन्द्र सरकार को प्रेषित कर दी है। इसके तहत यहाँ सेमिनार कक्ष का निर्माण कर उसमें आपात चिकित्सा सम्बन्धी सेमिनारों का आयोजन प्रारम्भ हो गया है।

सड़क दुर्घटनाओं के अलावा, जलने, जहर खाए, हृदयाघात, पक्षाघात, दिमागी बुखार एवं मलेरिया, बेहोश हुए रोगी आदि प्रतिदिन इस प्रभाग का लाभ अर्जित कर रहे हैं।

अस्थि चिकित्सा विभाग का वर्तमान स्वरूप

प्रो. अमित रस्तोगी

अस्थि चिकित्सा विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सर सुन्दर लाल अस्पताल का अस्थि चिकित्सा विभाग अपने चिकित्सकों की निष्ठा और समर्पण के बलबूते सदैव से गौरवान्वित रहा है। ये विभाग पूर्वांचल के करीब 1 लाख मरीजों को हर वर्ष उच्च स्तरीय चिकित्सा मुहैया कराने में सफल रहा है। यहाँ पर उत्तर प्रदेश के बड़े भाग, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, नेपाल आदि से मरीज आते हैं। तृतीय स्तर का रेफरल केन्द्र होने के कारण यह राजकीय अस्पतालों के चिकित्सकों का पसंदीदा रेफरल केन्द्र रहा है। अस्थि विभाग में कुल 64 बेड है जिसकी सेवा मुफ्त है। इसके अलावा स्पेशल वार्ड में रोगी अपने सामर्थ्यानुसार कमरा ले सकते हैं। बड़े आपरेशन मात्र रुपये 2500/– में और सामान्य और छोटे आपरेशन मात्र रुपये 200/– में किये जाते हैं। यहाँ पर रीढ़ की हड्डी, कूल्हा एवं घुटना प्रत्यारोपण, ट्यूमर, फ्रैक्चर, हड्डी लंबी एवं सीधा करने की शल्य प्रक्रिया, बार–बार हड्डी खिसकना, जन्मजात अनियमितताओं आदि की शल्य प्रक्रिया अनुभवी चिकित्सकों द्वारा की जाती है। विभाग में कुल पांच प्रोफेसर एवं एक सहयोगी प्रोफेसर कार्यरत हैं, जो विभिन्न शल्य प्रक्रिया पद्धतियों के अनुभवी चिकित्सक हैं। कुल दो आपरेशन थिएटर है, जिनमें प्रतिदिन विभिन्न शल्य प्रक्रियाएं होती हैं। इमरजेन्सी सेवा 24 घण्टे उपलब्ध रहती हैं। विभाग में कार्यरत 27 रेजीडेंट डाक्टर मरीजों की सेवा के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं।

तीन वर्ष के पोस्ट ग्रेजुएट प्रोग्राम में उन्हें विभिन्न शल्य प्रक्रियाओं से अवगत कराया जाता है। प्रतिदिन 350 मरीजों को वे अपनी सेवाएं विभाग के बहिरंग कक्ष में देते हैं। प्लास्टर, ड्रेसिंग, बायोप्सी, खिंचाव इत्यादि बहिरंग कक्ष में प्रतिदिन की जाती है। विभाग का योगदान अस्थि संबंधित रोगों से जुड़े शोध में भी नियमित रूप से रहता है। प्रतिवर्ष विभाग से विभिन्न शोधपत्र राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जर्नल्स में प्रकाशित होते रहते हैं। चिकित्सकों द्वारा विभिन्न चिकित्सकीय सम्मेलनों में व्याख्यान दिये जाते हैं। स्नातकोत्तर स्तर पर चिकित्सकों को कक्षाओं में शिक्षित किया जाता है और शोध में शामिल किया जाता है। प्रतिवर्ष एम.एस. एवं डी.एन.बी. की परीक्षा का संचालन भी किया जाता है।

विभाग का नवीनीकरण

विभाग बहुत जल्द ही दूरबीन विधि द्वारा आपरेशन; (आर्थोस्कोपी) का शुभारम्भ करने जा रहा है। जिसके लिए विदेश से आयातित आर्थोस्कोपी मशीन की स्थापना हो चुकी है। आपरेशन थिएटर को विदेशों की तर्ज पर लेमिनर फ्लो ओ.टी. बनाने की कवायद शुरू है। इमरजेन्सी सेवा में व्यवधान न पड़े इसके हेतु एक सी आर्म एक्स–रे मशीन की स्थापना इमरजेंसी ओ.टी. में उपलब्ध है जिसकी वजह से रोगों के त्वरित निवारण में अत्यधिक मदद मिली है। विदेशी उपकरणों, मशीनों, ड्रिल इत्यादि तथा चिकित्सकों के भारतीय मूल्य श्रद्धा से हम इस विभाग को विश्व स्तरीय चिकित्सालयों के समकक्ष खड़ा कर सकेंगे।

औषधि गुण एवं प्रायोगिकी विज्ञान विभाग (फार्माकोलॉजी)

प्रो. बी. एल. पाण्डेय

फार्माकोलॉजी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चिकित्सा स्नातक प्रशिक्षण के द्वितीय चरण में औषधिगुण प्रायोगिकी का प्रशिक्षण भावी स्नातकों की समग्र सोच व कृति के विशिष्ट वैज्ञानिक संस्कार की अपेक्षा से प्रदान किया जाता है। प्रौद्योगिक शिक्षण संस्थायें औषधि गुणों पर केन्द्रित होकर औषधि निर्माण व विकास से उद्देशित होते हैं। चिकित्सा में औषधि प्रयोग बहुआयामी विधा है जिसमें समग्र विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, मानविकी सतत् समाहित होकर, प्रायोगिक कुशलता साध्य करने को प्रवृत्त है। कई पाश्चात्य उन्नत संस्थान आदर्श चिकित्सा प्रणाली प्रस्तुत करते हुये, औषधि प्रायोगिक विशेषज्ञों की निरीक्षण व परामर्श में सीधी सहभागिता करते हैं। स्वदेश में अधिकतर, मानवीय परीक्षण के अंतिम चरण में प्रायोगिक चिकित्साविद्, औषधि विकास हेतु सहभागिता करते हैं। चिकित्सा विज्ञान के समस्त विषयों का औषधि संदर्भित अध्ययन ही वस्तुतः इस विषय का प्रारूप है। बी.एच.यू. स्थित चिकित्सा विज्ञान संस्थान में इस विषय का प्रशिक्षण इसी मूल अवधारणा से प्रेरित स्नातक, परास्नातक, शोधछात्र स्तर पर दिया जा रहा है। संलग्न आयुर्वेद परास्नातक, दंत विज्ञान स्नातक, परिचारिका स्नातकों को इस विषय के सिद्धान्त एवम् प्रयोग विधि का प्रशिक्षण, शिक्षण कार्य के लचीले संदर्भ में सरलीकरण का अनुभव संग्रह करा रहा है। संस्थान में भिन्न चिकित्सा विषयों व विशेषज्ञों से संयुक्त शोध कार्य व संगोष्ठियां विषय की प्रसांगिकता, विस्तार व समृद्धि का आधार है। विस्तृत विषय क्षेत्र में शिक्षकों का सीमित रूचिक्षेत्र चुनकर शोध कार्य की विशेषज्ञता पुष्ट करना भी स्वाभाविक है। विभाग में जहाँ चिकित्सा विषयों से संयुक्त शोध उपक्रम होते हैं वहीं पारम्परिक औषधियों, मानसिक चिकित्सा, औषधीय स्वरूप उन्नयन आदि पर शोध कार्य भी प्रचलित है। संस्थान में शोध आचार संहिता के आगमन से पशुओं पर होते प्रयोगों में कमी आयी है, परन्तु यह अधिक सहयोगपरक संयुक्त शोध उपक्रमों हेतु अवसर प्रदान कराता है। विषय अति विस्तृत है व वास्तव में अन्यान्य विषयों का संगम है। स्नातक कठिनाई न अनुभव करें यह आवश्यक है। संभवतः यह एक कारण है कि देशभर में इस विषय के शिक्षक चिकित्सा अध्यापन शास्त्र के विकास में भी अग्रणी हैं। इस विभाग की भी प्रमुख सहभागिता पूर्ववर्ती राष्ट्रीय चिकित्सा प्रशिक्षण केन्द्र में रही है। इस वर्ष संस्थान का सर्वश्रेष्ठ परास्नातक व सर्वश्रेष्ठ प्रवक्ता शोधकर्ता इसी विभाग से रहे। संस्थान प्रशासन के अवसर न आने से विभाग विकास में एक गंभीर रिक्तता डी.एम. औषध मानवीय प्रायोगिकी पाठ्यक्रम प्रारम्भ न कर पाने की रही है। यहाँ से निकले परास्नातक ऐसे पाठ्यक्रमों के प्रमुख संचालक हैं, (चंडीगढ़, कलकत्ता आदि के संस्थानों में)। वर्तमान संस्थान प्रशासन की रूचि से इस दिशा में थेरापुटिक ड्रग मानिटरिंग, एडवर्स ड्रग क्लीनिक, मैटाबोलिक वार्ड व सघन चिकित्सा सुविधा के आधार पर सृजन, इस दिशा में प्रगति में सहायक हो सकेगा। विभाग, संस्थान, विश्वविद्यालय व समस्त आयामों में व्यक्तिगत आसक्ति नहीं अपितु मौलिक बहुआयामी प्रगति की प्रतिबद्धता से भावी छात्रों हेतु स्वर्णिम अवसरों के सृजन की कामना है।

डेंगू बुखार

डॉ. जया चक्रवर्ती एवं प्रो. श्याम सुन्दर

मेडिसिन विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

यह क्या और कैसे?

डेंगू बुखार एक आम संचारी रोग है जिसकी मुख्य विशेषताएं है– तीव्र बुखार, अत्यधिक शरीर दर्द तथा सिर दर्द।

यह किस कारण होता है?

यह 'डेंगे' (विषाणु) द्वारा होता है जिसके चार विभिन्न प्रकार (टाइप) है। (टाइप 1, 2, 3, 4)। आम भाषा में इस बिमारी को 'हड्डी तोड़ बुखार' कहा जाता है क्योंकि इसके कारण शरीर व जोड़ों में बहुत दर्द होता है। यह समय–समय पर इसे महामारी के रूप देखा जाता है। वयस्को के मुकाबले, बच्चों में इस बीमारी की तीव्रता अधिक होती है। यह बीमारी यूरोप महाद्वीप को छोड़कर पूरे विश्व में होती है तथा काफी लोगों को प्रभावित करती है। उदाहरण के तौर पर एक अनुमान है कि प्रतिवर्ष पूरे विश्व में लगभग 2 करोड़ लोगों को डेंगू बुखार होता है।

डेंगू फैलता कैसे है

मलेरिया की तरह डेंगू बुखार भी मच्छरों के काटने से फैलता है। इन मच्छरों को 'एडीज मच्छर' कहते है जो दिन में भी काटते हैं। भारत में यह रोग बरसात के मौसम में तथा उसके तुरन्त बाद के महीनों (अर्थात् जुलाई से अक्टूबर) में सबसे अधिक होता है।

डेंगू बुखार से पीड़ित रोगी के रक्त में डेंगू वायरस काफी मात्रा में होता है। जब कोई एडीज मच्छर डेंगू के किसी रोगी को काटता है तो वह उस रोगी का खून चूसता है। खून के साथ डेंगू वायरस भी मच्छर के शरीर में प्रवेश कर जाता है। मच्छर के शरीर में डेंगू वायरस का कुछ और दिनों तक विकास होता है। जब डेंगू वायरस युक्त मच्छर किसी अन्य स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तो वह डेंगू वायरस को उस व्यक्ति के शरीर में पहुँचा देता है। इस प्रकार वह व्यक्ति डेंगू वायरस से संक्रमित हो जाता है तथा कुछ दिनों के बाद उसमें डेंगू बुखार रोग के लक्षण प्रकट हो सकते हैं।

संक्रामक कालः जिस दिन डेंगू वायरस से संक्रमित कोई मच्छर किसी व्यक्ति को काटता है तो उसके लगभग 3–5 दिनों बाद ऐसे व्यक्ति में डेंगू बुखार के लक्षण प्रकट हो सकते हैं। यह संक्रामक काल 3–10 दिनों तक भी हो सकता है।

डेंगू बुखार के लक्षणः लक्षण इस बात पर निर्भर करेंगे कि डेंगू बुखार किस प्रकार का है। डेंगू बुखार तीन प्रकार के होते हैं।

1. क्लासिकल (साधारण) डेंगू बुखार
2. डेंगू हॅमरेजिक बुखार (डीएचएफ)
3. डेंगू शॉक सिन्ड्राम (डीएसएस)

क्लासिकल (साधारण) डेंगू बुखार एक स्वंय ठीक होने वाली बीमारी है तथा इससे मृत्यु नहीं होती है लेकिन यदि डीएचएफ तथा डीएसएस का तुरन्त उपचार शुरू नहीं किया जाता है तो वे जानलेवा सिद्ध हो सकते हैं।

इसलिए यह पहचानना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि साधारण डेंगू बुखार है या डीएचएफ अथवा डीएसएस है। निम्नलिखित लक्षणों से इन प्रकारों को पहचानने में काफी सहायता मिलेगी।

1. क्लासिकल (साधारण) डेंगू बुखार

ठंड लगने के साथ अचानक तेज बुखार चढ़ना।

सिर, मांसपेशियों तथा जोड़ों में दर्द होना।

आंखों के पिछले भाग में दर्द होना जो आंखों को दबाने या हिलाने से और भी बढ़ जाता है।

अत्यधिक कमजोरी लगना, भूख में बेहद कमी तथा जी मितलाना।

मुँह के स्वाद का खराब होना।

गले में हल्का सा दर्द होना।

रोगी बेहद दुःखी तथा बीमार महसूस करता है।

शरीर पर लाल ददोरे (रैश) निकल सकते हैं।

साधारण (क्लासिकल) डेंगू बुखार की अवधि लगभ 5–7 दिन तक रहती है और रोगी ठीक हो जाता है। अधिकतर मामलों में रोगियों को साधारण डेंगू बुखार ही होता है।

2. डेंगू हॅमरेजिक बुखार (डीएचएफ)

यदि साधारण (क्लासिकल) डेंगू बुखार के लक्षणों के साथ–साथ, निम्नलिखित लक्षणों में से एक ही लक्षण प्रकट होता है तो डीएचएफ होने का शक करना चाहिए।

रक्तस्राव (हॅमरेज होने के लक्षण) : नाक, मसूढ़ों से खून जाना, शौच या उल्टी में खून जाना, त्वचा पर गहरे नीले–काले रंग के छोटे या बड़े चिकत्ते पड़ जाना आदि रक्तस्राव (हॅमरेज) के लक्षण हैं। यदि रोगी की किसी स्वास्थ्य कर्मचारी द्वारा ''टोर्निके टैस्ट'' किया जाये तो वह पॉजिटिव पाया जाता है प्रयोगशाला में कुछ रक्त परीक्षणों के आधार पर डीएचएफ के निदान की पुष्टि की जा सकती है।

3. डेंगू शॉक सिन्ड्रोम (डीएसएस)

इस प्रकार के डेंगू बुखार में डीएसएस के उपर बताए गये लक्षणों के साथ–साथ ''शॉक'' की अवस्था के कुछ लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं। डेंगू बुखार में शॉक के लक्षण ये होते हैं :

रोगी अत्यधिक बेचैन हो जाता है और तेज बुखार के बावजूद भी उसकी त्वचा ठण्डी महसूस होती है।

रोगी धीरे–धीरे होश खोने लगता है।

यदि रोगी की नाड़ी देखी जाए तो वह तेज और कमजोर महसूस होती है। रोगी का रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) कम होने लगता है।

उपचार

यदि रोगी को साधारण (क्लासिकल) डेंगू बुखार है तो उसका व देखभाल घर पर की जा सकती है। चूंकि यह स्वंय ठीक होने वाला रोग है इसलिए केवल लाक्षणिक उपचार ही चाहिए। उदाहरण के तौर पर :

स्वास्थ्य कर्मचारी की सलाह के अनुसार पेरासिटामॉल की गोली लेकर बुखार को कम रखिए।

रोगी को डिसप्रिन, एस्प्रीन कभी ना दें।

यदि बुखार $102^{0}F$ से अधिक है तो बुखार काक कम करने के लिए पानी की पट्टी लगाएं।

सामान्य रूप से भोजन देना जारी रखें। बुखार की स्थिति में शरीर को और अधिक भोजन की आवश्यकता होती है।

रोगी को आराम करने दें।

यदि रोगी में डीएचएफ या डीएसएस की ओर संकेत करने वाला एक भी लक्षण प्रकट होता नजर आए तो शीघ्रतिशीघ्र रोगी को निकटम अस्पताल में ले जाएं ताकि वहां आवश्यक परीक्षण करके रोग का सही निदान किया जा सके और आवश्यक उपचार शुरू किया जा सके। (जैसे कि द्रव्यों या प्लेटलेट्स कोशिकाओं को नस से चढ़ाया जाना)। प्लेटलेट्स एक प्रकार की रक्त कोशिकाएं होती हैं जो डीएचएफ तथा डीएसएस में कम हो जाती हैं। यह भी याद रखने योग्य बात है कि डेंगू बुखार के प्रत्येक रोगी को प्लेटलेट्स चढ़ाने की आवश्यकता नहीं होती है।

यदि समय पर सही निदान करके जल्दी उपचार शुरू कर दिया जाए तो क्ष्थ तथा वै का भी सम्पूर्ण उपचार संभव है।

रोकथाम

डेंगू बुखार की रोकथाम सरल, सस्ती तथा बेहतर है। आवश्यकता है कुछ सामान्य उपाय बरतने की उपाय निम्नलिखित है :

(1) एडीज मच्छरों का प्रजनन (पनपना) रोकना।

(2) एडीज मच्छरों के काटने से बचाव।

एड़ीज मच्छरों का प्रजनन रोकने के लिए उपाय

मच्छर केवल पानी के स्रोतों में ही पैदा होते हैं जैसे की नालियों, गड़ढ़ों, रूम कूलर्स, टूटी बोतलों,

पुराने टायर्स व डिब्बों तथा ऐसी ही अन्य वस्तूओं में जहाँ पानी ठहरता हो।

अपने घर में और उसके आस–पास पानी एकत्रित न होने दें। गड़ढ़ों को मिट्टी से भर दें। रूकी हुई नालियों को साफ कर दें। रूम कूलरों तथा फूल दानों का सारा पानी सप्ताह में एक बार पूरी तरह खाली कर दें, उन्हें सुखाएं तथा फिर से भरें। खाली व टूटे–फूटे टायरों, डिब्बों तथा बोतलों आदि का उचित विसर्जन करें। घर के आस–पास सफाई रखें।

पानी की टंकियों तथा बर्तन को सही तरीके से ढक कर रखें ताकि मच्छर उसमें प्रवेश ना कर सकें और प्रजनन न कर पायें।

यदि रूम कूलरों तथा पानी की टंकियों को पूरी तरह खाली करना संभव नहीं है तो यह सलाह दी जाती है कि उनमें सप्ताह में एक बार पेट्रोल या मिट्टी का तेल डाल दें। प्रति 100 लीटर पानी के लिए 30 मि.लि. पेट्रोल या मिट्टी का तेल पर्याप्त है। ऐसा करने से मच्छर का पनपना रूक जायेगा।

पानी के स्रोतों में आप कुछ छोटी किस्म की मछलियां (जैसे कि गैम्बुसिया, लेबिस्टर) भी डाल सकते हैं। ये मछलियां पानी में पनप रहे मच्छरों व उनके अण्डों को खा जाती हैं। इन मछलियों को स्थानीय प्रशासनिक कार्यालयों (जैसे की बी.डी.ओ. कार्यालय) से प्राप्त किया जा सकता है।

यदि संभव हो तो खिड़कियों व दरवाजों पर महीन जाली लगवाकर मच्छरों को घर में आने से रोकें।

मच्छरों को भगाने व मारने के लिए मच्छर नाशक क्रीम, स्प्रे, मैट्स, कॉइल्स आदि प्रयोग करें। गूगल के धुएं से मच्छर भगाना एक अच्छा देशी उपाय है। रात में मच्छरदानी के प्रयोग से भी मच्छरों के काटने से बचा जा सकता है।

ऐसे कपड़े पहनना ताकि शरीर का अधिक से अधिक भाग ढका रहे।

मच्छर नाशक दवाई छिड़कने वाले कर्मचारी जब भी यह कार्य करने आयें तो उन्हें मना मत कीजिए। घर में दवाई छिड़कवाना आप ही के हित में है।

घर के अन्दर सभी क्षेत्रों में सप्ताह में एक बार मच्छर–नाशे दवाई का छिड़काव अवश्य करें। दवाई छिड़कते समय अपने मुंह व नाक पर कोई कपड़ा अवश्य बांध लें तथा खाने–पीने की सभी वस्तुओं को ढक कर रखें।

फ्रिज के नीचे रखी हुई पानी इकट्ठा करने वाली ट्रे को भी प्रतिदिन खाली कर दें।

अपने घर के आसपास के क्षेत्रों में सफाई रखें। कूड़ा–करकट इधर–उधर ना फेकें। घर के आसपास जंगली घास व झाड़ियां आदि न उगने दें। ये मच्छरों के लिए छिपने व आराम करने के स्थलों का कार्य करते हैं।

यदि आपको लगता है कि आपके क्षेत्रों में मच्छरों की संख्या में अधिक वृद्धि हो गयी है या फिर बुखार से काफी लोग ग्रसित हो रहे हैं तो अपने स्थानीय स्वास्थ्य केन्द्र, नगरपालिका या पंचायत केन्द्र में अवश्य सूचना दें।

यह भी याद रखने योग्य बात है कि एडीज मच्छर दिन में भी काट सकते हैं। इसलिए इनके काटने से बचाव के लिए दिन में भी आवश्यक सावधानियां बरतें।

डेंगू बुखार से ग्रस्त रोगी को बीमारी के शुरू के 6–7 दिनों में मच्छरदानी से ढके हुए बिस्तर पर ही रखें ताकि मच्छर उस तक ना पहुंच पाये। इस उपाय से समाज के अन्य व्यक्तियों को डेंगू बुखार से बचाने में काफी सहायता मिलेगी।

यदि आपको कभी भी ऐसा लगे कि काफी व्यक्ति ऐसे बुखार से पीड़ित हैं जो डेंगू हो सकता है तो शीघ्रतिशीघ्र स्थानीय स्वास्थ्य अधिकारियों को इसकी सूचना दें। ऐसा करने से डेंगू बुखार को, महामारी का रूप धारण करने से पहले ही आवश्यक कदम उठाकर नियन्त्रित किया जा सकेगा।

जनरल सर्जरी विभाग

प्रो. राहुल खन्ना

शल्य विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वर्तमान में शल्य विभाग 13 कुशल चिकित्सकों से शोभायमान है जिनमें से 5 सीनियर प्रोफेसर, 3 एसोसिएट प्रोफेसर और 5 सहायक प्रोफेसर हैं। ये चिकित्सक सर्जरी विभाग में 5 अलग–अलग यूनिटों में मरीजों के सेवा में सदैव तत्पर हैं।

शल्य विभाग में प्रतिदिन छोटे से लेकर बड़े तक हर प्रकार के आपरेशन किये जाते हैं। सर्जरी विभाग में मुख एवं गले, थॉयरायड, लीवर व बीलियरी तंत्र, पैन्क्रियास, कोलोरेक्टल, स्तन, हार्निया और वैस्कुलर सर्जरी से संबंधित आपरेशन नियमित रूप से किये जाते हैं। विभाग में लेप्रोस्कोपिक सर्जरी की सम्पूर्ण सुविधाएं उपलब्ध हैं। प्रति माह लगभग 100 मरीजों का इलाज लेप्रोस्कोपिक सर्जरी से किया जाता है, जिनमें गॉल ब्लैडर, अपेंडिक्स व हार्निया प्रमुख हैं। वैस्कुलर सर्जरी के अंतर्गत वैरीकोस वेन का इलाज रेडियो फ्रीक्वेंसी एब्लेशन नामक विधि से बड़ी सफलता से किया जा रहा है। इतना ही नहीं खून की बंद नलिकाओं का इलाज वैस्कुलर ग्राफ्ट द्वारा बाईपास करके सफलता पूर्वक किया जा रहा है। एब्डोमिनल एओर्टिक एनयूरिस्म का आपरेशन द्वारा इलाज विभाग में संभव है। लीवर व बीलियरी तंत्र और पैन्क्रियास से संबंधित बीमारियों और कैंसर का इलाज भी अब आपरेशन द्वारा बहुत सफलता से संभव हुआ है। सर्जरी विभाग इमरजेंसी और ट्रामा सर्जरी की सुविधाएं भी मुहैया कराने में अग्रणी रहा है। विभाग के प्रशिक्षित रेजीडेंट डॉक्टर 24 घण्टे आपात चिकित्सा विभाग में मरीजों की सेवा में तत्पर रहते हैं। विभाग में हार्मोनिक स्कालपल, इमेज इंटेंसीफायर, वीडियो इंडोस्कोपी, एनल मैनोमेट्री, इन्फ्रारेड कोएगुलेटर, पोर्टेबल अल्ट्रासाउंड और रेडियोफ्रीक्वेंसी एब्लेटर इत्यादि अत्याधुनिक सुविधाएं भी उपलब्ध हैं।

विभाग सप्ताह में 6 दिन बहिरंग विभाग में विभिन्न क्षेत्रों से आये मरीजों को अपनी सेवाएं उपलब्ध करता है। आवश्यकतानुसार उनमें से मरीजों को अन्तरंग विभाग में भर्ती करके उन्हें उचित चिकित्सा प्रदान कराई जाती है।

चिकित्सा शिक्षा में विभाग अग्रणी रहा है। विभाग में एम.सी.आई. के मानकों के अनुरूप एम.बी.बी.एस. की शिक्षा में सर्वदा उत्कृष्टता को बरकरार रखा है। विभाग प्रतिवर्ष 16 छात्रों को एम.एस. (जनरल सर्जरी) कोर्स में दाखिल करता है। ये छात्र विभाग में 3 वर्ष तक जूनियर रेजीडेंट की तरह काम करते हुए एक अच्छा चिकित्सक व एक कुशल सर्जन बनने के गुर सीखते हैं। ये छात्र अस्पताल में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए नियमित रूप से विभाग में होने वाले शैक्षिक गतिविधियों में भी सम्मिलित होते हैं। विभाग ने अनेक ऐसे छात्र समाज को दिए हैं जिन्होंने न केवल संस्थान का बल्कि विश्वविद्यालय की गरिमा को नए आयाम दिए हैं। शिक्षा व चिकित्सा के साथ–साथ शोध कार्यों में भी विभाग सदैव शामिल रहा है। वर्तमान में विभाग में डाईबिटिक फूट, गॉल ब्लैडर कैंसर, ब्रेस्ट कैंसर, उदर कैंसर, इत्यादि क्षेत्रों में शोध कार्य प्रगति पर है। विभाग के शिक्षक नियमित रूप से विभिन्न सम्मेलनों, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अपने व्याख्यान देते रहते हैं। विभाग नियमित रूप से सतत् चिकित्सा शिक्षा के कार्यक्रम व सम्मेलन आयोजित करवाता रहता है जिससे छात्रों व चिकित्सकों को सर्जरी के आधुनिक तरीकों से अवगत कराया जा सके।

सर्जरी विभाग अपनी पारदर्शिता, कर्मठ, लगन, समय के प्रति वचनबद्धता और अच्छे मानवीय संबंधों के लिए सामान्य जनता ही नहीं बल्कि पूरे विश्वविद्यालय में जाना जाता है। निकट भविष्य में विभाग में वैस्कुलर सर्जरी, मिनिमल इन्वेसिव सर्जरी, ट्रामा सर्जरी, गैस्ट्रो सर्जरी तथा इंडोक्रीन सर्जरी जैसे 5 नए अंग शामिल किये जायेंगे। अपने सतत् प्रयासों तथा संस्थान व विश्वविद्यालय के निरंतर सहयोग से सर्जरी विभाग चिकित्सा, शिक्षा व शोध के क्षेत्र में अपनी गुणवत्ता बनाये रखने के लिए सदैव वचनबद्ध रहेगा।

पैथोलॉजी एवं इम्यूनोलॉजी विभाग में उपलब्ध सुविधाएं

प्रो. ऊषा

पैथोलॉजी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

पैथोलॉजी विभाग में स्नातक (एम.बी.बी.एस., बी.डी. एस., नर्सिंग), स्नातकोत्तर (एम.डी., एम.एस. तथा एम. डी., एम.एस.–आयुर्वेद), डी.एम., एम.सी.एच., पीएच.डी., लेबोरेटरी डिप्लोमा तथा अन्य विद्यार्थियों को अध्यापन एवं प्रशिक्षण दिया जाता है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा चिकित्सा विज्ञान संस्थान के विभिन्न विभागों के साथ मिलकर पैथोलॉजी विभाग शोध कार्यों में भी सक्रियता से कार्य कर रहा है। विभाग की प्रयोगशाला में मरीजों की सेवा के लिए निम्नलिखित सेवाएं उपलब्ध हैं :

सन् 1968 – चिकित्सा विज्ञान संस्थान के नए परिसर में पैथोलॉजी विभाग की इमारत के शुभारंभ के अवसर का ऐतिहासिक चित्र {बाएं से दाएं – प्रो. के. एन. उडुपा, निदेशक, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, प्रो. वी. रामालिंगस्वामी, निदेशक, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली तथा संबोधित करते हुए प्रो. इंदु मोहन गुप्ता, विभागाध्यक्ष, पैथोलॉजी विभाग}

अ. हिस्टोपैथोलॉजी

बायोप्सी– कैंसर तथा अन्य बीमारियों के निदान के लिए अति आवश्यक जाँच।

इम्यूनोहिस्टो केमिस्ट्री– कैंसर के प्रकार का पता लगाने के लिए अति उपयोगी जाँच।

फ्रोजन सेक्शन – सर्जरी के दौरान कैंसर का तुरंत पता लगाने के लिए नई सुविधा।

आ. साइटोलॉजी

एफ.एन.ए.सी.– सुई के द्वारा कैंसर तथा अन्य गाँठों के निदान के लिए महत्वपूर्ण जाँच।

अल्ट्रासाउंड/सी.टी. स्केन निर्देशित एफ. एन.ए.सी.– शरीर के भीतरी अंगों में सुई के द्वारा कैंसर तथा अन्य गांठों के निदान के लिए महत्वपूर्ण जाँच।

पेप स्मीअर– गर्भाशय ग्रीवा के कैंसर को प्रारंभिक अवस्था में पकड़ने के लिए आवश्यक जाँच।

स्क्रेप स्मीअर– मुंह के कैंसर को पता करने की आसान जाँच।

बॉडी फ्लूड (शारीरिक द्रव)– शरीर के विभिन्न फ्लूड {पेरिटोनीअल, प्लूरल, मूत्र, मस्तिष्क} में कैंसर की जाँच।

ब्रोंकोस्कोपिक लवाज/बलगम– फेफड़े के कैंसर को पकड़ने की एक महत्वपूर्ण जाँच।

इम्प्रिंट स्मीअर– शरीर से सर्जरी द्वारा काटे गए अंग एवं मांस के टुकड़ों में कांच की स्लाइड पर कैंसर की जाँच।

इ. हिमेटोलॉजी

ब्लड स्मीअर– एनीमिया, ल्यूकेमिया (रक्त कैंसर), मलेरिया, फाइलेरिया एवं अन्य बीमारियों को पकड़ने की प्रारंभिक एवं अत्यंत महत्वपूर्ण रक्त– जाँच।

बोन मैरो स्मीअर– ल्यूकेमिया (रक्त कैंसर), माइलोमा, एनीमिया, काला–जार के निदान की विशिष्ट एवं आवश्यक जाँच।

बोन मैरो बायोप्सी– एप्लास्टिक एनीमिया, माइकोफाइब्रोसिस का सही पता लगाने की विशिष्ट जाँच।

फ्रोजन सेक्शन के लिये
क्रायोस्टेट मशीन

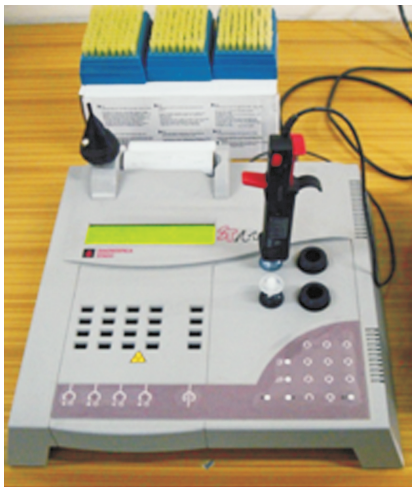

सेमीआटोमेटिक कोगुलेशन
एनालाइजर

पी.सी.आर. में प्रयुक्त थरमल
साइक्लर एवं जेलडॉक सिस्टम

कोगुलेशन प्रयोगशाला

इम्युनोहिस्टोकेमिस्ट्री प्रयोगशाला

पी.सी.आर. प्रयोगशाला

पेन्टाहेड माइक्रोस्कोप पर रिर्पोटिंग
कक्ष में अध्ययन

कोगुलेशन प्रोफाइल– रक्तस्राव एवं रक्त का थक्का जमने की बीमारियों के निदान के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण तथा आवश्यक रक्त जाँच।

हिमोग्लोबिन इलेक्ट्रोफोरेसिस– विभिन्न हिमोग्लोबिनोपेथी जैसे सिकल सेल अनीमिया, थेलेसिमिया इत्यादि के लिए विशेष रक्त जाँच।

ऑस्मोटिक फ्रेजिलिटी– हेरेडिटरी स्फिरो–साइटोसिस का पता करने की विशेष रक्त जाँच।

ई. यू.जी.सी. उच्चीकृत इम्यूनोडायग्लोस्टिक प्रशिक्षण एवं शोध केन्द्र–

हिपेटाईटीस प्रोफाइल– हिपेटाईटीस ए.बी.सी. एवं ई. संक्रमण की रक्त जाँच।

ट्यूमर मार्कर– प्रोस्टेट ग्रंथि, पुरूष अंडकोष, महिला अंडाशय, अग्नाशय, बड़ी आंत, पित्त की थैली तथा यकृत के कैंसर को पकड़ने की खून में जाँच।

आर्थराइटीस प्रोफाइल– जोड़ दर्द के निदान के लिए रूमेटॉइड फेक्टर, सी.आर.पी., एंटी सी.सी.पी. 2, एच.एल.ए. बी 27 की रक्त जाँच।

ऑटोइम्यून प्रोफाइल– ऑटोइम्यून बीमारियों का पता लगाने के लिए एंटी टी.पी.ओ., ए.एन.ए., डी.एन.ए. इत्यादि की रक्त जाँच।

माइलोमा प्रोफाइल– रक्त एवं मूत्र में इलेक्ट्रोफोरेसिस द्वारा माइलोमा की जाँच।

किडनी बायोप्सी– इम्यूनोफ्लोरेसेंस तथा विशेष स्टेनिंग द्वारा किडनी की बीमारियों के निदान की विशेष जाँच।

किडनी प्रत्यारोपण में एच एल ए टाइपिंग एवं क्रास मैचिंग।

इंडोक्राइनोलॉजी एवं मेटाबोलिज्म विभाग

प्रो. एस. के. सिंह

इंडोक्राइनोलॉजी एवं मेटाबोलिज्म विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चिकित्सा विज्ञान संस्थान के विकास के समयान्तराल में इंडोक्राइनोलॉजी का महत्वपूर्ण विकास भी सम्मिलित है। मेडिसिन विभाग के अंतर्गत इंडोक्राइनोलॉजी प्रभाग 1964 में स्थापित हुआ। सर्वप्रथम बहिरंग एवं 1971 में अंतरंग सेवा आरम्भ हुई। विशेषज्ञता पाठ्यक्रम 1976 से आरम्भ हुआ जो देश में दूसरे स्थान पर {प्रथम पोस्टग्रेजुएट इंस्टीट्यूट, चण्डीगढ़} था। इंडोक्राइनोलॉजी प्रभाग 1998 में मेडिसिन विभाग से अलग हो कर विभाग के रूप में उच्चीकृत हुआ और वर्ष 2000 में डी.एम. पाठ्यक्रम मेडिकल काउन्सिल ऑफ इण्डिया द्वारा स्वीकृत हुआ।

इस विभाग में डी.एम. पाठ्यक्रम के अंतर्गत शोध की सुविधा है, और विभिन्न विषयों पर शोधार्थी भी शोध करते हैं। इसके अतिरिक्त विभागीय प्रयोगशाला में विभिन्न प्रकार के हार्मोन सम्बन्धी जांच की सुविधा उपलब्ध है :

अ. हार्मोन सम्बन्धी जाँच

1. थायरॉयड हार्मोन T_3, T_4, TSH
2. गोनेडल हार्मोन LH, FSH, Prolactin, Testosterone
3. पैराथायरॉयड होर्मोन PTH
4. कार्टिसाल
5. डायबिटीज HbAlc, Insulin

ब. आस्टियोपोरोसिस के लिये डेक्सा मशीन

1. ब्योस्थीसियो मीटर
2. फुट स्कैन

स. डायबिटिक फुट की जाँच

द. थायरॉयड अल्ट्रासाउंड

इसके अतिरिक्त विभाग द्वारा बहिरंग सेवा प्रतिदिन उपलब्ध है। अंतरंग रोगियों के लिये डायबिटीज से सम्बन्धित शिक्षा प्रत्येक रविवार को दी जाती है। समय–समय पर विभाग द्वारा मधुमेह सम्बन्धी जांच {सुगर, कोलेस्ट्राल} निःशुल्क बहिरंग में प्रदान की जाती है। विभाग में सेन्टर ऑफ जेनेटिक डिसआर्डर के सहयोग से भी जाँच उपलब्ध है, जैसे– कैरियोटाइप। कुछ बीमारियों की जेनेटिक स्टडी भी की जाती है।

विधि चिकित्सा शास्त्र विभाग (फॉरेन्सिक विज्ञान)

प्रो. एस. के. त्रिपाठी

विधि चिकित्सा विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चिकित्सा स्नातक अध्ययन {एम.बी.बी.एस.} के द्वितीय चरण में विधि चिकित्सा शास्त्र का प्रशिक्षण होता है। विधि चिकित्सा शास्त्र यूं तो पूर्ण समस्त मानव जनित हानियों के निरीक्षण एवं विधिक प्रमाण का साक्षी होता है, तथापि जीवन काल से मृत्यु पर्यन्त तक सम्बद्ध स्थित इस कार्य को सम्बन्धित चिकित्सक निर्वहन करते हैं। संस्थान स्थित विभाग प्रमुख रूप से मृत्यु पश्चात् अन्वेषण कार्य एवं प्रशिक्षण में हाल के दशकों में केन्द्रित रहा है। वांछनीय प्रणाली जीवित अवस्था की परिस्थितियों को अनिवार्यता से समाहित करती है। वर्तमान समाज की जागरूकता चिकित्सा कार्य से अन्य हानियों को प्रमुखता से इस विज्ञान के अध्ययन को प्रमाणन का विषय बनाती है।

भिन्न प्रकार से घटित अस्वाभाविक मृत्यु के निरूपण के साथ ही संदर्भित विधिक पहलुओं के विश्लेषण में इस विभाग के शिक्षकों ने विशेष योग्यता सवंर्धित की। इस हेतु आवश्यक न्यायिक अध्ययन भी प्राप्त किया और क्षेत्र में अपनी विशिष्ट उपयोगिता स्थापित की। जटिल 'क्राइम' के संदर्भ में राजकीय एवं राष्ट्रीय अन्वेषण एजेंसियों को परामर्श प्रदान करते आये हैं। यह विभाग उन गिने–चुने शैक्षणिक संस्थानों में है जहाँ विषय की परास्नातक शिक्षा लम्बे अर्से से मान्यता प्राप्त हैं तथा शोधकार्यों का प्रमुख केन्द्र भी रहा है। वर्तमान विश्वविद्यालय की रूचि से इस विभाग के संयोजन में 'फोरेंसिक साइंस' के परास्नातक एवं शोध कार्य प्रशिक्षण हेतु सार्थक प्रयास भी हो रहा है।

विभाग की शैक्षणिक संवृद्धि हेतु संस्थान के दूर दृष्टा संस्थापक स्व. डॉ. के. एन. उडुप्पा जी ने राज्य सरकार समर्थित शव–विच्छेदन एवं परीक्षण तथा सम्बन्धित विधिक कार्य निर्वाह का यहाँ सृजन सन् 1962 में ही कर लिया था। विभाग ने न केवल अपने बल्कि संस्थान के अन्य विभागों जैसे– एनाटॉमी, पैथोलॉजी, माइक्रोबायोलॉजी, फार्माकोलॉजी, प्लास्टिक सर्जरी, आर्थोपेडिक, न्यूरो सर्जरी, जनरल सर्जरी, गायनाकोलाजी, डर्मेटोलाजी आदि के संयुक्त शोध उपक्रमों में सहभागिता की है। इतना ही नहीं भारतीय औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के 'फार्मेसी यूनिट' एवं मैटेरियल साइंस से भी शोधकार्य में सहभागिता रखी।

पंचवर्षीय योजना के अल्प अनुदान से ''टाक्सिकोलाजी यूनिट'' की सुविधा विकसित कर पर्यावरण शोध क्षेत्रों में भी योगदान कर सफलता पूर्वक कई शोधछात्रों का पीएच.डी. पाठ्यक्रम भी सम्पन्न किया गया।

छात्रों के अतिरिक्त राज्य सरकार के चिकित्सकों का निरंतर अनुभव जन्य प्रशिक्षण तथा विशिष्ट रीफ्रेशर पाठ्यक्रमों से विधिक चिकित्सा शिक्षण में विभाग का राष्ट्रीय योगदान रहा है। अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्रवर्तित प्रशिक्षु भी नियमित रूप से इस विभाग में प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे हैं।

भारतीय चिकित्सा परिषद (एम.सी.आई.) ने नये मेडिकल स्नातक पाठ्यक्रम में विधि चिकित्सा शास्त्र पाठ्यक्रम को पूर्णतः प्रायोगिक आधारित बनाया है जिसके तहत छात्रों को विधिक शव विच्छेदन परीक्षण व अस्पताल में चिकित्सकीय विधिक (मेडिको लीगल) परीक्षण व सेवाओं में सिद्धहस्त होना जरूरी है। अतः उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में विभाग पूर्ण रूप से अपने स्नातक व परास्नातक छात्रों को उपयुक्त वांछित प्रशिक्षण दे रहा है जिससे समाज पूर्णरूप से लाभान्वित हो सके।

इसी उपक्रम में विश्वविद्यालय प्रशासन के सहयोग से विभाग में एक ''शवगृह संकुल'' का निर्माण जनहित में कराया गया जो आधुनिक रूप से सर्वसुविधा सम्पन्न है।

वर्तमान में विभाग परिवर्तन के मोड़ पर है एवं वरिष्ठ चिकित्सकों के सेवानिवृत्ति के साथ संचालन युवाओं के अधीन हो रहा है जिनसे न केवल परंपरा के निर्वहन अपितु उत्थान की अपेक्षा की जाती है।

मस्तिष्क ज्वरः समस्या एवं रोकथाम

डॉ. सैफ अनीस

सामुदायिक चिकित्सा विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

मस्तिष्क ज्वर ऐसा रोग है जिसमें मस्तिष्क के किसी भाग में सूजन आ जाती है और रोगी में बुखार के रूप में प्रदर्शित होता है। यह एक जानलेवा रोग है। निम्न स्थितियां मस्तिष्क ज्वर के रूप में वर्णित की जा सकती हैः

1. **एनसेफालायटिस**– मस्तिष्क में तीव्र सूजन– आमतौर पर वायरल संक्रमण से होती है जैसे कि जापानी एनसेफालायटिस, डेगू, हैरपीस, पोलियों आदि। इसके अलावा ये मलेरिया, टी.बी. एवं अन्य रोगों में देखी जा सकती है।
2. **मेनिनजायटिस**– मस्तिष्क और मेरूरज्जु की झिल्ली की सूजन : भारत में मुख्यतः ये निस्सेरिया मेनिनजायटीडिस नामक बैक्टेरिया से होती है। ये टी.बी. और अन्य रोगों में भी मिल सकती है।
3. **सेरेब्राईटिस**– सेरेब्रम (मस्तिष्क का मुख्य भाग) की सूजन से वायरल, बैक्टिरियल संक्रमण या लुपस एक ऑटोइमुन रोग में मिलती है।

भारत में और विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में तो मस्तिष्क ज्वर या दिमागी बुखार शब्द का प्रयोग मुख्यतः या जापानी एनसेफालायटिस के लिये किया जाता है। हर वर्ष इस बीमारी से हजारों लोग मरते हैं। वर्ष 2011 में इसके 7838 मामले सामने आये और इनमें से 1137 लोगों की मृत्यु हुई। इनमें से लगभग 50 प्रतिशत लोग उत्तर प्रदेश के थे। इनमें से 85 प्रतिशत लोग 15 वर्ष से कम उम्र के थे और 10 प्रतिशत 60 वर्ष के ऊपर। इन आँकडों से पता चलता है यह रोग बच्चों एवं बूढ़े लोगों को अपना शिकार बनाता है।

जापानी एनसेफालायटिस के कारक

यह रोग फलवी वायरस नामक विषाणु से होता है। ये विषाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्हें साधारण सूक्ष्मदर्शी से भी नही देखा जा सकता है। इस रोग का वाहक मच्छर क्युलेकस की ट्राइटीनोरिनकस और विष्नुई नामक प्रजाति जब किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटती है तो वायरस उस व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाते है और लगभग 4 दिन से चौदह दिन के अन्दर उस व्यक्ति में इस रोग के लक्षण दिखने लगते हैं। ये वायरस सूअरों और पक्षियों में मिलते है जो कि इसे वातावरण में बनाये रखने में सहायक होते है ये मच्छरों के लिये वायरस का काम करते है।

जापानी एनसेफालायटिस के लक्षण

मस्तिष्क ज्वर के लक्षण अस्पष्ट होते है, लेकिन डॉक्टरों का कहना है कि इससे ज्वर, सिरदर्द, ऐंठन, उल्टी और बेहोशी जैसी समस्याएँ पैदा हो जाती है। रोगी का शरीर निर्बल हो जाता है। वह प्रकाश से डरता है। कुछ रोगियों के गर्दन में जकड़न आ जाती है। डॉक्टरों के मुताबिक रोगी लकवे के भी शिकार हो जाते हैं। ये सभी लक्षण मस्तिष्क की सुरक्षा प्रणाली के क्रियाशील होने के कारण प्रकट होते हैं, क्योंकि सुरक्षा प्रणाली संक्रमण से मुक्ति पाने के लिये क्रियाशील हो जाती है। मस्तिष्क ज्वर के लक्षण महसूस होते ही डाक्टर से परामर्श करना चाहिए अन्यथा यह जीवन के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

उपचार एवं रोकथाम

जापानी एनसेफालायटिस का कोई विशिष्ट इलाज नहीं है। इसमें रोगी के लक्षणों का इलाज किया जाता है जब रोगी अपने अंदर इस रोग से लड़ने की क्षमता पैदा कर लेता है तो वो ठीक होने लगता है। मच्छरों से बचाव और टीकाकरण ही इसका इलाज है।

इसके टीकाकरण हेतु कई वैक्सीन हैं–

बीजिंग स्ट्रैन	माउस ब्रेन डेरावन नाकायमा
वैक्सीन	सेल कल्चर डेरावन sa 14–14–2
jenvac	4 Oct 2013 से भारत में निर्मित

इस बीमारी को भारत सरकार द्वारा नेशनल वेक्टर बॉर्न डिसीज कंट्रोल प्रोग्राम के अन्तर्गत काबू में लाया जा रहा है।

संज्ञाहरण (निःसंज्ञा) जन जागरण

डॉ. अनिल कुमार पासवान

संज्ञाहरण विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संज्ञाहरण {एनेस्थेशिया}, का पारंपरिक अर्थ है संवेदनशीलता {दर्द महसूस करने सहित} महसूस करने की स्थिति का अवरोधन अथवा अस्थायी रूप से हरण। यह औषधीय प्रेरित होती है। यह रोगियों को तनाव तथा दर्द महसूस किये बिना शल्यक्रिया से गुजरने की अनुमति देती है। एक वैकल्पिक परिभाषा है ''प्रतिवर्ती जागरूकता की कमी'' जिसमें जागरूकता का पूर्ण रूप से अभाव होता है। हालांकि संज्ञाहरण तथा सर्जरी के दौरान होने वाली मौतों में पिछले दो दशकों में काफी कमी आई है, यह अभी भी डॉक्टरों और चिकित्सा शोधकर्ताओं की एक मुख्य चिंता का विषय है। यह माना जाता है कि लगभग दो दशक पहले संज्ञाहरण संबंधित मृत्यु दर दस हजार में एक थी, लेकिन आज दो सौ पचास हजार में एक है। भारत में 22 मार्च 1847 को कलकत्ता में सर्व प्रथम ईथर का प्रयोग किया गया। इसके तुरंत बाद क्लोरोफार्म बहुत लोकप्रिय हुआ क्योंकि यह एक सस्ता, सरल पदार्थ था तथा ईथर के विपरीत इसकी गन्ध अच्छी थी। इसके प्रयोग की एक वजह यह भी थी कि हम लोग ब्रिटेन के अनुयायी रहे हैं। 12 जनवरी 1925 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का एपेन्डिक्स का सफल ऑपरेशन क्लोरोफार्म सुंघा कर किया गया।

अन्य मेडिकल विषयों की भांति 1948 में एनेस्थिसीयालॉजी को एक मेडिकल विशेषता का स्तर प्राप्त हुआ। इसके बाद लगातार इस विषय की तथा इसकी वजह से शल्यक्रिया की प्रगति होती रही। विगत् कुछ वर्ष में निःसंज्ञा विज्ञान का वृहत विस्तार हुआ है तथा अब निःसंज्ञा विशेषज्ञ केवल परदे के पीछे के चिकित्सक होकर नहीं रह गये हैं। उनका कार्य आपरेशन के पहले आपरेशन के दौरान तथा आपरेशन के तुरंत बाद तक सीमित नहीं रह गया है तथा आज निःसंज्ञा विशेषण आई. सी.यू. में अतिरूग्ण मरीजों की देखभाल के लिए तथा ''पेन क्लिनिक'' में पुराने दर्द की चिकित्सा में भी भूमिका निभा रहे हैं। कुछ निःसंज्ञा विशेषण स्नातकोत्तर शिक्षा एवं अनुसंधान में लगे हुए हैं जिसकी वजह से इस विषय की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हो रही है।

मरीज की आवश्यकतानुसार तथा आपरेशन के अनुसार निःसंज्ञा तीन प्रकार की होती है। पूर्ण निःसंज्ञा {जिसमें की मरीज को बेहोश किया जाता है}, क्षेत्रीय निःसंज्ञा {शरीर का वह भाग सुन्न कर दिया जाता है जहां आपरेशन किया जाना है व मरीज जागता रहता है} या लोकल निःसंज्ञा {जिसमें बहुत छोटा क्षेत्र सुन्न कर दिया जाता है}। आम जनता अक्सर निःसंज्ञा विशेषण की योग्यता के प्रति अनजान व उदासीन होती है। आयुर्विज्ञान चिकित्सा के क्षेत्र में होने के कारण निःसंज्ञा विशेषज्ञ को बुनियादी चिकित्सकीय उपाधि {ए.बी.बी.एस.} उत्तीर्ण करनी होती है तत्पश्चात् कुछ तो दो वर्षीय डिप्लोमा {डी.ए.} करके तथा अधिकतर तीन वर्षीय {एम.डी.} डिग्री या डी.एन.बी. डिग्री प्राप्त करते हैं।

निःसंज्ञा पूर्व जांच {प्री-आपरेटिव चेकअप-पी.ए.सी.}

निःसंज्ञा विशेषज्ञ आपरेशन से पहले आकलन करता है कि मरीज उस आपरेशन के लिए उपयुक्त है या नहीं। प्री–एनेस्थीसिया क्लीनिक में मरीज की हृदयगति, रक्तचाप, श्वांसगति, हृदय व फेफड़े की स्थिति, ताप व श्वांसद्वार की जानकारी दर्ज की जाती है। आपरेशन के पहले तथा आपरेशन के दिन मरीज को दवायें दी जाती हैं, जिससे आपरेशन के बारे में चिंता को शान्त किया जा सके तथा यदि दर्द है तो दर्द कम करने की कुछ दवाएं दी जाती हैं। इस तरह से बेहोशी तथा उसकी वजह से होने वाले बुरे प्रभावों को कम किया जा सकता है।

निःसंज्ञा के प्रकार

पूर्ण निःसंज्ञा {जी.ए.} – पूर्ण निःसंज्ञा में मरीज के पुनः जागने वाली निद्रा में सुलाकर शल्यक्रिया सम्पादित की जाती है। मरीज को काटने तथा दर्द का कोई एहसास नहीं होता। वयस्क मरीजों में इसे कुछ इंजेक्शन नस में देकर किया जाता है। बच्चों में यह कुछ बेहोश करने

वाली गैस सुंघाकर बेहोश किया जाता है क्योंकि बच्चे सूई से डरते हैं।

क्षेत्रीय निःसंज्ञा

शरीर के किसी एक क्षेत्र को संवेदनहीन करने के लिए लोकल एनेस्थेटिक और नारकोटिक दवाओं को एक साथ मिश्रित करके या तो स्पाइनल कैनाल में या स्नायुओं के झुंड के नजदीक प्रविष्ट कर दिया जाता है। जिससे कि जिस क्षेत्र की शल्यक्रिया होनी है उस क्षेत्र को सुन्न किया जा सके। जिस विधि से सुन्न किया जाना है उस विधि को स्पाइनल, एपिड्यूरल या उचित नर्व ब्लाक के नाम से जाना जाता है। स्पाइनल एपिड्यूरल क्षेत्रीय निःसंज्ञा के लिए मरीज को करवट करवाया जाता है। इसके बाद घुटने से नाभि या सीने को छूती मुद्रा बनाई जाती है। कभी–कभी मरीज को बैठाकर भी स्पाइनल या एपिड्यूरल क्षेत्रीय निःसंज्ञा दी जाती है। ऐसा मेरूदण्ड को आगे की ओर झुकाने के लिए तथा स्थान को और अधिक खोलने के लिए किया जाता हैं। इस जगह से स्पाइनल या इपिड्यूरल सूई को प्रविष्ट करवाया जाता है तथा उसके द्वारा दवा दी जाती है। क्षेत्रीय निःसंज्ञा से पेट के निचले हिस्से की, जांघ की, घुटने की, पैरों की, हाथ की, कभी–कभी सीने की शल्यक्रिया भी की जा सकती है।

कुछ बहुत जटिल शल्यक्रिया के लिए बेहोशी शुरू करने से पहले एक बहुत ही बारीक कैथेटर को एपिड्येरल स्थान से प्रविष्ट कराया जाता है जिससे एपिड्यूरल विधि से आपरेशन के बाद दर्द का इलाज किया जा सके। यही विधि दर्द रहित प्रसव के लिए भी बहुत लोकप्रिय हो रही है।

लोकल निःसंज्ञा

जब किसी एक छोटे क्षेत्र को लोकल एनेस्थेटिक दवा द्वारा सुन्न किया जाता है उसे लोकल निःसंज्ञा कहा जाता है। मरीज के भार पर आधारित कुछ खुराक को ज्ञात कर लिया जाता है जिससे दवा के दुष्परिणामों से बचा जा सके। इस इंजेक्शन से एक छोटे क्षेत्र को सुन्न किया जा सकता है तथा छोटी शल्यक्रिया की जा सकती है। यह साधारण सी क्रिया है तथा इसके लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती तथा शल्य चिकित्सक स्वयं ही अक्सर लोकल निःसंज्ञा देकर शल्यक्रिया का निष्पादन कर लेते हैं। लोकल निःसंज्ञा का मरीज जाग सकता है तथा मौखिक आदेशों का पालन करता है।

आकस्मिक निःसंज्ञा

आकस्मिक अवस्था में निःसंज्ञा प्रदान करने के लिए बहुत योग्य, तत्पर एवं त्रुटिहीन निःसंज्ञा विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है। क्योंकि आकस्मिक अवस्था में रोगी न केवल असामान्य होता है बल्कि उसे सामान्य अवस्था में लाने के लिए समय भी नहीं होता है। कई बार बहुत ही जोखिम भरी हालत में मरीज को स्वीकार करना पड़ता है। आकस्मिक अवस्था में चिकित्सकीय तकनीक एवं नर्सों की सहायता की कमी होती है। कई बार मरीज का पेट खाली भी नहीं होता है तथा मरीज ने कभी–कभी शक्तिशाली दवा भी खायी होती है तथा तुरन्त आपरेशन के लिए सूचीबद्ध हो जाता है। इस सबके बावजूद जान बचाने के लिए शल्य चिकित्सक मरीज का आपरेशन करता है। इन परिस्थितियों में यह देखा जाता है कि मरीज की बिमारी या बेहोशी के खतरे में से क्या ज्यादा खतरनाक है? अगर बीमारी ज्यादा खतरनाक है तथा आपरेशन न होने का खतरा बेहोशी के खतरे से ज्यादा है तो जोखिम होते हुए भी बेहोशी दी जाती है।

शल्य क्रिया वाले दिन संबंधित सावधानियाँ

पेट को खाली रखने के लिए तथा उल्टी को रोकने के लिए कम से कम 6 घण्टे का उपवास आवश्यक है। इस तरह उल्टी वाला अम्लीय पदार्थ श्वांस नली में जाने से बचाया जा सकता है। अगर यह पदार्थ श्वांस नली में चला जाता है तो फेफड़े के छिद्रों को तथा श्वांस नली को बंद कर सकता है। इसकी वजह से श्वसन क्रिया बंद हो सकती है तथा घातक परिणाम निकल सकते हैं।

निःसंज्ञा उपरांत देखभाल

निःसंज्ञा विशेषज्ञ की जिम्मेदारी आपरेशन कक्ष से बाहर भी तथा आपरेशन के पश्चात भी बनी रहती है जब मरीज बेहोशी से बाहर आता है तथा जब बेहोशी सम्बन्धी शल्य क्रिया संबंधित जटिलताओं की संभावना बनी रहती है।

निःसंज्ञा सम्बन्धित खतरे

इस सम्बन्ध में यह बताना आवश्यक है कि हालांकि कभी–कभी शल्यक्रिया मामूली हो सकती है परन्तु निःसंज्ञा को कभी भी मामूली नहीं समझना चाहिए।

निःसंज्ञा एवं शल्यक्रिया के दुष्परिणाम के कई कारण हैं। यह हृदय एवं श्वांस सम्बन्धी परेशानी तथा

मधुमेह इत्यादि हैं जिनकी वजह से बेहोशी के खतरे बढ़ जाते हैं। बढ़ती हुई जीवन अवधि की वजह से अधिक से अधिक {बुजुर्ग} उम्र दराज मरीज आपरेशन के लिए आ रहे हैं तथा सहयोगी चिकित्सकीय बीमारियों की वजह से उनकी निःसंज्ञा व्यवस्था और जटिल हो जाती है तथा इनकी रूग्णता एवं मृत्यु का भय हमेशा बना रहता है।

निःसंज्ञा सम्बन्धित मिथक / मिथ्या धारणायें

निःसंज्ञा विशेषज्ञ बहुत ही गंभीर मरीजों का सघन चिकित्सा {आई.सी.यू.} में तथा पुराने दर्दो के इलाज {पेन क्लिनिक} में भी निपुण हो गये हैं। आज जनता के मन में विशेषकर भारत में निःसंज्ञा के विषय में कुछ गलत अवधारणाएं हैं। आज की निःसंज्ञा पद्धति के विषय में यह सत्य नहीं है क्लोरोफार्म सुंघाकर होता है, क्योंकि यह बहुत पहले से बन्द हो गया है। निःसंज्ञा और इससे सम्बन्धित दवाएं वजन के आधार पर मरीज के आम हालत के अनुसार दी जाती है। कभी–कभी शरीर की बढ़ती हुई प्रतिक्रिया वश ऐसी हानिकारण घटना हो जाती है। यह ओवर डोज के कारण न होकर, उसी मरीज की दवा की नार्मल खुराक को न पचाने के कारण होता है।

कुछ लोगों के मन की यह आशंका कि उन्हें आपरेशन के बीच में ही होश आ जायेगा तथा दर्द सहन करना पड़ेगा, निर्मूल है। निःसंज्ञा विशेषज्ञ लगातार निःसंज्ञा की स्थिति को एनस्थेटिक गैसों व दवाओं की मदद से बनाये रखता है। शल्यक्रिया के लिए कुछ अवधि की गहरी बेहोशी तथा कभी–कभी हल्की बेहोशी की आवश्यकता होती है। सतर्क निःसंज्ञा विशेषज्ञ द्वारा इस तरह की आवश्यकता को अवसर के अनुकूल सुनियोजित किया जाता है।

मानव शरीर में बिना किसी आन्तरिक स्थिति पर प्रभाव डाले बिना कुल रक्त का 10 प्रतिशत तक रक्तस्राव सहन करने की क्षमता रखता है। सामान्यतया अगर रक्तस्राव कुल रक्त का 10 प्रतिशत तक है तो खून चढ़ाने की आवश्यकता नहीं होती है। अगर यह हानि 15 प्रतिशत से ज्यादा होती है तो इसे खून चढ़ा कर पूरा किया जाता है। हालांकि नवजात शिशु में रक्तस्राव अगर कम है तो भी उसे खून चढ़ाकर पूरा करना चाहिए। इस खून की जांच करके रक्त बैंक में रखा जाता है तथा रोगी के खून से मैच करवा कर आवश्यकतानुसार उपलब्ध करवाया जाता है।

निःसंज्ञा विशेषज्ञ द्वारा प्रदत्त अन्य सेवाएं

आपरेशन कक्ष में निःसंज्ञा प्रदान करने एवं अंतःशल्य व शल्यक्रिया देखभाल के अलावा, निःसंज्ञा विशेषज्ञ का कार्य अब अन्य चिकित्सकीय स्थितियों में भी फैल गया है जिसमें उनकी ट्रेनिंग व दक्षता का मरीजों की भलाई हेतु ली जाती है। वे निम्न प्रकार की हैं –

1. गहन चिकित्सा कक्ष {आई.सी.यू} फेफड़ों के वैन्टीलेशन, रूधिर गतिक समर्थन {हीमाडायनामिक सपोर्ट} में तथा क्रमिक निरीक्षण एवं नियंत्रण, इनवेसिव मानिटरिंग आदि में विशेष दक्षता के कारण निःसंज्ञा विशेषज्ञों को कई लम्बे श्वांस रोगों के तथा अन्य गम्भीर रोगों के उपचार में अति उपयोगी पाया गया है।
2. पेन क्लीनिक द्वारा कई पुराने, असाध्य दर्दों के इलाज / उपचार में।
3. मरणासन्न मरीजों में उपशामी {पैलिएटिव} चिकित्सा प्रदान करना।
4. मेडिकल छात्र, पैराचिकित्सकों समेत, एम्बुलेंस व पुलिसकर्मियों तथा जब सम्भव हो आम जनता को कार्डियोपलमोनरी पुर्नजीवीकरण {रिसैसिटेशन}, सी.पी.आर. पढ़ाना व सिखाना।
5. चिकित्सकीय व पराचिकित्सकीय कर्मियों को {दोनों को जो निःसंज्ञा एवं गहन चिकित्सा में सम्मिलित है} अध्यापन व मूल्यांकन करना सिखाना।
6. शल्यकक्ष, प्री–ऑपरेटिव, पोस्ट–ऑपरेटिव कक्षों, {रीकवरी कक्ष एच.डी.यू.} गहन चिकित्सा कक्ष, ट्रामा व आक्समिक सेवाओं का संचालन करना।
7. सम्बन्धित चिकित्सकीय व बुनियादी विज्ञान में मरीजों के लाभ के लिए निरंतर अनुसंधानात्मक अध्ययन करना।

बाल शल्य विभाग – परिचय और उपलब्धियाँ

विजयेन्द्र कुमार, ए.एन. गंगोपाध्याय, डी.के. गुप्ता एवं एस.पी. शर्मा

बाल शल्य विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, का बाल शल्य विभाग उत्तर भारत का एक बड़ा संस्थान है। बाल शल्य विभाग में पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और नेपाल के करीब 15–20 करोड़ जनसंख्या के लिए सर्वोत्कृष्ट सुविधायें उपलब्ध हैं।

1967 में शल्य विभाग के अन्तर्गत इसकी शुरूआत हुई। 28 अप्रैल 1998 को इसे अलग विभाग के रूप में मान्यता मिली। 1998 में ही यह विभाग अपने भवन में स्थानान्तरित हुआ जो पूर्ण रूप से केन्द्रीय वातानुकूलन की व्यवस्था से संचालित है। इस तीन मंजिले भवन के भूतल पर 20 बिस्तर और एक सेमिनार कक्ष है। दूसरे तल पर 10 बिस्तर का एनआईसीयू और एक नवजात शिशुओं के लिए आपरेशन कक्ष है तथा तीसरे तल पर दो आपरेशन कक्ष, 12 बिस्तर और 3 स्पेशल वार्ड हैं। इस संस्थान में पहली माड्यूलर ओ.टी. बाल शल्य विभाग में ही कार्यरत हैं जहाँ अत्याधुनिक सारी सुविधायें उपलब्ध हैं। आपरेशन थियेटर से भूतल के सेमिनार कक्ष में आडियो विजुअल कम्यूनिकेशन सिस्टम उपलब्ध है जिससे उच्च कोटि की शिक्षा उपलब्ध हो सके।

गत वर्ष के वार्षिक आडिट के हिसाब से बहिरंग रोगियों की संख्या करीब 15106 हैं जिनमें से नये रोगियों की संख्या करीब 7600 है।

शिक्षण और अनुसंधानः एम.सीएच. डिग्री जो कि एम.सी.आई. से अनुमोदित है, 1996 से ही हमारे यहाँ शुरू है। 36 डाक्टर यह डिग्री प्राप्त कर देश के विभिन्न हिस्सों में कार्यरत हैं। विभाग के अध्यापकों द्वारा करीब 250 शोधपत्र राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। अध्यापकों द्वारा विभिन्न पुस्तकों में करीब 20 अध्याय और 4 किताबें लिखी गयी हैं।

नवजात शिशुओं का आई.सी.यू.

मोड्यूलर आपरेशन थियेटर

प्रोजेक्टः विभाग ने दो प्रोजेक्ट पूरे किये एवं दो चल रहे हैं।

बच्चों की जन्मजात व कुछ अन्य बीमारियाँ

कुछ जन्मजात विकृतियाँ

1. मलद्वार का बन्द होना (ऐनोरेक्टल मालफारमेशन) यह एक बहुतायत से होने वाला रोग है। प्रायः बच्चे के जन्म की हड़बड़ी में यह पकड़ में नहीं आता। कुछ दिनों पश्चात् जब बच्चे का पेट फूल जाता है

या उल्टी करने लगता है तब यह पकड़ में आता है। आपरेशन के द्वारा यह ठीक हो जाता है। प्रायः यह आपरेशन तीन चरणों में होता है। पर हमारे विभाग में काफी साल पहले से एक ही आपरेशन से इसे ठीक करते हैं। इससे बच्चे को और उसके माता–पिता को काफी राहत रहती है। खर्च भी कम होता है।

2. जन्मजात पीठ पर फोड़ा होना (मेनिगोंमाइलोसील) यह भी एक बहुतायत से होने वाली बीमारी है। यह भी कई प्रकार की होती है। ज्यादातर मरीजों के पैरों में लकवा होता है जो कि ठीक नहीं हो सकता। जिनमें लकवा नहीं होता वो आपरेशन से पूर्णतया ठीक हो जाते हैं। इस बीमारी से बचाव के लिये गर्भावस्था के दौरान माँ को फोलिक ऐसिड की गोली देनी चाहिए।

3. सिर का बड़ा होना (हाइड्रोसिफेलस) जन्मजात विकार के कारण बच्चों के सिर के अन्दर तरल पदार्थ (सेरिब्रोस्पाइनल फ्लूइड) का आना बढ़ने लगता है जिससे सर बड़ा होने लगता है और दिमाग संबंधी समस्याएं पैदा होने लगती हैं। ऐसे में शल्य क्रिया द्वारा सर में एक नली द्वारा पानी को पेट में पहुँचाया जाता है जहाँ से वह खून में चला जाता है।

4. गले में खाने की नली का बन्द होना (इसोफेजियल एट्रिसिया और ट्रेकियोइसोफेजियल फिस्चुला एक कठिन बीमारी है। जन्म के कुछ ही घंटो बाद इसका आपरेशन किया जाता है जो कि काफी जटिल होता है। जो शिशु दूध न पी पाता हो उनमें इस बीमारी की संभावना होती है। एक्स–रे से इसकी पहचान की जाती है। शल्य क्रिया के बाद इनको काफी देखभाल की और वेंटिलेटर की जरूरत पड़ती है। इन मरीजों का आपरेशन हमारे यहाँ हो सकता है और उनके बचने की भी संभावना ज्यादा होती है।

5. पेट का पूरा न बनना (ओमफैलोसील या गेस्ट्रो–स्कीसिस)। इस बीमारी में पेट का अगला हिस्सा पूरी तरह से नहीं बनता है और आंत या लिवर पेट के बाहर ही रहते हैं। यह एक गंभीर बीमारी है और जटिल शल्य क्रिया ही इसका उपचार है।

कुछ बड़े बच्चों की बीमारियाँ

1. कैंसर– बच्चों में भी कैंसर हो सकता है जैसे विल्मस ट्यूमर, न्यूरोब्लास्टोमा और लिम्फोमा। इन के काफी मरीज हमारे यहाँ आते हैं। क्योंकि छोटे बच्चों की शल्य क्रिया और कीमोथिरेपी की सुविधा एक मात्र हमारे ही विभाग में उपलब्ध है। कैंसर रोग से पीड़ित बच्चों को भी बचाया जा सकता है बशर्ते वह प्रारम्भ में ही इसके इलाज के लिए बाल शल्य चिकित्सा विभाग में आयें।

2. आंत का उतरना (हर्निया)– एक बेहद सामान्य बीमारी है। इसे शल्य क्रिया द्वारा ठीक किया जाता है। इसे हमारे यहाँ डे केयर सर्जरी के रूप में किया जाता है। इसका आपरेशन जल्दी से कराया जाना चाहिए अन्यथा आंत फँस सकती है।

3. कौड़ी (टेस्टिस) का अपनी जगह न होना (अनडिसेंडेड टेस्टीस) – यह भी सामान्य बीमारी है। हम लोग इसका आपरेशन एक साल के अन्दर करवाने की राय देते हैं। देर होने पर कौड़ी के खराब होने का खतरा रहता है।

4. लिंग की खराबी (हाइपोसपीडीयस)– यह भी सामान्य बीमारी है। इसमें लिंग टेढ़ा होता है और इसका छिद्र दूसरी जगह खुलता है। शल्य क्रिया द्वारा इसे ठीक किया जा सकता है। स्कूल जाने के पहले इसका आपरेशन करा लेना चाहिए।

5. जीभ का बाहर न आना (टंग टाइ)– इससे बच्चे को बोलने में कठिनाई आ सकती है। यह एक बेहद मामूली आपरेशन से कभी भी बच्चे के बोलने से पहले, ठीक किया जा सकता है।

पिछले 40–45 वर्षों में बाल शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में सबसे ज्यादा परिवर्तन हुए हैं। जिससे नवजात रोगियों के आपरेशन, बेहोशी और ऑपरेशन के बाद देख–रेख की सुविधाओं के चलते मृत्युदर में बहुत कमी आ गयी है। अब जरूरत इस बात की है कि हमारे पास रोगी जल्दी पहुँचे।

विशेष उपलब्धियाँः डा. चूड़ामणी गोपाल को पद्मश्री की उपाधि से नवाजा गया है। इसके अलावा उन्हें प्रतिष्ठापरक डा. राजा रमन्ना और डा. वी.सी. राय अवार्ड से भी सम्मानित किया गया है।

बाल शल्य विभाग – परिचय और उपलब्धियाँ

विजयेन्द्र कुमार, ए.एन. गंगोपाध्याय, डी.के. गुप्ता एवं एस.पी. शर्मा

बाल शल्य विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, का बाल शल्य विभाग उत्तर भारत का एक बड़ा संस्थान है। बाल शल्य विभाग में पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और नेपाल के करीब 15–20 करोड़ जनसंख्या के लिए सर्वोत्कृष्ट सुविधायें उपलब्ध हैं।

1967 में शल्य विभाग के अन्तर्गत इसकी शुरूआत हुई। 28 अप्रैल 1998 को इसे अलग विभाग के रूप में मान्यता मिली। 1998 में ही यह विभाग अपने भवन में स्थानान्तरित हुआ जो पूर्ण रूप से केन्द्रीय वातानुकूलन की व्यवस्था से संचालित है। इस तीन मंजिले भवन के भूतल पर 20 बिस्तर और एक सेमिनार कक्ष है। दूसरे तल पर 10 बिस्तर का एनआईसीयू और एक नवजात शिशुओं के लिए आपरेशन कक्ष है तथा तीसरे तल पर दो आपरेशन कक्ष, 12 बिस्तर और 3 स्पेशल वार्ड हैं। इस संस्थान में पहली माड्यूलर ओ.टी. बाल शल्य विभाग में ही कार्यरत हैं जहाँ अत्याधुनिक सारी सुविधायें उपलब्ध हैं। आपरेशन थियेटर से भूतल के सेमिनार कक्ष में आडियो विजुअल कम्यूनिकेशन सिस्टम उपलब्ध है जिससे उच्च कोटि की शिक्षा उपलब्ध हो सके।

गत वर्ष के वार्षिक आडिट के हिसाब से बहिरंग रोगियों की संख्या करीब 15106 हैं जिनमें से नये रोगियों की संख्या करीब 7600 है।

शिक्षण और अनुसंधानः एम.सीएच. डिग्री जो कि एम.सी.आई. से अनुमोदित है, 1996 से ही हमारे यहाँ शुरू है। 36 डाक्टर यह डिग्री प्राप्त कर देश के विभिन्न हिस्सों में कार्यरत हैं। विभाग के अध्यापकों द्वारा करीब 250 शोधपत्र राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। अध्यापकों द्वारा विभिन्न पुस्तकों में करीब 20 अध्याय और 4 किताबें लिखी गयी हैं।

नवजात शिशुओं का आई.सी.यू.

मोड्यूलर आपरेशन थियेटर

प्रोजेक्टः विभाग ने दो प्रोजेक्ट पूरे किये एवं दो चल रहे हैं।

बच्चों की जन्मजात व कुछ अन्य बीमारियाँ

कुछ जन्मजात विकृतियाँ

1. मलद्वार का बन्द होना (ऐनोरेक्टल मालफारमेशन) यह एक बहुतायत से होने वाला रोग है। प्रायः बच्चे के जन्म की हड़बड़ी में यह पकड़ में नहीं आता। कुछ दिनों पश्चात् जब बच्चे का पेट फूल जाता है

या उल्टी करने लगता है तब यह पकड़ में आता है। आपरेशन के द्वारा यह ठीक हो जाता है। प्रायः यह आपरेशन तीन चरणों में होता है। पर हमारे विभाग में काफी साल पहले से एक ही आपरेशन से इसे ठीक करते हैं। इससे बच्चे को और उसके माता–पिता को काफी राहत रहती है। खर्च भी कम होता है।

2. जन्मजात पीठ पर फोड़ा होना (मेनिगोंमाइलोसील) यह भी एक बहुतायत से होने वाली बीमारी है। यह भी कई प्रकार की होती है। ज्यादातर मरीजों के पैरों में लकवा होता है जो कि ठीक नहीं हो सकता। जिनमें लकवा नहीं होता वो आपरेशन से पूर्णतया ठीक हो जाते हैं। इस बीमारी से बचाव के लिये गर्भावस्था के दौरान माँ को फोलिक ऐसिड की गोली देनी चाहिए।

3. सिर का बड़ा होना (हाइड्रोसिफेलस) जन्मजात विकार के कारण बच्चों के सिर के अन्दर तरल पदार्थ (सेरिब्रोस्पाइनल फ्लूइड) का आना बढ़ने लगता है जिससे सर बड़ा होने लगता है और दिमाग संबंधी समस्याएं पैदा होने लगती हैं। ऐसे में शल्य क्रिया द्वारा सर में एक नली द्वारा पानी को पेट में पहुँचाया जाता है जहाँ से वह खून में चला जाता है।

4. गले में खाने की नली का बन्द होना (इसोफेजियल एट्रिसिया और ट्रेकियोइसोफेजियल फिस्चुला एक कठिन बीमारी है। जन्म के कुछ ही घंटो बाद इसका आपरेशन किया जाता है जो कि काफी जटिल होता है। जो शिशु दूध न पी पाता हो उनमें इस बीमारी की संभावना होती है। एक्स–रे से इसकी पहचान की जाती है। शल्य क्रिया के बाद इनको काफी देखभाल की और वेंटिलेटर की जरूरत पड़ती है। इन मरीजों का आपरेशन हमारे यहाँ हो सकता है और उनके बचने की भी संभावना ज्यादा होती है।

5. पेट का पूरा न बनना (ओमफैलोसील या गेस्ट्रो–स्कीसिस)। इस बीमारी में पेट का अगला हिस्सा पूरी तरह से नहीं बनता है और आंत या लिवर पेट के बाहर ही रहते हैं। यह एक गंभीर बीमारी है और जटिल शल्य क्रिया ही इसका उपचार है।

कुछ बड़े बच्चों की बीमारियाँ

1. कैंसर– बच्चों में भी कैंसर हो सकता है जैसे विल्मस ट्यूमर, न्यूरोब्लास्टोमा और लिम्फोमा। इन के काफी मरीज हमारे यहाँ आते हैं। क्योंकि छोटे बच्चों की शल्य क्रिया और कीमोथिरेपी की सुविधा एक मात्र हमारे ही विभाग में उपलब्ध है। कैंसर रोग से पीड़ित बच्चों को भी बचाया जा सकता है बशर्ते वह प्रारम्भ में ही इसके इलाज के लिए बाल शल्य चिकित्सा विभाग में आयें।

2. आंत का उतरना (हर्निया)– एक बेहद सामान्य बीमारी है। इसे शल्य क्रिया द्वारा ठीक किया जाता है। इसे हमारे यहाँ डे केयर सर्जरी के रूप में किया जाता है। इसका आपरेशन जल्दी से कराया जाना चाहिए अन्यथा आंत फँस सकती है।

3. कौड़ी (टेस्टिस) का अपनी जगह न होना (अनडिसेंडेड टेस्टीस) – यह भी सामान्य बीमारी है। हम लोग इसका आपरेशन एक साल के अन्दर करवाने की राय देते हैं। देर होने पर कौड़ी के खराब होने का खतरा रहता है।

4. लिंग की खराबी (हाइपोसपीडीयस)– यह भी सामान्य बीमारी है। इसमें लिंग टेढ़ा होता है और इसका छिद्र दूसरी जगह खुलता है। शल्य क्रिया द्वारा इसे ठीक किया जा सकता है। स्कूल जाने के पहले इसका आपरेशन करा लेना चाहिए।

5. जीभ का बाहर न आना (टंग टाइ)– इससे बच्चे को बोलने में कठिनाई आ सकती है। यह एक बेहद मामूली आपरेशन से कभी भी बच्चे के बोलने से पहले, ठीक किया जा सकता है।

पिछले 40–45 वर्षों में बाल शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में सबसे ज्यादा परिवर्तन हुए हैं। जिससे नवजात रोगियों के आपरेशन, बेहोशी और ऑपरेशन के बाद देख–रेख की सुविधाओं के चलते मृत्युदर में बहुत कमी आ गयी है। अब जरूरत इस बात की है कि हमारे पास रोगी जल्दी पहुँचे।

विशेष उपलब्धियाँः डा. चूड़ामणी गोपाल को पद्मश्री की उपाधि से नवाजा गया है। इसके अलावा उन्हें प्रतिष्ठापरक डा. राजा रमन्ना और डा. वी.सी. राय अवार्ड से भी सम्मानित किया गया है।

कार्डियोवैस्कुलर एवं थोरैसिक सर्जरी (हृदय, वक्ष एवं फेफड़ा शल्य) विभाग

प्रो. दमयन्ती अग्रवाल

कार्डियोवैस्कुलर एवं थोरैसिक सर्जरी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

यह विभाग सन् 1973 में डॉ. टी. के. लहरी के आने पर अस्तित्व में आया। यह विभाग हृदय व फेफड़े की बीमारियों व उनके शल्य चिकित्सा से सम्बन्धित है। यहाँ फेफड़े, हृदय, खाने की नली, पसलियों, डायफ्राम आदि से सम्बंधित हर तरह की बीमारियों की शल्य चिकित्सा की जाती है।

यह विभाग उत्कृष्ट संसाधनों से लैस है। इस विभाग में अतिआधुनिक आपरेशन थियेटर है जहाँ पर आधुनिक आपरेशन टेबल, ओ.टी. लाइट, मॉनिटर, एनेस्थिसिया मशीन, वेंटिलेटर, इको कार्डियोग्राफी मशीन, सेल सेवर, ए.बी.जी. मशीन, ए.सी.टी. मशीन, हार्ट लंग मशीन एवं बारीक तथा जटिल शल्य क्रिया में उपयोग हेतु उच्च गुणवत्ता के औजार उपलब्ध हैं।

इस विभाग एवं निसंज्ञा विभाग के दक्ष चिकित्सकों एवं नर्सिंग स्टाफ की बदौलत शल्य क्रिया काफी सुरक्षित हो गई है।

इस विभाग में अति आधुनिक, वातानुकूलित गहन चिकित्सा कक्ष है, जिसमें आपरेशन के बाद मरीजों को रखा जाता है। यहाँ हर बेड पर आक्सीजन, मानिटर, वेंटिलेटर, कई सिरिंज पम्प, सक्शन मशीन, पोर्टेबल एक्स–रे मशीन इत्यादि उपलब्ध है। यहाँ पर 24 घण्टे दक्ष चिकित्सक एवं नर्सिंग स्टाफ मरीज की देखभाल करते हैं।

गठिया हृदय रोग, जन्मजात हृदय रोग की शल्य क्रिया हमारे विभाग में नियमित तौर पर होती है।

फेफड़े तथा खाना नली की बीमारियों जैसे कैंसर, टी.बी. तथा अन्य बीमारियों के लिए ब्रोंकोस्कोपी तथा इसोफेगोस्कोपी नियमित तौर पर की जाती है।

दुर्घटना के दौरान छाती में चोट के कारण पसलियों का टूटना, फेफड़े के फटने वगैरह का इलाज नियमित तौर पर होता है। सीने में गोली लगना, छड़ धंसना या तीर लगने का इलाज भी होता है।

ओपेन हार्ट सर्जरी द्वारा वाल्व प्रत्यारोपण, दिल का छेद बन्द करना तथा नीले बच्चों का आपरेशन सफलतापूर्वक किया जाता है। पहले इन आपरेशनों के लिए मरीज को दिल्ली, मुम्बई जैसे बड़े शहरों में जाना होता था जो कि काफी खर्चीला एवं असुविधाजनक था। परन्तु अब हमारे विभाग में आधुनिक सुविधाओं के उपलब्ध होने से यहाँ पर आपरेशन कम खर्चीला है और आस–पास के क्षेत्रों के मरीजों के लिए सुविधाजनक भी है।

भोजन या सांस की नली में कोई चीज अटकी हो जैसे – नकली दांत, सिक्के, सीटियां, बटन, बैटरी इत्यादि को दूरबीन विधि या शल्य क्रिया की सहायता से निकाला जाता है।

तेजाब पीने या सल्फास खाने से जब भोजन नली जल जाती है तो उसके उपचार के लिए 'रेगुलर डायलेटेशन' की सुविधा उपलब्ध है।

अफसोस यह है कि हमारे ग्रामीण बन्धु जानकारी के अभाव में बीमारी को काफी बढ़ा कर यहाँ तक पहुंचते हैं। सच तो यह है, ये बीमारियां होनी ही नहीं चाहिए।

शल्य चिकित्सा के अलावा उचित खान–पान व नियमित साफ–सफाई अपनाकर भी इन सब बीमारियों की रोकथाम हो सकती है।

नाक, कान, गला विभाग

प्रो. राजीव कुमार जैन

नाक, कान, गला विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

नाक, कान, गला विभाग की स्थापना सन् 1962 में हुई थी। पूर्व में यह विभाग चिकित्सालय के पुराने भवन में स्थित था जिसे बाद में वर्तमान स्थान, भुवालका चिकित्सालय के प्रथम तल पर स्थानान्तरित किया गया। सभी सुविधाओं जैसे बहिरंग {ओ.पी.डी.}, शल्यकक्ष {ओ.टी.}, भर्ती कक्ष {वार्ड}, पैथोलॉजी लैब, श्रवण जांच केन्द्र {ऑडियोमेट्री}, टेम्पोरल बोन लैब, परामर्श चिकित्सक कक्ष तथा विभागीय कार्यालय को एक ही भवन के एक तल पर सुव्यवस्थित किया गया है जिससे प्रत्येक व्यक्ति के लिए चिकित्सा सुलभ हो।

अब इस विभाग में 2 प्रोफेसर, 2 रीडर, 2 लेक्चरर, 1 ऑडियोलॉजिस्ट, 1 स्पीच थिरेपिस्ट तथा अन्य सहयोगी कर्मचारी सेवारत हैं।

विभागीय सुविधायें

बहिरंग {ओ.पी.डी.}: विभाग में बहिरंग सेवायें प्रतिदिन संचालित होती हैं जिसमें प्रतिदिन 250 से अधिक मरीज देखे जाते हैं। विभाग की उच्चस्तरीय चिकित्सा सुविधाओं का लाभ उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखंड और नेपाल के लाखों मरीजों को मिल रहा है।

अंतरंग: विभाग में एक पुरूष तथा एक महिला वार्ड है जिसमें प्रत्येक में 15 बेड हैं। कुल 30 बेड पर मरीजों के भर्ती का दर अधिकतम रहता है।

ऑडियोलॉजी लैबोरेटरी: विभाग में पूरी तरह सुसज्जित ऑडियोलॉजी लैबोरेटरी है जिसमें प्योर टोन ऑडियोमेट्री, पीडियाट्रिक ऑडियोमेट्री, स्पीच ऑडियोमेट्री, इम्पीडेंस ऑडियोमेट्री और ब्रेनस्टेम इवोक्ड रिस्पांस ऑडियोमेट्री की सुविधायें हैं।

शल्यकक्ष: विभाग में सप्ताह में छः दिन आपरेशन किया जाता है। यहाँ पर सामान्य आपरेशन के साथ–साथ सभी प्रकार के अत्याधुनिक आपरेशन जैसे दूरबीन द्वारा कान का आपरेशन, दूरबीन द्वारा गले का आपरेशन तथा इन्डोस्कोपी द्वारा नाक का आपरेशन किया जाता है।

संग्रहालय: भारत के सर्वश्रेष्ठ ई.एन.टी. संग्रहालयों में से एक संग्रहालय इस विभाग में स्थित है जिसमें 500 से अधिक माउन्टेड स्पेसिमेन संग्रहीत हैं, जिन्हें इस विभाग में भर्ती मरीजों के ऑपरेशन के बाद संग्रहीत किया गया है।

प्रमुख मशीनें

1. जाइस आरपेटिंग माइक्रोस्कोप
2. स्टोर्ज नेजल इन्डोस्कोप
3. ब्रेनस्टेम इवोक्ड रिस्पांस आडियोमीटर
4. इम्पिडेंस ऑडियोमीटर
5. फाइबर ऑप्टिक राइनोलैरिगोफैरिंगोस्कोप

समाजसेवा में भूमिका

प्रतिवर्ष 70 हजार से अधिक मरीजों का इलाज बहिरंग तथा अंतरंग विभाग में किया जाता है जिसमें अधिकतर मरीज उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश तथा नेपाल से आते हैं। यहाँ से अत्याधुनिक सुविधाएं जैसे– माइक्रोसर्जरी ऑफ इअर, फंक्सनल इन्डोस्कोपिक साइनस सर्जरी तथा माइक्रोलैरिजियल सर्जरी का लाभ भी मरीजों को मिल रहा है।

विभाग नियमित रूप से जन जागरूकता अभियान तथा रोगी शिक्षा अभियान जैसे नेशनल डिफनेस प्रिवेंशन तथा नेशनल कैंसर प्रिवेंशन में भाग लेता रहा है। इसके अतिरिक्त मेडिकल अफसरों को बहरापन के इलाज में प्रशिक्षण देने के लिए ई.एन.टी. विभाग समय–समय पर आर.सी.आई. के सी.एम.ई. प्रोग्राम में भाग लेता रहा है। जनजागरूकता के लिए रेडियो पर भी कई वार्ताओं को प्रसारित किया जा चुका है।

रेडियोथेरैपी एवं रेडिएशन मेडिसीन विभाग

प्रो. यू.पी. शाही

रेडियोथेरैपी एवं रेडिएशन मेडिसीन विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

कैंसर के इलाज में अग्रणी सम्पूर्ण भारत के चन्द कैंसर सुविधा सम्पन्न विभाग के रूप में रेडियोथेरैपी विभाग 46 वर्ष पहले काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रारम्भ हुआ। यह विभाग पूर्वांचल की एक बड़ी जनसंख्या को अपनी सेवा प्रदान करता रहा है। 10–15 करोड़ आबादी के क्षेत्र से कैंसर के मरीज यहाँ इलाज एवं परामर्श हेतु आते हैं। अब तक लगभग 70 हजार से अधिक कैंसर के रोगी इस विभाग से निदान, उपचार एवं सम्बंधित सेवा का लाभ ले चुके हैं। आम लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए कैंसर कैम्प, स्कूलों में व्याख्यान, गैर विशेषज्ञ चिकित्सकों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए और इनके प्रचार–प्रसार के लिए अखबार, दूरदर्शन, आकाशवाणी इत्यादि माध्यमों का उपयोग किया गया है। यहाँ भावी कैंसर विशेषज्ञों का शिक्षण एवं प्रशिक्षण किया जाता है। कैंसर के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण शोध कार्य किये जाते हैं।

सुविधाएँ

इस विभाग में कैंसर के उपचार की सामान्यतः सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं। मशीनों में कोबाल्ट टेलीथेरैपी मशीनें, ब्रैकीथेरैपी उपकरण इत्यादि मरीजों को बाह्य उपचार प्रदान करती है।

कैंसर उपचार की दूसरी विधा कीमोथेरैपी का प्रयोग प्रायः सभी कैंसर के उपचार में यहाँ होता है।

मरीजों को वार्ड में आवश्यकतानुसार भरती करके भी उपचार दिया जाता है। नये मरीजों का चिकित्सक ओ.पी.डी. में परीक्षण करते हैं, तथा आवश्यकतानुसार अन्य विशेषज्ञ जैसे शल्य चिकित्सक, कैंसर शल्य चिकित्सक एवं अन्य लोगों में संयुक्तरूप से विचार–विमर्श करके उपचार करते हैं।

विभाग में आधुनिक टेलीथेरैपी मशीन, लिनियर एक्सलरेटर शीघ्र ही कार्य आरम्भ करने के लिए तैयार हैं, और इससे कैंसर के रोगियों को और बेहतर ईलाज उपलब्ध होंगे। निकट भविष्य में कैंसर निदान व उपचार सहित शोध एवं अन्य सम्बन्धित सुविधाएं प्रदान करने के लिए केन्द्र सरकार कटिबद्ध प्रतीत होती है।

दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय की कार्यविधियाँ, विशेषताएँ एवं उपलब्ध सुविधायें

प्रो. टी.पी. चतुर्वेदी

दन्त विज्ञान संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भारतीय दन्त परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय वर्तमान में परास्नातक डिग्री तथा विभिन्न डिप्लोमा प्रदान कर रही है। दन्त एवं मसूढ़ो सम्बन्धित सभी प्रकार के रोगियों का विधिवत् एवं वैज्ञानिक ढंग से उपचार किया जाता है। इतना ही नहीं संकाय में विभिन्न बिन्दुओं पर आधुनिकतम विधियों द्वारा अनुसंधान कार्य भी संचालित हैं जिसमें आयुर्वेदिक ढंग से तैयार की गयी दवाइयों का अनुसंधान, परीक्षण एवं उपचार व उनके प्रभाव आदि भी सम्मिलित हैं। वाराणसी एवं आसपास के जिलों के गाँवो मे इस दन्त संकाय के चिकित्सक एवं छात्र प्रायः कैम्प लगाकर लोगों का निःशुल्क उपचार करते हैं।

चित्र 1: दन्त विज्ञान संकाय का एक भाग।

दाँतों के विभिन्न रोगों एवं उनके उपचार प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए इनके विभिन्न विशिष्ट विभागों का निरूपण एवं उल्लेख निम्नवत है :

1. प्रोस्थोडोन्टिक्स और क्राउन एवं ब्रिज
2. पेरियोडोन्टोलाजी
3. ओरल एवं मैक्सिलोफेसियल सर्जरी
4. कन्जरवेटिव डेन्टिस्ट्री एवं एण्डोडोन्टिक्स
5. आर्थोडोन्टिक एवं डेन्टोफेसियल आर्थोपेडिक्स
6. ओरल पैथोलाजी एवं माइक्रोबायोलाजी
7. पब्लिक हेल्थ डेन्टिस्ट्री
8. पेडियाट्रिक एवं प्रिवेन्टिव डेन्टिस्ट्री
9. ओरल मेडिसिन एवं रेडियोलाजी

प्रोस्थोडोन्टिक्स और क्राउन एवं ब्रिज

दन्त चिकित्सा विज्ञान में प्रोस्थोडोन्टिक्स और क्राउन एवं ब्रिज तथा इम्प्लांटोलोजी के कार्य की इस शाखा में दन्त कला एवं विज्ञान के उन पहलुओं का अध्ययन एवं कार्य होता है जो प्रत्यर्पण तथा समुचित रखरखाव से सम्बन्धित है जिसमें मौखिक क्रियाशीलन, स्वास्थ्य, आराम एवं दर्शिता आदि के प्रतिस्थापन का लक्ष्य होता है अथवा प्राकृतिक दाँतों के अभाव को या तो स्थिर या निकालने व लगाने वाले कृत्रिम दाँतों का प्रतिरूप बनाया जाता है।

पेरियोडोन्टोलाजी

पेरियोडोन्टोलाजी एवं मौखिक प्रत्यारोपण विज्ञान में मसूढ़ों का स्वस्थ होना एवं उनकी बीमारियों के प्रति विनियोजन एवं ढाँचागत सहारा आदि का अध्ययन व उपचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त मसूढ़ों की बीमारियाँ जैसे पायरिया रोग का उपचार आदि होता है।

ओरल एवं मैक्सिलोफेसियल सर्जरी

दन्त चिकित्सा विज्ञान की इस शाखा में मौखिक एवं जबड़े की शल्य क्रिया का उपचार व अध्ययन किया जाता है तथा इस शाखा में इम्प्लान्ट के प्रति जानकारी, बीमारी, उनके लक्षण एवं उनका उपचार सुनियोजित किया जाता है। इसके अतिरिक्त मानव जबड़ों एवं इससे सम्बन्धित मौखिक एवं चेहरे पर हुई बीमारियों का उपचार, शोध व अध्ययन निहित है।

कन्जरवेटिव डेन्टिस्ट्री एवं एण्डोडोन्टिक्स

दन्त चिकित्सा विज्ञान की इस शाखा में दाँतों का संरक्षण एवं बचाव का उपचार एवं अध्ययन व शोध का कार्य होता है तथा दाँत के अन्दर पाये जाने वाले सख्त ऊतक एवं मज्जा तथा इससे सम्बन्धित दाँतो की जड़ में पायी जाने वाली बीमारी का दाँत के अन्दर से छिद्र करके उपचार किया जाता है।

आर्थोडोन्टिक एवं डेन्टोफेसियल आर्थोपेडिक्स

दन्त चिकित्सा विज्ञान की इस शाखा में बच्चों एवं वयस्कों के टेढ़े–मेढ़े दाँतों को सीधा करके उनको एक पक्ति में लाना एवं मुख की सुन्दरता बढ़ाना तथा लोगों को बोलने की सुविधा प्रदान करने का अध्ययन, शोध एवं उपचार होता है। मुख के अन्दर पायी जाने वाली दाँतों की विसंगति एवं टेढ़े–मेढ़े जबड़े को ठीक किया जाता है ताकि रोगी के दाँत एवं जबड़ो की बनावट सुसंगत एवं सुदृढ़ हो सके तथा दाँतों की बनावट एवं कार्य, चबाना आदि संयमित हो सके।

ओरल पैथोलाजी एवं माइक्रोबायोलाजी

इस शाखा में दाँतों के चारों ओर तथा मुँह के अन्दर पायी जाने वाली विभिन्न बीमारियों तथा उनकी सूक्ष्माति–सूक्ष्म जैविक लक्षणों का अध्ययन व शोध का कार्य होता है जिसके आधार पर दाँतों, मुंह एवं जबड़ों की विभिन्न बीमारियों का पता चलने के बाद उनका समुचित उपचार सुनिश्चित हो पाता है। जबड़े, मुँह व दाँतों की भौतिक एवं संरचनात्मक परिवर्तनों से संबंन्धित बीमारियों का पता चलता है।

पब्लिक हेल्थ डेन्टिस्ट्री

जन दन्त स्वास्थ्य वह विज्ञान व कला है जिसके माध्यम से दाँतों का बचाव, रोकथाम एवं इनकी बीमारियों के प्रति जानकारी को जनता तक विभिन्न दन्त स्वास्थ्य कैम्प, प्रचार–प्रसार एवं आधुनिक तकनीकों द्वारा अवगत कराने का प्रयास किया जाता है एवं समय–समय पर कैम्प आदि के माध्यम से उनका उपचार आदि भी किया जाता है।

पेडियाट्रिक एवं प्रिवेन्टिव डेन्टिस्ट्री

इस शाखा में बच्चों के दाँतों को स्वस्थ रखने, उनका उपचार, बचाव आदि का अध्ययन किया जाता है, एवं बच्चों व उनके संरक्षकों को समझाया जाता है कि बच्चों के दाँतों को स्वस्थ रखने के लिए किन–किन उपायों को अपनाना चाहिए।

ओरल मेडिसिन एवं रेडियोलाजी

यह शाखा दन्त चिकित्सा विज्ञान की उस विशिष्ट शाखा से संबंध रखती है जिसके माध्यम से आधारभूत परीक्षण, लक्षणों, तरीकों एवं उपयुक्त विधियों के माध्यम से बीमारियों एवं मौखिक ऊतकों की जानकारी प्राप्त होती है एवं उसके निवारणार्थ किन–किन दवाइयों की व्यवस्था सुनिश्चित की जाती है आदि का अध्ययन व शोध किया जाता है। उक्त जानकारी को और अधिक सुविधापूर्वक जानने के लिए एक्स–रे विधि का उपयोग किया जाता है ताकि दाँतों की बीमारियों को सुचारू रूप से सुनिश्चित किया जा सके।

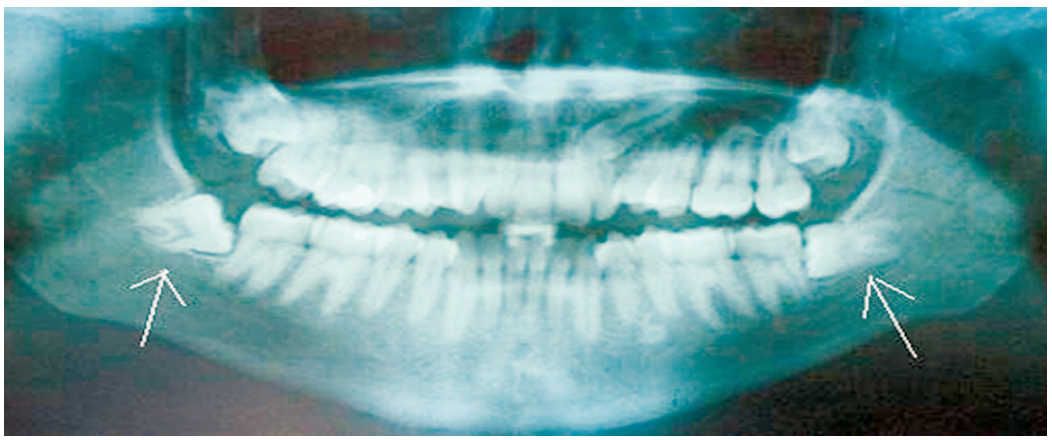

चित्र 2: दन्त संबन्धित एक्स–रे।

मधुमेहः पूर्ववर्ती इतिहास एवं वर्तमान शोध की संभावनाएँ

प्रो. के.के. त्रिपाठी

मेडिसीन विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

मधुमेह आयुर्वेद में प्रमेह रोग के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ है– मूत्र मार्ग से मीठे तत्व की वृष्टि {मधु–मीठा+मेह–वृष्टि} प्रमेह के बीस प्रकार के मधुमेह वर्णित है– इक्षुमेह, इक्षुवालिकामेह, सान्द्रमेह, सान्द्रप्रसादमेह, नीलमेह, कालमेह, शुक्लमेह, शीतमेह, सिकतामेह, ओजोमेह, आलालमेह, अम्लमेह, शनैमेह, मधुमेह, हस्तिमेह, लोहितमेह, सारमेह, मंजिष्टमेह, वसामेह, पिष्ठमेह।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में ग्रीक चिकित्सक ऐरेटियस ने सर्वप्रथम ईसा के बाद दूसरी शताब्दी के प्रारम्भ में 'डायबिटीज' शब्द का चयन किया। जिसका ग्रीक भाषा में अर्थ है–'प्रवाहित होना'। ग्रीक चिकित्सकों ने इसकी कल्पना वृक्क {गुर्दे} के रोग के आधार पर किया, जिसमें शरीर के भोज्य और पाचक पदार्थ का गुर्दे द्वारा क्षय हो जाने के कारण शरीर दुर्बल हो जाता है तथा अधिक प्यास और भूख लगने के साथ–साथ अधिक मात्रा में बार–बार मूत्र त्याग करना पड़ता है। विलिस ने सत्रहवीं शताब्दी {1621–1675} में इस रोग का कारण अत्यधिक विलासिता और शारीरिकश्रम की कमी बताया। लेकिन 18वीं शताब्दी में ही इस तथ्य की पुष्टि हो पाई कि मधुमेह में मूत्र में चीनी की अधिकता होती है जबकि मूत्र बहुलता के अन्य रोगों में ऐसा नहीं होता है। पौरूष ग्रंथि के बढ़ने एवं मूत्रवाहनियों द्वारा जल के अवशोषण में कमी होने पर भी मूत्र की बहुलता हो जाती है, लेकिन उसे मधुमेह की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

1776 में डॉब्सन नामक वैज्ञानिक ने अपने शोध से इस बात की पुष्टि की कि मधुमेह गुर्दे का न होकर पूरे शरीर का रोग है। डॉब्सन ने पहली बार प्रयोगशाला में यह सिद्ध किया कि मधुमेह के रोगी के रक्त और मूत्र में चीनी की अत्यधिक मात्रा होती है। 19वीं शताब्दी में फिजियोलॉजी के शीर्ष विद्वान बर्नार्ड ने यह प्रमाणित कर दिया कि लीवर भोजन के अन्दर उपस्थित कार्बोहाईड्रेट को ग्लाइकोजन के रूप में संग्रहीत करके रखता है और आवश्यकता पड़ने पर ग्लूकोज का ग्लूकोनियो– जेनेसिस के माध्यम से पुनर्निमाण कर सकता है या ग्लाइकोजन को पुनःग्लूकोज के रूप में परिवर्तित कर सकता है। 1890 में बॉनमेरिंग और मिनकोवॉस्क ने कुत्ते के शरीर से पैंक्रियास {अग्नाशय} को अलग करके यह प्रमाणित किया कि पैंक्रियास की अनुपस्थिति में रक्त और मूत्र में चीनी की मात्रा अधिक बढ़ जाती है, और 1893 ई. में पॉल लैंगर हैंन्स ने पैंक्रियास में आइलैट्स की खोज की, जिसमें उपस्थित विशिष्ट बीटा कोशिकाएं इन्सुलीन का निर्माण करती हैं और 1922 में टोरंटों में इससे इन्सुलिन अलग करके पहली बार परीक्षण करके मधुमेह के रोगी का सफल इलाज किया।

मधुमेह चिकित्सा प्रारम्भ काल से ही आहार–विहार पर नियंत्रण रखकर की जाती रही और इसके पीछे यह तथ्य निहित था कि यदि शरीर में कम से कम उर्जा का उपयोग किया जाय और गैर इन्सुलीन वाले मार्ग से ऊतकों और कोशिकाओं द्वारा शर्करा {ग्लूकोज} का उपयोग हो तब थोड़े ही उर्जा और भोज्य पदार्थों से आवश्यकता की पूर्ति हो जायेगी तथा कम से कम इन्सुलीन में कार्य हो जायेगा। दूसरी धारणा थी कि केवल मस्तिष्क से चिंतन का कार्य किया जाय शारीरिक श्रम नगण्य हो और साधना या योग की क्रिया द्वारा अल्प भोज्य पदार्थ से काम चलाया जाय। आयुर्वेद में काष्ठ औषधियों के माध्यम से एक और विचार का प्रतिपादन हुआ कि भोजन को मौलिक रूप में अधिक तंतु वाले पदार्थों के साथ उपयोग में लाया जाय, जिससे आंतों में ग्लूकोज का अवशोषण धीमी गति से हो और आंतों में अधिक समय तक रहने के कारण ग्लूकागोन तथा ग्लूकोगान जैसे प्रोटीन {जी.एल.पी.} की अधिकता से कम से कम इन्सुलीन में कार्य सम्पन्न हो जाय।

इस क्रिया में अधिक तंतु वाले {हाई फाइवर} तथा कटु, तिक्त, काषाय रस वाले भोजन अधिक ग्लूकागोन नामक हारमोन को निष्क्रिय कर देते हैं। आयुर्वेद में कैथ, हरिद्रा, जम्बू, नीम, करैला तथा विजयसर नामक औषधियों का प्रयोग इसी सिद्धान्त पर सैकड़ों वर्षों से होता रहा, परन्तु टाइप 1 प्रकार के रोगी में जिसमें बीटा सेल, पूर्ण रूप से नष्ट हो चुका होता है इन उपायों से कोई लाभ नहीं होता है। आयुर्वेद में इसे असाध्य माना गया है, और इसका कारण मूल बीजदोष होता है।

1935 के आसपास निष्क्रिय हुए सल्फर के अंश से यह आकस्मिक तौर पर पाया गया कि बिना ग्लूकोज के उपस्थित हुए बीटा कोशिकाओं से इन्सुलीन निकल सकता है तथा शरीर में चीनी की अत्यधिक कमी हो सकती है। इसी सिद्धान्त के आधार पर सल्फोनिल यूरिया नाम की औषधि का प्रयोग अब तक के सर्वाधिक कारगर और सस्ते इलाज का जनक बना। औषधियों की क्षमता और दोष पर आधारित अब तक इनकी कई पीढ़ियों का आविष्कार हो चुका है, और आज भी विकासशील और विकासोन्मुख दोनों देशों में इस औषधि की प्रासंगिकता है। भारत जैसे देश में इसी श्रेणी की एक और काष्ठ औषधि के प्रयोग ने पाश्चात्य देशों को बाइगुअनाइड नामक औषधि के प्रयोग के लिए उत्प्रेरित किया, जिसे पश्चिम के देश कई वर्षों से छोड़ चुके थे। इस औषधि के मेटफारमिन नामक पदार्थ ने न केवल निदान और चिकित्सा में इसे पुर्नस्थापित किया, बल्कि इसका उपयोग टाइप–2 प्रकार वाले मधुमेह से बचाव के लिए किया और अब इसका प्रयोग मधुमेह से होने वाले हृदय के रोग से बचाव के लिए भी करते हैं। पिछले दो–तीन दशकों में चर्बी और चर्बी को संग्रहीत करने वाली कोशिकाओं का योगदान भी इस दिशा में बड़ा महत्वपूर्ण रहा। थॉयो–जॉलीन डीन–डाइ–ओन्स नामक रासायनिक पदार्थों का प्रयोग प्रारम्भ में वसा को इनके कोशिकाओं में नियंत्रित करने के निमित्त होता रहा, जो कि इन्सुलीन की कम से कम मात्रा में ही संवेदनशीलता बढ़ा दें और शरीर में ग्लूकोज की मात्रा नियंत्रित कर सकें। इस कोटि की कई नई औषधियों का आविष्कार हुआ परंतु लीवर {यकृत} और हृदय रोग पर कुप्रभाव के कारण वर्तमान में अब इसकी केवल एक ही प्रजाति प्रयोग की जा रही है जिसे पाइयोग्लिटाजोन कहते हैं। यद्यपि अभी भी गंभीर रूप से हृदय के रोगियों में यह औषधि वर्जित है तथापि पाइयोग्लिटाजोन नामक औषधि अपेक्षाकृत सस्ती है और इसका उपयोग इन्सुलीन बनाने वाले बीटा कोशिकाओं के बचाव एवं संरक्षण के लिए उपयोगी पाया जाता रहा है और भविष्य में इसके अन्य प्रारूपों के उपर प्रयोग जारी है।

प्राकृतिक रूप से शरीर में न पाये जाने वाले हारमोन का पुर्नस्थापन करना चिकित्सा शास्त्र में सबसे वैज्ञानिक और तार्किक पक्ष हैं और इस क्षेत्र में इन्सुलीन का उपयोग सबसे पुराना, तर्कसंगत और शाश्वत है। 1921 से इंसुलीन का प्रयोग अब तक मधुमेह के लिए सबसे सशक्त उपाय है और यह शर्करा की किसी भी मात्रा को कम करके नियंत्रित करने में सक्षम है। अतः इन्सुलीन के क्षेत्र में निरंतर शोध होते रहे हैं। इन्सुलीन प्रोटीन होने के कारण शरीर में कुछ दोष उत्पन्न कर सकता था, अतः अब जेनेटिक विधि द्वारा इसे मनुष्य के इन्सुलीन के समतुल्य बना लिया गया है जिससे इसके प्रयोग में एण्टीबाडी ना बने और कम से कम मात्रा का प्रयोग किया जा सके। पहले के इन्सुलीन को सूअर या गौवंश के पैंक्रियास से शोधन द्वारा प्राप्त किया जाता था जिससे उसमें कुछ प्रोटीन के अवांछनीय तत्व आ जाते थे। आधुनिक विधि से इन्सुलीन में जेनेटिक इंजिनियरिंग के द्वारा उपयुक्त अमीनो एसिड की श्रृंखला बना ली जाती है जिससे कि उसके साथ आने वाले दूषित पदार्थ न आ पाये। इन्सुलीन को अत्यधिक प्राकृतिक बनाने के लिए अब उसके समतुल्य {एनालॉग} भी हैं जो कि सुविधानुसार भोजन के प्रारम्भ में तत्काल लगाए जा सकते हैं और इनसे कोई दोष नहीं होता।

हारमोन की इसी श्रेणी में इन्सुलीन जैसे पदार्थ एक्सनेटाइड का भी प्रयोग अब प्रारम्भ हो गया है जिसका उपयोग इन्सुलीन की तरह सूई के माध्यम से होता है, लेकिन इसमें इन्सुलीन के दोष बिल्कुल ही नहीं होते, जैसे ग्लूकोज का एक बार कम हो जाना जिसे हाइपोग्लाइसीमिया कहते हैं और जिससे कई बार मस्तिष्क पर आघात हो जाता है और व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है। एक्सेनेटाइड से चीनी कभी भी पूर्णतया कम नहीं होती। इसी दिशा में एमिलिन नाम की भी औषधियों में इसी श्रेणी में ग्लिपटिन नाम की औषधियों का वर्ग है जो कि केवल शरीर में भोजन के उपलब्धता पर ही कार्य करती हैं और शरीर में चर्बी की मात्रा घटाती है वर्तमान में इन औषधियों का प्रयोग बीटा सेल को बचाने और नए सेल के संरचना के लिए हो रहा है।

शोध की नई सम्भावनाएँ

मधुमेह में शोध का सबसे आवश्यक पक्ष है इन्सुलीन को सूई के स्थान पर अन्य विधि से प्रयोग किया जाना। इसमें अब तक आंशिक सफलता ही मिल पायी है। सूंघने के प्रयोग से लेकर पैच लगाने की विधि तक प्रयोग के प्रयास किए जा रहे हैं। बीटासेल के प्रत्यारोपण एवं मूल कोशिकाओं {स्टेम सेल} के प्रत्यारोपण में आंशिक सफलताएं मिल रही हैं। पर अभी तक यह सब प्रायोगिक स्तर पर ही है। बीटा सेल के बचाव और संवर्धन में आयुर्वेद के औषधियों का प्रयोग भी हो रहा है पर अब तक इसमें कोई ठोस प्रमाण निकल कर सामने नहीं आ रहे हैं।

ऐसी संभावना है कि इस दशक के अन्त तक या अगले दशक तक इन्सुलीन के प्रारूप और खाने वाली औषधियों का विकास होगा, जिससे बीटा सेल बचाया जा सकेगा या नए बीटा सेल बनाकर प्रत्यारोपित किया जा सकेगा तब कहीं जाकर हमारा मधुमेह पर नियंत्रण होगा।

मधुमेह सम्बन्धी जानकारी

प्रो. एस. के. सिंह

इन्डोक्राइनोलॉजी एवं मेटॉबोलिज्म विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

मधुमेह या चीनी की बीमारी विकासशील समुदाय में महामारी का रूप ले रही है। इस कारण से यह जीवन शैली सम्बन्धी रोग की पहचान बनती जा रही है। इस बीमारी में रक्त में शुगर {चीनी} का स्तर, जो शरीर के लिए ईंधन है सामान्य से अधिक हो जाता है। इसके स्तर में वृद्धि के फलस्वरूप शरीर के महत्वपूर्ण अंगों जैसे– स्नायुतन्त्र, नेत्र, किडनी, हृदय एवं तन्त्रिकातन्त्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अधिक समयान्तराल के बाद ये महत्वपूर्ण अंग कमजोर होते जाते हैं और रोगी के कष्ट और मृत्यु का कारण बनते हैं।

मधुमेह रोग की जानकारी मानव सभ्यता के इतिहास में ईसा पूर्व भी थी। इजिप्शियन पपैविरस में इसका जिक्र है। अपने देश में चरक ने ईसा पूर्व इस बीमारी के लक्षण, प्रकार एवं उपचार के विषय में जानकारी दी थी।

मानव सभ्यता के विकास में औद्योगीकरण एक सकारात्मक पहलू है, परन्तु जीवनशैली सम्बन्धी रोगों की वृद्धि एक नकारात्मक पहलू भी है। देश में मधुमेह के मरीजों की संख्या आज 650 लाख है, जो सन् 2030 तक 1010 लाख तक हो जायेगी। विश्व में भी मधुमेह रोगियों की संख्या इसी गति से बढ़ रही है पर विकासशील देशों में इसकी संख्या विकसित देशों से ज्यादा है।

मधुमेह के प्रकार

कारणों के आधार पर मधुमेह के कई प्रकार हैं –

टाइप 1–इन्सुलिन आश्रित

टाइप 2–विशिष्ट प्रकार, गर्भावस्था का मधुमेह

मधुमेह निदान {जाँच के आधार पर}

खून में चीनी के स्तर की जांच से मधुमेह का निदान होता है। सामान्य और असामान्य स्तर निम्नलिखित है –

सामान्य चीनी का स्तर

खाली पेट – < 100 मिग्रा/डेली

ग्लूकोज/चीनी/
भोजन के 2 घण्टे बाद – < 140 मिग्रा/डेली

पूर्व मधुमेह चीनी का स्तर

खाली पेट – 100–125 मिग्रा/डेली

ग्लूकोज/चीनी/
भोजन के 2 घण्टे बाद – 140–199 मिग्रा/डेली

हीमोग्लोबिन A/C 5.7 प्रतिशत– 6.4 प्रतिशत

मधुमेह में चीनी का स्तर

खाली पेट – < 126 मिग्रा/डेली

ग्लूकोज/चीनी/
भोजन के 2 घण्टे बाद – < 200 मिग्रा/डेली

हीमोग्लोबिन > 6.5 प्रतिशत से अधिक

मधुमेह के सामान्य लक्षण

1. बार–बार पेशाब आते रहना {रात में ज्यादा}
2. पैरों का सुन्न होना
3. थकान, कमजोरी
4. वजन कम होना
5. प्यास लगना
6. आँख की देखने की क्षमता कम होना
7. घाव ठीक होने में ज्यादा समय लगना
8. त्वचा में खुजली होना
9. जनानांग में संक्रमण होना
10. महत्वपूर्ण अंगों की कार्यक्षमता में कमी

अधिकांशतः मधुमेह की जानकारी स्वास्थ्य परीक्षण के समय या अन्य रोग के उपचार के समय होती है।

पूर्व मधुमेह {मधुमेह होने के पहले की स्थिति}

यह मधुमेह के पूर्व की स्थिति है जब ग्लूकोज का स्तर मधुमेह के स्तर से कम परन्तु सामान्य से अधिक होता

है। इस स्थिति में मधुमेह होने की सम्भावना होती है। व्यक्ति में इसका कोई लक्षण नहीं होता है और सिर्फ जांच से ही इसका पता लगाया जा सकता है। मधुमेह होने के सम्भावित कारणों की मौजूदगी में इसकी जांच अवश्य करानी चाहिए। जीवन शैली में सुधार से पूर्व मधुमेह ठीक हो सकता है या मधुमेह होने से रोका जा सकता है। दवाएं इस स्थिति के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

मधुमेह के प्रकार

टाइप – 1 {इन्सुलिन आश्रित मधुमेह}

इसका मुख्य कारण इन्सुलिन बनाने की कोशिका {पैन्क्रियाज के बीटा सेल} का एवं प्रतिरोधी क्रिया द्वारा नष्ट होना है। अग्नाशय द्वारा इन्सुलिन नहीं बनता है किन्तु ग्लूकागान नामक हारमोन जो अल्फा सेल से बनता है अधिक हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप ग्लूकोज शरीर द्वारा इस्तेमाल नहीं होता है और ग्लूकागान कीटोन बनाने के लिए वसा का इस्तेमाल करता है। यदि इन्सुलिन न दिया जाय तो इसके रोगी जीवित नहीं रह सकते। यह सामान्यतया अवयस्कों में होता है।

टाइप – 2 {इन्सुलिन अनाश्रित मधुमेह}

लगभग 95 प्रतिशत रोगी टाइप 2 मधुमेह में होते हैं। इस रोग में इन्सुलिन के प्रभाव में कमी के साथ–साथ इसका बीटा सेल द्वारा उत्पादन भी कम हो जाता है। इस प्रकार के डायबिटीज में जेनेटिक कारण है और वातावरण {अनियमित जीवन शैली} इसके होने में सहायक होता है। पूर्व मधुमेह की स्थिति में इस प्रकार के रोग ही सम्भव हैं। वस्तुतः टाइप–2 डायबिटीज को होने से रोका जा सकता है परन्तु इसके होने के कारणों की पहचान आवश्यक है। यह रोग वयस्क एवं प्रौढ़ावस्था में अधिक होता है। आजकल यह त्रुटिपूर्ण जीवन शैली और मोटापा की वजह से अवयस्कों में भी देखा जा सकता है जो वास्तव में गम्भीर समस्या है।

स्टेशनल डायबिटिज {गर्भावस्था के दौरान}

डायबिटिज की जानकारी यदि गर्भावस्था में होती है तो इसे वेस्टेशनाम डायबिटिज कहते हैं। हमारे देश में इस तरह की डायबिटिज का आंकड़ा चौकाने वाला है। अपने देश में कुछ प्रान्तों में 7 प्रतिशत से 15 प्रतिशत तक गर्भावस्था के दौरान डायबिटिज पाया गया। इसकी वजह से शिशु का वजन काफी अधिक होता है एवं गर्भ सम्बन्धी परेशानियां अधिक होती हैं। जन्म के पश्चात माता को डायबिटिज की सम्भावना अधिक होती है। भविष्य में बच्चे को भी मधुमेह होने का जोखिम रहता है।

विशिष्ट मधुमेह

यह उपरोक्त किसी भी प्रकार का नहीं होता है। इसके कई कारण हैं जो इन्सुलिन के असर को बहुत कम करते हैं या इन्सुलिन बनाने की कोशिका को नष्ट करते हैं। इस कारणों में सामान्यतया निम्नलिखित शामिल हैं :

1. अग्नाशय की बीमारी – अल्कोहल लेने से
2. अन्तःस्रावी ग्रन्थि से अधिक हारमोन बनना
3. दवाएं जैसे स्टरॉयड
4. विषैला पदार्थ
5. इन्सुलिन सम्बन्धी जेनेटिक बीमारी
6. इन्सुलिन प्रतिरोधी दवाएं {जेनेटिक}
7. मिश्रित कारण जैसे अंग प्रत्यारोपण के पश्चात
8. एच.आई.वी. संक्रमण

टाइप–2 मधुमेह में होने वाली परेशानियाँ / दुष्प्रभाव

यदि रक्त में शर्करा का स्तर लंबे समय तक सामान्य से अधिक रहता है तो यह रक्त नलिकाओं, गुर्दे, आंखों और स्नायुओं को खराब कर देता है। स्नायु की समस्याओं से पैरों अथवा शरीर के अन्य भागों की संवेदना चली जाती है। रक्त नलिकाओं की बीमारी से हृदयाघात भी हो सकता है। पक्षाघात और संचरण की समस्याएं पैदा हो सकती है। आंखों की समस्याओं जैसे आंखों की रक्त नलिकाओं की खराबी {रेटीनोपैथी}, आंखों पर दबाव {ग्लूकोमा} और आंखों के लेंस पर बदली छाना {मोतियाबिंद} हो सकते हैं। गुर्दे की बीमारी के कारण, गुर्दा रक्त में से अपशिष्ट पदार्थ की सफाई करना बंद कर देता है। उच्च रक्तचाप से हृदय को रक्त पंप करने में कठिनाई होती है।

मधुमेह में अन्य अनियमितताएं

हृदय धड़कने से रक्त नलिकाओं में रक्त प्रवाहित होता है और दबाव पैदा होता है। किसी व्यक्ति के स्वस्थ होने पर रक्त नलिकाएं मांसल और लचीली होती हैं। जब हृदय उनमें से रक्त संचार करता है तो वे फैलती हैं।

सामान्य स्थितियों में हृदय प्रति मिनट 60 से 80 की गति से धड़कता है। हृदय की प्रत्येक धड़कन के साथ रक्त चाप बढ़ता है तथा धड़कनों के बीच हृदय शिथिल होने पर यह घटता है। प्रत्येक मिनट पर आसन, व्यायाम या सोने की स्थिति में रक्तचाप घट–बढ़ सकता है किन्तु एक अधेड़ व्यक्ति के लिए यह 140/90mmHg से सामान्यतः कम ही होना चाहिए। इस रक्तचाप से कुछ भी ऊपर उच्च माना जाएगा। उच्च रक्तचाप के सामान्यतः कोई लक्षण नहीं होते हैं। वास्तव में बहुत से लोगों को सालों साल रक्तचाप बना रहता है किन्तु उन्हें इसकी कोई जानकारी नहीं हो पाती है। इससे तनाव, हतोत्साह अथवा अति संवेदनशीलता से कोई संबंध नहीं होता है। आप शांत, विश्रान्त व्यक्ति हो सकते हैं, फिर भी आपको उच्च रक्तचाप हो सकता है। उच्च रक्तचाप पर नियंत्रण न करने से पक्षाघात, दिल का दौरा, हृदय गति रूकना या गुर्दे खराब हो सकते हैं। ये सभी प्राण घातक हैं। यही कारण है कि उच्च रक्तचाप को ''निष्क्रिय प्राणघातक'' कहा जाता है।

रक्त में कोलेस्ट्रॉल का बढ़ना

शरीर में उच्च कोलेस्ट्रोल का स्तर अधिक होने से दिल का दौरा पड़ने का खतरा चार गुना बढ़ जाता है। उच्च रक्तचाप और उच्च कोलेस्ट्रोल के अतिरिक्त यदि मधुमेह भी हो, तो पक्षाघात और दिल के दौरे का खतरा 16 गुना बढ़ जाता है।

मधुमेह में अत्यधिक खतरे वाले समूह

1. कमर की मोटाई 90 सेमी. पुरूष एवं 80 सेमी. स्त्री
2. 40 साल से ज्यादा उम्र
3. पारिवारिक इतिहास
4. आरामदायक जीवन शैली
5. गर्भावस्था के दौरान मधुमेह
6. दवाओं का दुष्प्रभाव
7. जातीय कारण
8. धूम्रपान, अल्कोहल
9. तनावग्रस्त जीवन
10. आव्रजन

जाँच

1–3 साल पर खून में चीनी की जांच उच्च खतरे वाले समूह में करना चाहिए।

मधुमेह को रोकने सम्बन्धी सुझाव

निम्न विषयों पर ध्यान देकर मधुमेह के होने की सम्भावना को रोका जा सकता है– व्यायाम से रक्त शर्करा स्तर कम होता है तथा ग्लूकोज का उपयोग करने के लिए शारीरिक क्षमता पैदा होती है। प्रतिघण्टा 6 कि.मी. की गति से चलने पर 30 मिनट में 135 कैलोरी समाप्त होती है जबकि साइकिल चलाने से लगभग 200 कैलोरी समाप्त होती है। ज्यादा वजन होने से टाइप–2 मधुमेह होने की सम्भावना ज्यादा हो जाती है। व्यायाम और आहार के द्वारा वजन पर नियन्त्रण रखकर मधुमेह को कम किया जा सकता है।

आहार

निम्नलिखित भोज्य पदार्थ इच्छानुसार खायें

काली चाय/कॉफी

टमाटर का जूस

नींबू पानी {नमक के साथ}

सादा सोडा

हरी पत्तेदार सब्जियां / सूप

हरा सलाद और अन्य सब्जियां कन्दमूल छोड़कर

बिना तेल और चीनी वाले अचार।

निम्नलिखित खाद्य पदार्थ सीमित मात्रा में खायें

अनाज और दालें।

रिफाइण्ड अनाज से बनी चीजें जैसे– मैदा, सूजी आदि।

सब्जियां जैसे – हरी मटर, चुकन्दर, बीन्स आदि।

फलों में सेब, संतरा, मुसम्बी, अमरूद, पपीता और तरबूज सीमित मात्रा में खा सकते हैं। एक मध्यम आकार का फल या कुछ टुकड़े {मात्रा 100 ग्राम} नाशपाती, जामुन, मलाई हटाया हुआ दूध पूरे दिन में आधा लीटर {500 मिली} तक ले सकते हैं। इतने में ही चाय, कॉफी, दूध, दही सब शामिल रहेगा।

डबला, भुना या बेक किया हुआ मुर्गा या मछली हफ्ते में 2–3 बार तक खा सकते हैं। {मात्रा – एक छोटा टुकड़ा लगभग 50 ग्राम}।

पिस्ता, बादाम, अखरोट 3–4 पीस अण्डे का सिर्फ सफेद खायें। खाना पकाने में सफोला या पोस्टमैन जैसे किसी रिफाइण्ड तेल का प्रयोग करें। मात्रा 15–20 या 3–4 छोटा चम्मच प्रतिदिन।

निम्नलिखत खाद्य पदार्थों से परहेज करें

चीनी, गुड़, शहद, ग्लूकोज, जैम, जेली आदि।

मिठाइयां जैसे लड्डू, बर्फी, खीर, गुलाबजामुन, जलेबी, आइसक्रीम आदि।

रिफाइन्ड स्टार्च से बनी चीजें जैसे – कार्नफ्लोर, कस्टर्ड पाउडर, आरारोट पाउडर आदि।

कोई भी तली हुई चीज या अधिक घी–तेल युक्त चीजें जैसे– समोसा, पकौड़े, चिप्स–पापड़, पूरी कचौरी कटलेट आदि।

बेकरी की बनी चीजें जैसे– केक, पेस्ट्री, पेटीज, क्रीम बिस्कुट आदि।

वसा जैसे– डालडा, बटर और नारियल का तेल।

जड़ वाली सब्जियां जैसे– आलू, सूरन, शकरकन्द आदि।

अधिक ऊर्जा वाले फल जैसे– काजू, किशमिश, पिस्ता, बादाम, अंजीर, मुनक्का, मूंगफली आदि।

फलों के जूस चीनी के साथ, स्क्वैश, शर्बत मिल्क शेक आदि।

प्रोपायरी वस्तुएं– जैसे– थम्सअप, पेप्सी, कोका–कोला, मिरिन्डा, फन्टा आदि।

ब्रांडेड वास्तुएं– जैसे– हॉरलिक्स, बूस्ट, बार्नवीटा, कम्प्लान आदि।

निम्नलिखित भोज्य पदार्थ अवश्य खायें

अधिक रेशेवाली चीजें जैसे– हरी पत्तेदार सब्जियां और हरा सलाद। खड़ी दालें, छिलके वाली दालें, भुना चना। अंकुरित चना, मूंग, सोयाबीन। पूरे आटे {चोकर सहित} की रोटी या अनाजमिश्रित रोटी से रेशे प्राप्त होते हैं।

नोट –

भोजन के बीच का अंतराल मधुमेह के मरीजों के लिए बहुत आवश्यक है। अन्तराल अधिक या कम दोनों हानिकारक है। इच्छानुसार खायी जाने वाली चीजें तीन मुख्य आहारों के बीच खानी चाहिए, जिससे खाना के बीच का समयान्तराल कम हो सके।

खाना सम्बन्धी सुनहरा नियम

''ना अधिक खाये, ना अधिक देर तक भूखे रहे!'' अधिक व्रत और बड़ी दावत से परहेज करें।

इलाज

मधुमेह हो जाने के पश्चात् जटिलताओं की रोकथाम के लिए नियमित आहार, व्यायाम, व्यक्तिगत स्वास्थ्य, सफाई और संभावित इन्सुलिन इंजेक्शन अथवा खाने वाली दवाइयों {डॉक्टर के सुझाव के अनुसार} का सेवन आदि कुछ तरीके हैं। इन तरीकों के साथ नियमित शर्करा के स्तर की जांच भी आवश्यक है। ग्लूकोमीटर द्वारा रोगी स्वयं देख सकता है कि उसमें सुगर का स्तर कितना है और इससे डॉक्टर को भी दवा के खुराक में संशोधन करना आसान हो जाता है।

देखभाल

मधुमेह रोगियों को अपने शरीर की स्वयं देखभाल करनी चाहिये। उन्हें चाहिये कि हल्के साबुन या हल्के गरम पानी से नियमित स्नान करें। अधिक गर्म पानी से न नहाएं और नहाने के बाद शरीर को भली प्रकार पोछें तथा त्वचा की सिलवटों वाले स्थान पर विशेष ध्यान दें। वहां पर अधिक नमी जमा होने की संभावना होती है। जैसा कि बगलों, उरूमूल तथा उंगलियों के बीच। इन जगहों पर अधिक नमी से फफूंदी संक्रमण की अधिकाधिक संभावना होती है। त्वचा सूखी न होने दें। जब आप सूखी, खुजलीदार त्वचा को रगड़ते हैं तो आप कीटाणुओं के लिए द्वार खोल देते हैं। पर्याप्त तरल पदार्थों को ले जिससे कि त्वचा पानीदार बनी रहे।

घावों की देखभाल

मधुमेह की बीमारी वाले व्यक्तियों को मामूली घावों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि संक्रमण से बचा जा सके। मामूली कटने और छिलने का भी सीधे उपचार करना चाहिए। उन्हें यथाशीघ्र साबुन और पानी से

धो डालना चाहिए। आयोडिन युक्त अलकोहल या प्रतिरोधी द्रवों को न लगायें, क्योंकि उनसे त्वचा में जलन पैदा होती है। केवल डॉक्टरी सलाह के आधार पर ही प्रतिरोधी क्रीमों का प्रयोग करें। उन पर विसंक्रमित कपड़ा, पट्टी या गाज से बांध कर जगह को सुरक्षित करें।

यदि बहुत अधिक कट या जल गया हो, त्वचा पर कहीं पर भी लालीपन, सुजन, मवाद या दर्द हो जिससे कीटाणु संक्रमण की आशंका हो या रिंगवर्म, जननेंद्रिय में खुजली या फफूंदी संक्रमण के कोई अन्य लक्षण दिखें तो चिकित्सक से तुरंत संपर्क करें। मधुमेह की बीमारी में रक्त में ग्लूकोज के उच्च स्तर के कारण तन्त्रिका तन्त्र खराब होने से संवेदनशीलता जाती रहती है। पैरों की नियमित जांच करें, पर्याप्त रोशनी में प्रतिदिन पैरों की नजदीकी जांच करें। देखे कि कहीं कटान और कतरन, त्वचा में कटाव, कड़ापन, फफोले, लाल धब्बे और सूजन तो नहीं है। ऊंगलियों के नीचे और उनके बीच देखना न भूलें। उनकी नियमित सफाई करें हल्के साबुन से और पानी से प्रतिदिन साफ करें व पैरों की ऊंगलियों के नाखूनों को नियमित काटते रहें। सोते समय तेल या गीला रखने वाले क्रीम का प्रयोग कर सकते हैं।

पैरों की देखभाल

1. जीवन शैली में परिवर्तन जैसे– व्यायाम, वजन कम करना, धूम्रपान न करना, मधुमेह से बचने हेतु उपयुक्त आहार और उपचार।
2. मुंह से दी जाने वाली दवायें एवं इन्सुलिन
3. मधुमेह की पूर्ण जानकारी
4. नियमित शर्करा/सुगरन की जाँच

मधुमेह के रोगी को नियमित रूप से अपनी बीमारी की जानकारी रखना उनका दायित्व है। इस बीमारी से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं –

मधुमेह के अधिकांश रोगी में टाइप–2 डायबिटिज {इन्सुलिन अनाश्रित} है और जीवन शैली के कारण यह रोग जल्दी हो जाता है। अपने देश में इस रोग के होने की सम्भावना कई अन्य कारणों से भी है। माता का गर्भावस्था में कुपोषण ऐसे बच्चे को जन्म देता है जो प्रौढ़ावस्था में मधुमेह का रोगी होता है। जेनेटिक कारण का पता नहीं चल पाया परन्तु यह भी रोग होने का कारण हो सकता है।

मधुमेह के रोगी के अन्य अंगों पर विपरीत प्रभाव होना शरीर में ग्लूकोज के स्तर पर, अधिक समय बीतने पर और जेनेटिक्स पर निर्भर करता है। ग्लूकोज स्तर के नियन्त्रण से इस परिणाम को कम अथवा रोका जा सकता है।

रक्त में ग्लूकोज की मात्रा को दवा या इन्सुलिन किसी विधि से नियन्त्रित करने पर एक जैसा लाभ होता है। ज्यादा समय के बाद दवाओं का असर कम होने लगता है और तब इन्सुलिन लेना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि बीमारी गम्भीर हो गयी है और कई बार इन्सुलिन बन्द कर दवा का पुनः असर होता है।

मधुमेह की रोकथाम के उपाय निःसन्देह सफल होते हैं, इसलिए इसकी जानकारी रखना प्रत्येक माता, पिता, परिवार की जिम्मेदारी है और रोग होने पर रोगी एवं स्वास्थ्य विभाग की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है।

मधुमेह सम्बन्धी जानकारी

प्रो. एस. के. सिंह

इन्डोक्राइनोलॉजी एवं मेटॉबोलिज्म विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

मधुमेह या चीनी की बीमारी विकासशील समुदाय में महामारी का रूप ले रही है। इस कारण से यह जीवन शैली सम्बन्धी रोग की पहचान बनती जा रही है। इस बीमारी में रक्त में शुगर {चीनी} का स्तर, जो शरीर के लिए ईंधन है सामान्य से अधिक हो जाता है। इसके स्तर में वृद्धि के फलस्वरूप शरीर के महत्वपूर्ण अंगों जैसे– स्नायुतन्त्र, नेत्र, किडनी, हृदय एवं तन्त्रिकातन्त्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अधिक समयान्तराल के बाद ये महत्वपूर्ण अंग कमजोर होते जाते हैं और रोगी के कष्ट और मृत्यु का कारण बनते हैं।

मधुमेह रोग की जानकारी मानव सभ्यता के इतिहास में ईसा पूर्व भी थी। इजिप्शियन पपैविरस में इसका जिक्र है। अपने देश में चरक ने ईसा पूर्व इस बीमारी के लक्षण, प्रकार एवं उपचार के विषय में जानकारी दी थी।

मानव सभ्यता के विकास में औद्योगीकरण एक सकारात्मक पहलू है, परन्तु जीवनशैली सम्बन्धी रोगों की वृद्धि एक नकारात्मक पहलू भी है। देश में मधुमेह के मरीजों की संख्या आज 650 लाख है, जो सन् 2030 तक 1010 लाख तक हो जायेगी। विश्व में भी मधुमेह रोगियों की संख्या इसी गति से बढ़ रही है पर विकासशील देशों में इसकी संख्या विकसित देशों से ज्यादा है।

मधुमेह के प्रकार

कारणों के आधार पर मधुमेह के कई प्रकार हैं –

टाइप 1–इन्सुलिन आश्रित

टाइप 2–विशिष्ट प्रकार, गर्भावस्था का मधुमेह

मधुमेह निदान {जाँच के आधार पर}

खून में चीनी के स्तर की जांच से मधुमेह का निदान होता है। सामान्य और असामान्य स्तर निम्नलिखित है –

सामान्य चीनी का स्तर

खाली पेट – < 100 मिग्रा/डेली

ग्लूकोज/चीनी/
भोजन के 2 घण्टे बाद – < 140 मिग्रा/डेली

पूर्व मधुमेह चीनी का स्तर

खाली पेट – 100–125 मिग्रा/डेली

ग्लूकोज/चीनी/
भोजन के 2 घण्टे बाद – 140–199 मिग्रा/डेली

हीमोग्लोबिन A/C 5.7 प्रतिशत– 6.4 प्रतिशत

मधुमेह में चीनी का स्तर

खाली पेट – < 126 मिग्रा/डेली

ग्लूकोज/चीनी/
भोजन के 2 घण्टे बाद – < 200 मिग्रा/डेली

हीमोग्लोबिन > 6.5 प्रतिशत से अधिक

मधुमेह के सामान्य लक्षण

1. बार–बार पेशाब आते रहना {रात में ज्यादा}
2. पैरों का सुन्न होना
3. थकान, कमजोरी
4. वजन कम होना
5. प्यास लगना
6. आँख की देखने की क्षमता कम होना
7. घाव ठीक होने में ज्यादा समय लगना
8. त्वचा में खुजली होना
9. जनानांग में संक्रमण होना
10. महत्वपूर्ण अंगों की कार्यक्षमता में कमी

अधिकांशतः मधुमेह की जानकारी स्वास्थ्य परीक्षण के समय या अन्य रोग के उपचार के समय होती है।

पूर्व मधुमेह {मधुमेह होने के पहले की स्थिति}

यह मधुमेह के पूर्व की स्थिति है जब ग्लूकोज का स्तर मधुमेह के स्तर से कम परन्तु सामान्य से अधिक होता

है। इस स्थिति में मधुमेह होने की सम्भावना होती है। व्यक्ति में इसका कोई लक्षण नहीं होता है और सिर्फ जांच से ही इसका पता लगाया जा सकता है। मधुमेह होने के सम्भावित कारणों की मौजूदगी में इसकी जांच अवश्य करानी चाहिए। जीवन शैली में सुधार से पूर्व मधुमेह ठीक हो सकता है या मधुमेह होने से रोका जा सकता है। दवाएं इस स्थिति के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

मधुमेह के प्रकार

टाइप – 1 {इन्सुलिन आश्रित मधुमेह}

इसका मुख्य कारण इन्सुलिन बनाने की कोशिका {पैन्क्रियाज के बीटा सेल} का एवं प्रतिरोधी क्रिया द्वारा नष्ट होना है। अग्नाशय द्वारा इन्सुलिन नहीं बनता है किन्तु ग्लूकागान नामक हारमोन जो अल्फा सेल से बनता है अधिक हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप ग्लूकोज शरीर द्वारा इस्तेमाल नहीं होता है और ग्लूकागान कीटोन बनाने के लिए वसा का इस्तेमाल करता है। यदि इन्सुलिन न दिया जाय तो इसके रोगी जीवित नहीं रह सकते। यह सामान्यतया अवयस्कों में होता है।

टाइप – 2 {इन्सुलिन अनाश्रित मधुमेह}

लगभग 95 प्रतिशत रोगी टाइप 2 मधुमेह में होते हैं। इस रोग में इन्सुलिन के प्रभाव में कमी के साथ–साथ इसका बीटा सेल द्वारा उत्पादन भी कम हो जाता है। इस प्रकार के डायबिटीज में जेनेटिक कारण है और वातावरण {अनियमित जीवन शैली} इसके होने में सहायक होता है। पूर्व मधुमेह की स्थिति में इस प्रकार के रोग ही सम्भव हैं। वस्तुतः टाइप–2 डायबिटीज को होने से रोका जा सकता है परन्तु इसके होने के कारणों की पहचान आवश्यक है। यह रोग वयस्क एवं प्रौढ़ावस्था में अधिक होता है। आजकल यह त्रुटिपूर्ण जीवन शैली और मोटापा की वजह से अवयस्कों में भी देखा जा सकता है जो वास्तव में गम्भीर समस्या है।

स्टेशनल डायबिटिज {गर्भावस्था के दौरान}

डायबिटिज की जानकारी यदि गर्भावस्था में होती है तो इसे वेस्टेशनाम डायबिटिज कहते हैं। हमारे देश में इस तरह की डायबिटिज का आंकड़ा चौकाने वाला है। अपने देश में कुछ प्रान्तों में 7 प्रतिशत से 15 प्रतिशत तक गर्भावस्था के दौरान डायबिटिज पाया गया। इसकी वजह से शिशु का वजन काफी अधिक होता है एवं गर्भ सम्बन्धी परेशानियां अधिक होती हैं। जन्म के पश्चात माता को डायबिटिज की सम्भावना अधिक होती है। भविष्य में बच्चे को भी मधुमेह होने का जोखिम रहता है।

विशिष्ट मधुमेह

यह उपरोक्त किसी भी प्रकार का नहीं होता है। इसके कई कारण हैं जो इन्सुलिन के असर को बहुत कम करते हैं या इन्सुलिन बनाने की कोशिका को नष्ट करते हैं। इस कारणों में सामान्यतया निम्नलिखित शामिल हैं :

1. अग्नाशय की बीमारी – अल्कोहल लेने से
2. अन्तःस्रावी ग्रन्थि से अधिक हारमोन बनना
3. दवाएं जैसे स्टरॉयड
4. विषैला पदार्थ
5. इन्सुलिन सम्बन्धी जेनेटिक बीमारी
6. इन्सुलिन प्रतिरोधी दवाएं {जेनेटिक}
7. मिश्रित कारण जैसे अंग प्रत्यारोपण के पश्चात
8. एच.आई.वी. संक्रमण

टाइप–2 मधुमेह में होने वाली परेशानियाँ / दुष्प्रभाव

यदि रक्त में शर्करा का स्तर लंबे समय तक सामान्य से अधिक रहता है तो यह रक्त नलिकाओं, गुर्दे, आंखों और स्नायुओं को खराब कर देता है। स्नायु की समस्याओं से पैरों अथवा शरीर के अन्य भागों की संवेदना चली जाती है। रक्त नलिकाओं की बीमारी से हृदयाघात भी हो सकता है। पक्षाघात और संचरण की समस्याएं पैदा हो सकती है। आंखों की समस्याओं जैसे आंखों की रक्त नलिकाओं की खराबी {रेटीनोपैथी}, आंखों पर दबाव {ग्लूकोमा} और आंखों के लेंस पर बदली छाना {मोतियाबिंद} हो सकते हैं। गुर्दे की बीमारी के कारण, गुर्दा रक्त में से अपशिष्ट पदार्थ की सफाई करना बंद कर देता है। उच्च रक्तचाप से हृदय को रक्त पंप करने में कठिनाई होती है।

मधुमेह में अन्य अनियमितताएं

हृदय धड़कने से रक्त नलिकाओं में रक्त प्रवाहित होता है और दबाव पैदा होता है। किसी व्यक्ति के स्वस्थ होने पर रक्त नलिकाएं मांसल और लचीली होती हैं। जब हृदय उनमें से रक्त संचार करता है तो वे फैलती हैं।

सामान्य स्थितियों में हृदय प्रति मिनट 60 से 80 की गति से धड़कता है। हृदय की प्रत्येक धड़कन के साथ रक्त चाप बढ़ता है तथा धड़कनों के बीच हृदय शिथिल होने पर यह घटता है। प्रत्येक मिनट पर आसन, व्यायाम या सोने की स्थिति में रक्तचाप घट–बढ़ सकता है किन्तु एक अधेड़ व्यक्ति के लिए यह 140/90mmHg से सामान्यतः कम ही होना चाहिए। इस रक्तचाप से कुछ भी ऊपर उच्च माना जाएगा। उच्च रक्तचाप के सामान्यतः कोई लक्षण नहीं होते हैं। वास्तव में बहुत से लोगों को सालों साल रक्तचाप बना रहता है किन्तु उन्हें इसकी कोई जानकारी नहीं हो पाती है। इससे तनाव, हतोत्साह अथवा अति संवेदनशीलता से कोई संबंध नहीं होता है। आप शांत, विश्रान्त व्यक्ति हो सकते हैं, फिर भी आपको उच्च रक्तचाप हो सकता है। उच्च रक्तचाप पर नियंत्रण न करने से पक्षाघात, दिल का दौरा, हृदय गति रूकना या गुर्दे खराब हो सकते हैं। ये सभी प्राण घातक हैं। यही कारण है कि उच्च रक्तचाप को ''निष्क्रिय प्राणघातक'' कहा जाता है।

रक्त में कोलेस्ट्रॉल का बढ़ना

शरीर में उच्च कोलेस्ट्रोल का स्तर अधिक होने से दिल का दौरा पड़ने का खतरा चार गुना बढ़ जाता है। उच्च रक्तचाप और उच्च कोलेस्ट्रोल के अतिरिक्त यदि मधुमेह भी हो, तो पक्षाघात और दिल के दौरे का खतरा 16 गुना बढ़ जाता है।

मधुमेह में अत्यधिक खतरे वाले समूह

1. कमर की मोटाई 90 सेमी. पुरूष एवं 80 सेमी. स्त्री
2. 40 साल से ज्यादा उम्र
3. पारिवारिक इतिहास
4. आरामदायक जीवन शैली
5. गर्भावस्था के दौरान मधुमेह
6. दवाओं का दुष्प्रभाव
7. जातीय कारण
8. धूम्रपान, अल्कोहल
9. तनावग्रस्त जीवन
10. आव्रजन

जाँच

1–3 साल पर खून में चीनी की जांच उच्च खतरे वाले समूह में करना चाहिए।

मधुमेह को रोकने सम्बन्धी सुझाव

निम्न विषयों पर ध्यान देकर मधुमेह के होने की सम्भावना को रोका जा सकता है– व्यायाम से रक्त शर्करा स्तर कम होता है तथा ग्लूकोज का उपयोग करने के लिए शारीरिक क्षमता पैदा होती है। प्रतिघण्टा 6 कि.मी. की गति से चलने पर 30 मिनट में 135 कैलोरी समाप्त होती है जबकि साइकिल चलाने से लगभग 200 कैलोरी समाप्त होती है। ज्यादा वजन होने से टाइप–2 मधुमेह होने की सम्भावना ज्यादा हो जाती है। व्यायाम और आहार के द्वारा वजन पर नियन्त्रण रखकर मधुमेह को कम किया जा सकता है।

आहार

निम्नलिखित भोज्य पदार्थ इच्छानुसार खायें

काली चाय/कॉफी

टमाटर का जूस

नींबू पानी {नमक के साथ}

सादा सोडा

हरी पत्तेदार सब्जियां / सूप

हरा सलाद और अन्य सब्जियां कन्दमूल छोड़कर

बिना तेल और चीनी वाले अचार।

निम्नलिखित खाद्य पदार्थ सीमित मात्रा में खायें

अनाज और दालें।

रिफाइण्ड अनाज से बनी चीजें जैसे– मैदा, सूजी आदि।

सब्जियां जैसे – हरी मटर, चुकन्दर, बीन्स आदि।

फलों में सेब, संतरा, मुसम्बी, अमरूद, पपीता और तरबूज सीमित मात्रा में खा सकते हैं। एक मध्यम आकार का फल या कुछ टुकड़े {मात्रा 100 ग्राम} नाशपाती, जामुन, मलाई हटाया हुआ दूध पूरे दिन में आधा लीटर {500 मिली} तक ले सकते हैं। इतने में ही चाय, कॉफी, दूध, दही सब शामिल रहेगा।

डबला, भुना या बेक किया हुआ मुर्गा या मछली हफ्ते में 2–3 बार तक खा सकते हैं। {मात्रा – एक छोटा टुकड़ा लगभग 50 ग्राम}।

पिस्ता, बादाम, अखरोट 3–4 पीस अण्डे का सिर्फ सफेद खायें। खाना पकाने में सफोला या पोस्टमैन जैसे किसी रिफाइण्ड तेल का प्रयोग करें। मात्रा 15–20 या 3–4 छोटा चम्मच प्रतिदिन।

निम्नलिखत खाद्य पदार्थों से परहेज करें

चीनी, गुड़, शहद, ग्लूकोज, जैम, जेली आदि।

मिठाइयां जैसे लड्डू, बर्फी, खीर, गुलाबजामुन, जलेबी, आइसक्रीम आदि।

रिफाइन्ड स्टार्च से बनी चीजें जैसे – कार्नफ्लोर, कस्टर्ड पाउडर, आरारोट पाउडर आदि।

कोई भी तली हुई चीज या अधिक घी–तेल युक्त चीजें जैसे– समोसा, पकौड़े, चिप्स–पापड़, पूरी कचौरी कटलेट आदि।

बेकरी की बनी चीजें जैसे– केक, पेस्ट्री, पेटीज, क्रीम बिस्कुट आदि।

वसा जैसे– डालडा, बटर और नारियल का तेल।

जड़ वाली सब्जियां जैसे– आलू, सूरन, शकरकन्द आदि।

अधिक ऊर्जा वाले फल जैसे– काजू, किशमिश, पिस्ता, बादाम, अंजीर, मुनक्का, मूंगफली आदि।

फलों के जूस चीनी के साथ, स्क्वैश, शर्बत मिल्क शेक आदि।

प्रोपायरी वस्तुएं– जैसे– थम्सअप, पेप्सी, कोका–कोला, मिरिन्डा, फन्टा आदि।

ब्रांडेड वास्तुएं– जैसे– हॉरलिक्स, बूस्ट, बार्नवीटा, कम्प्लान आदि।

निम्नलिखित भोज्य पदार्थ अवश्य खायें

अधिक रेशेवाली चीजें जैसे– हरी पत्तेदार सब्जियां और हरा सलाद। खड़ी दालें, छिलके वाली दालें, भुना चना। अंकुरित चना, मूंग, सोयाबीन। पूरे आटे {चोकर सहित} की रोटी या अनाजमिश्रित रोटी से रेशे प्राप्त होते हैं।

नोट –

भोजन के बीच का अंतराल मधुमेह के मरीजों के लिए बहुत आवश्यक है। अन्तराल अधिक या कम दोनों हानिकारक है। इच्छानुसार खायी जाने वाली चीजें तीन मुख्य आहारों के बीच खानी चाहिए, जिससे खाना के बीच का समयान्तराल कम हो सके।

खाना सम्बन्धी सुनहरा नियम

''ना अधिक खाये, ना अधिक देर तक भूखे रहे!'' अधिक व्रत और बड़ी दावत से परहेज करें।

इलाज

मधुमेह हो जाने के पश्चात् जटिलताओं की रोकथाम के लिए नियमित आहार, व्यायाम, व्यक्तिगत स्वास्थ्य, सफाई और संभावित इन्सुलिन इंजेक्शन अथवा खाने वाली दवाइयों {डॉक्टर के सुझाव के अनुसार} का सेवन आदि कुछ तरीके हैं। इन तरीकों के साथ नियमित शर्करा के स्तर की जांच भी आवश्यक है। ग्लूकोमीटर द्वारा रोगी स्वयं देख सकता है कि उसमें सुगर का स्तर कितना है और इससे डॉक्टर को भी दवा के खुराक में संशोधन करना आसान हो जाता है।

देखभाल

मधुमेह रोगियों को अपने शरीर की स्वयं देखभाल करनी चाहिये। उन्हें चाहिये कि हल्के साबुन या हल्के गरम पानी से नियमित स्नान करें। अधिक गर्म पानी से न नहाएं और नहाने के बाद शरीर को भली प्रकार पोछें तथा त्वचा की सिलवटों वाले स्थान पर विशेष ध्यान दें। वहां पर अधिक नमी जमा होने की संभावना होती है। जैसा कि बगलों, उरूमूल तथा उंगलियों के बीच। इन जगहों पर अधिक नमी से फफूंदी संक्रमण की अधिकाधिक संभावना होती है। त्वचा सूखी न होने दें। जब आप सूखी, खुजलीदार त्वचा को रगड़ते हैं तो आप कीटाणुओं के लिए द्वार खोल देते हैं। पर्याप्त तरल पदार्थों को ले जिससे कि त्वचा पानीदार बनी रहे।

घावों की देखभाल

मधुमेह की बीमारी वाले व्यक्तियों को मामूली घावों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि संक्रमण से बचा जा सके। मामूली कटने और छिलने का भी सीधे उपचार करना चाहिए। उन्हें यथाशीघ्र साबुन और पानी से

धो डालना चाहिए। आयोडिन युक्त अलकोहल या प्रतिरोधी द्रवों को न लगायें, क्योंकि उनसे त्वचा में जलन पैदा होती है। केवल डॉक्टरी सलाह के आधार पर ही प्रतिरोधी क्रीमों का प्रयोग करें। उन पर विसंक्रमित कपड़ा, पट्टी या गाज से बांध कर जगह को सुरक्षित करें।

यदि बहुत अधिक कट या जल गया हो, त्वचा पर कहीं पर भी लालीपन, सुजन, मवाद या दर्द हो जिससे कीटाणु संक्रमण की आशंका हो या रिंगवर्म, जननेंद्रिय में खुजली या फफूंदी संक्रमण के कोई अन्य लक्षण दिखें तो चिकित्सक से तुरंत संपर्क करें। मधुमेह की बीमारी में रक्त में ग्लूकोज के उच्च स्तर के कारण तन्त्रिका तन्त्र खराब होने से संवेदनशीलता जाती रहती है। पैरों की नियमित जांच करें, पर्याप्त रोशनी में प्रतिदिन पैरों की नजदीकी जांच करें। देखे कि कहीं कटान और कतरन, त्वचा में कटाव, कड़ापन, फफोले, लाल धब्बे और सूजन तो नहीं है। ऊंगलियों के नीचे और उनके बीच देखना न भूलें। उनकी नियमित सफाई करें हल्के साबुन से और पानी से प्रतिदिन साफ करें व पैरों की ऊंगलियों के नाखूनों को नियमित काटते रहें। सोते समय तेल या गीला रखने वाले क्रीम का प्रयोग कर सकते हैं।

पैरों की देखभाल

1. जीवन शैली में परिवर्तन जैसे– व्यायाम, वजन कम करना, धूम्रपान न करना, मधुमेह से बचने हेतु उपयुक्त आहार और उपचार।
2. मुंह से दी जाने वाली दवायें एवं इन्सुलिन
3. मधुमेह की पूर्ण जानकारी
4. नियमित शर्करा/सुगरन की जाँच

मधुमेह के रोगी को नियमित रूप से अपनी बीमारी की जानकारी रखना उनका दायित्व है। इस बीमारी से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं –

मधुमेह के अधिकांश रोगी में टाइप–2 डायबिटिज {इन्सुलिन अनाश्रित} है और जीवन शैली के कारण यह रोग जल्दी हो जाता है। अपने देश में इस रोग के होने की सम्भावना कई अन्य कारणों से भी है। माता का गर्भावस्था में कुपोषण ऐसे बच्चे को जन्म देता है जो प्रौढ़ावस्था में मधुमेह का रोगी होता है। जेनेटिक कारण का पता नहीं चल पाया परन्तु यह भी रोग होने का कारण हो सकता है।

मधुमेह के रोगी के अन्य अंगों पर विपरीत प्रभाव होना शरीर में ग्लूकोज के स्तर पर, अधिक समय बीतने पर और जेनेटिक्स पर निर्भर करता है। ग्लूकोज स्तर के नियन्त्रण से इस परिणाम को कम अथवा रोका जा सकता है।

रक्त में ग्लूकोज की मात्रा को दवा या इन्सुलिन किसी विधि से नियन्त्रित करने पर एक जैसा लाभ होता है। ज्यादा समय के बाद दवाओं का असर कम होने लगता है और तब इन्सुलिन लेना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि बीमारी गम्भीर हो गयी है और कई बार इन्सुलिन बन्द कर दवा का पुनः असर होता है।

मधुमेह की रोकथाम के उपाय निःसन्देह सफल होते हैं, इसलिए इसकी जानकारी रखना प्रत्येक माता, पिता, परिवार की जिम्मेदारी है और रोग होने पर रोगी एवं स्वास्थ्य विभाग की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है।

कटे हुए होठ और तालू: प्लास्टिक सर्जन उत्तम परिणाम के लिए एकमात्र विकल्प

प्रो. वी. भट्टाचार्य एवं डॉ. एन. के. अग्रवाल

प्लास्टिक सर्जरी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

होठ एवं तालू का कटा होना {क्लैफ्ट लिप एवं क्लैफ्ट पैलेट} एक जन्मजात समस्या है। जीवित पैदा होने वाले बच्चों में क्लैफ्ट लिप समस्या का अनुपात 1:500 है एवं क्लैफ्ट पैलेट का अनुपात 1:2500 है। इस तरह की बीमारी वंशानुगत भी है। जिन बच्चों के मां–बाप या भाई–बहन के होठ या तालू कटे होते हैं उन बच्चों में इस बीमारी के होने की संभावना बढ़ जाती है। {चित्र 1 क,ख,ग}

चित्र 1: बीमारी का वंशानुगत होना, क, ख, नानी–माँ–बच्चे, ग, पिता–पुत्र

अन्धविश्वास

इस बीमारी को लेकर समाज में कई तरह की धारणाएं हैं। मसलन ईश्वर या पुरखों द्वारा दी गई सजा, मां का ग्रहण के समय बाहर निकलना या फिर बच्चे पर चुड़ैल का साया इत्यादि।

सामाजिक दिक्कतें

इस समस्या से बच्चों में कई परेशानियां उत्पन्न होती हैं। जिन मां–बाप का ऐसा बच्चा पैदा होता है वे मानसिक पीड़ा के दौर से गुजरते हैं। उन्हें बच्चों के भविष्य की चिंता सताने लगती है। उन्हें देखकर घर के अन्य सदस्य भी दुखी रहते हैं। बच्चा जब बड़ा होता है तो अपने को अन्य साथियों से भिन्न समझता है। ऐसे बच्चे ठीक से अपना भोजन भी ग्रहण नहीं कर पाते। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है वह मनोवैज्ञानिक दबाव में आने लगता है और धीरे–धीरे अंतर्मुखी हो जाता है।

बीमारी के मुख्य कारण

आखिर, क्लैफ्ट लिप एवं क्लैफ्ट पैलेट समस्या क्यों होती है? होठ और तालू का विकास गर्भ धारण करने के 6 से 12 सप्ताह में हो जाता है। यदि गर्भवती महिलाएं बगैर किसी चिकित्सकीय परामर्श के दवाओं {स्टेरॉयड इत्यादि} का सेवन करती हैं तो गर्भ में पल रहे शिशु पर गंभीर असर पड़ सकता है। जो महिलाएं धूम्रपान या मदिरा का सेवन करती हैं, उनके बच्चों पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है। इस कारणवश पैदा होने वाले बच्चे के होंठ व तालू कटे हुए रहते हैं। इसके कई और कारण भी हैं– जैसे कुपोषण, मधुमेह, माँ की आयु ज्यादा होना, एक्स–रे इत्यादि की किरणें और इन्फेक्शन {रूबेला}।

मुख्य कारण

इस बीमारी में होंठ एक तरफ या दोनों तरफ कटा हो सकता है {चित्र 2 क, ख}। जिस तरफ का होंठ कटा हुआ होता है उस तरफ की नाक चपटी होती है। होठों की

चित्र 2: क. होंठ बाईं ओर कटा होना, ख. होंठ दोनों तरफ कटा होना।

तरह तालू भी एक समान न होकर बीच में कटा हुआ होता है। देखने में तालू के बीच में एक चौड़ी दरार होती है जो तालू को दो भागों में बांटती है {चित्र 3 क, ख}। ऐसे बच्चे अपनी मां के स्तन से दूध नहीं खींच पाते जिससे भोजन प्राप्त करने में कठिनाई होती है। तालू में यदि क्लैफ्ट है तो नाक का सीधा सम्बन्ध ओरल केविटी {मुखगुहा} से होता है। इस प्रकार से जो भी भोजन किसी भी साधन से उनके

मुंह में पहुंचता है उसका अधिकांश भाग नाक के रास्ते बाहर आ जाता है। इस प्रकार से मुंह, कान व गले में इन्फेक्शन हो सकता है। कान से पानी भी बह सकता है। वजन बढ़ने के बजाय दिन–प्रतिदिन घटने लगता है। ऐसे बच्चों के दांत एक विशेष क्रम में न होकर एक दूसरे के उपर आ जाते हैं, कभी–कभी घूम जाते हैं, यहाँ तक की कुछ दांत अपनी सामान्य जगह पर उपस्थित नहीं होते। जिन बच्चों के होंठ और तालू दोनों तरफ कटे होते हैं, उन बच्चों के उपरी जबड़े {मैक्सिल्ला} का अग्रिम भाग {प्रीमैक्सिल्ला} काफी आगे की तरफ निकला होता है जिसे सामान्य बनाने में बहुत समय और मेहनत लगती है। यदि ऑपरेशन में विलम्ब हो तो विकृतियाँ बढ़ जाती हैं।

चित्र 3: क. होंठ और तालू का पूरा कटा होना,
ख. तालू का केवल पिछला भाग कटा होना।

उपचार

इसे पूरी तरह ठीक किया जा सकता है। लेकिन यह कोई एक अकेले व्यक्ति विशेष का काम नहीं है बल्कि कई विशेषज्ञों की एक टोली मिलकर इसकी चिकित्सा करती हैं। विशेषज्ञों की इस टोली में, प्लास्टिक सर्जन, स्पीच थेरेपिस्ट एवं दन्त चिकित्सक होते हैं। यदि किसी बच्चे में क्लैफ्ट लिप एवं क्लैफ्ट पैलेट है तो उसके पैदा होते ही उसके मां–बाप को बिना किसी लापरवाही के जल्द से जल्द प्लास्टिक सर्जन को दिखा लेना चाहिए। ऐसे बच्चे के पैदा होने के चौबीस घण्टे के अन्दर ही उपरोक्त चिकित्सक को दिखाकर उनसे राय–मशविरा ले लेना चाहिए। आजकल कुछ और विभाग के चिकित्सक भी इसके इलाज का दावा कर रहे हैं लेकिन माता–पिता को सावधान रहना चाहिए और इनके झांसे में न आते हुए केवल प्लास्टिक सर्जन से ही राय लेनी चाहिए जिससे कि बच्चे को उत्तम कार्यात्मक एवं सौन्दर्यात्मक इलाज मिल सके। कटे तालू वाले बच्चों को सही तरीके से दूध पिलाना और डकार दिलाना वही सिखा सकता है। प्लास्टिक सर्जन के सिवा कोई भी बच्चे और उसके घर वालों का सही तरीके से मार्गदर्शन नहीं कर सकता। वह यह सुनिश्चित करता है माता–पिता घबराएँ नहीं और बच्चे का पालन–पोषण एक सामान्य बच्चे की तरह ही करें। क्लैफ्ट लिप या क्लैफ्ट पैलेट के बच्चों में कम उम्र में प्लास्टिक सर्जरी की जाती है। होंठ का ऑपरेशन दांत निकलने से पहले {लगभग 6 माह} और तालू का ऑपरेशन बच्चे के बोलने से पहले {लगभग 1 साल} हो जाना चाहिए। यदि बच्चा निश्चित उम्र के बाद आता है तो होंठ और तालू का ऑपरेशन एक ही चरण में किया जाता है। इस उम्र में बच्चों के शरीर के साथ–साथ चेहरे का विकास होता रहता है। यदि ऑपरेशन में देर हो जाए तो उपरी फेस एवं उपरी जबड़ा का विकास बाधित होता है और जबड़ा सिकुड़ जाता है। उपरी चेहरे का विकास प्रभावित होने से और नीचे के जबड़ा का विकास सामान्य होने से चेहरे में विकृति {फेसियल डीफारमेटी} उत्पन्न हो जाता है। साथ ही उपरी जबड़े में जगह की कमी हो जाने से दांत टेढ़े–मेढ़े हो जाते हैं जिसे बाद में इलाज से बहुत हद तक ठीक किया जा सकता है। कटे होंठ व तालू वाले बच्चों में निमोनिया की अधिक शिकायतें होती हैं। यदि होंठ और तालू कटे होने के कारण बच्चे की आवाज सही ढंग से नहीं निकल पाती हो तो उसे भी ऑपरेशन और स्पीच थेरैपी की मदद से पूरी तरह ठीक किया जा सकता है। तीसरा ऑपरेशन 7 से 11 वर्ष की आयु में मसूढ़ों का करना होता है। अगर जबड़ों व नाक आदि में विकृति हो तो चौथा ऑपरेशन 15 से 17 वर्ष की आयु में किया जाता है {चित्र 4 क, ख}। यदि ऑपरेशन के बाद भी थोड़ी बहुत विकृति रह गयी हो तो उसे फिर से ऑपरेशन कर ठीक किया जा सकता है। लिहाजा इसकी सम्पूर्ण चिकित्सा

चित्र 4: चपटी नाक ठीक करना–
क. ऑपरेशन से पहले, ख. ऑपरेशन के पश्चात।

एक विशेष क्रम में की जाती है जिसे एक प्लास्टिक सर्जन ही सुनियोजित ढंग से कर सकता है।

ऑपरेशन की तकनीक

होंठ का ऑपरेशन 3 परत में किया जाता है– म्युकोजा {होठ के अन्दर की लाल झिल्ली}, मांसपेशी और चमड़ी ।इन परतों को अलग–अलग सिला जाता है। मांसपेशी को बड़ी कुशलता के साथ छुड़ाया जाता है जिससे कि ऑपरेशन का परिणाम अच्छा हो। चमड़ी पर बहुत ही महीन टाँके लगाए जाते हैं जिससे कि ऑपरेशन का निशान न्यूनतम हो। चपटी नाक को भी काफी हद तक इसी चरण में ठीक कर दिया जाता है।

तालू का ऑपरेशन भी 3 परत में किया जाता है जिससे कि बच्चे की बोली अच्छी हो। इस ऑपरेशन को बड़े धैर्य और कुशलता के साथ करना नितांत आवश्यक है। बच्चे के बार–बार रोने से टांकों पर खिंचाव पड़ता है और मुंह में बन रहे थूक से कभी–कभी टाँके ढीले भी हो सकते हैं, जिसकी वजह से ऑपरेशन का घाव भरने में लम्बा वक्त लगता है। इस कारणवश टांकों को सावधानी से लगाया जाता है।

ऑपरेशन के बाद की देखभाल बहुत महत्वपूर्ण होती है। नियमानुसार पट्टी बदलना, बच्चे को सही तरीके से और छानकर दूध पिलाना और माँ को सावधान करना कि बच्चे को किसी भी तरह की चोट से बचाए, यह सब आवश्यक है।

चित्र 5: ऑपरेशन के बाद सकारात्मकता और आत्मविश्वास की झलक।

अंततः ऐसे मरीज ऑपरेशन के बाद न केवल सामान्य हो जाते हैं बल्कि जीवन के प्रति उनका रवैया अधिक सकारात्मक हो जाता है {चित्र 5}। उनमें भरपूर आत्मविश्वास और ऊर्जा का संचार होता है। प्लास्टिक सर्जन के कुशल मार्गदर्शन में ऐसे मरीजों का व्यथित जीवन फिर से संवर जाता है।

पौरूष ग्रन्थि {प्रोस्टेट} का बढ़ाव लक्षण एवं उपचार

प्रो. यू. एस. द्विवेदी

यूरोलॉजी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रोस्टेट ग्रन्थि सभी पुरूषों में मूत्राशय {यूरिनरी ब्लैडर} के मुख पर स्थित होती है। मूत्रवाहिनी {यूरेथ्रा} का प्रथम भाग ब्लैडर मुख से प्रारम्भ होकर प्रोस्टेट ग्रन्थि से होता हुआ आगे जाकर बाहर खुलता है।

प्रोस्टेट ग्रन्थि से निकलने वाले स्राव सेमाइनल वैसाईकिल से निकलने वाले स्राव के साथ मिलकर वीर्य में मिलते हैं व शुक्राणुओं को पोषण देते हैं व साथ–साथ वीर्य विसर्जन में भी सहायता करते है।

पुरूषों में प्रोस्टेट ग्रन्थि का उम्र के साथ बढ़ना एक सामान्य प्रक्रिया है। इसे बी.पी.एच. {बिनाइन हाइपर प्लेजिया ऑफ प्रोस्टेट} कहते हैं। इसमें प्रोस्टेट ग्रन्थि की कोशिकाएं व ऊतक बढ़ने लगते हैं जिसकी वजह से प्रोस्टेट ग्रन्थि का आकार बढ़ जाता है व यह प्रोस्टैटिक मूत्र नली पर दबाव डालने लगती है जिससे पेशाब करने में रुकावट व अन्य लक्षण आने लगते हैं जिन्हें लोवर यूरिनरी ट्रैक्ट सिम्पटम {एल.यू.टी.एस.} कहते हैं।

50 वर्ष की उम्र के बाद लगभग 25 प्रतिशत व 60 वर्ष की उम्र के बाद 30 से 50 प्रतिशत व उसके बाद लगभग 85 प्रतिशत पुरूष 90 वर्ष की अवस्था तक बी.पी. एच. से ग्रस्त हो जाते हैं। इस प्रकार 50 वर्ष से 90 वर्ष तक की आयु के पुरूषों को बी.पी.एच. की वजह से कभी भी पेशाब मे रुकावट सम्बन्धी परेशानी हो सकती है।

प्रोस्टेट ग्रन्थि में वृद्धि मुख्यतः टेस्टोस्ट्रोन हारमोन की क्रियाशील फार्म डाइहाइड्रो टेस्टोस्ट्रोन की वजह से होती है। प्रोस्टेट में उपस्थित स्ट्रोमा मांसपेशियों के दबाव से प्रोस्टेट टोन बनती है। प्रोस्टेट में 40 प्रतिशत मांसपेशियां, 50 प्रतिशत कोशिकायें व 10 प्रतिशत कनेक्टिव ऊतक होता है। बी.पी.एच. में प्रोस्टेट के टोन व आकार दोनों में वृद्धि हो जाती है, जिसमें यह पेशाब की नली को दबाकर मूत्र विसर्जन में रुकावट पैदा करने लगती है।

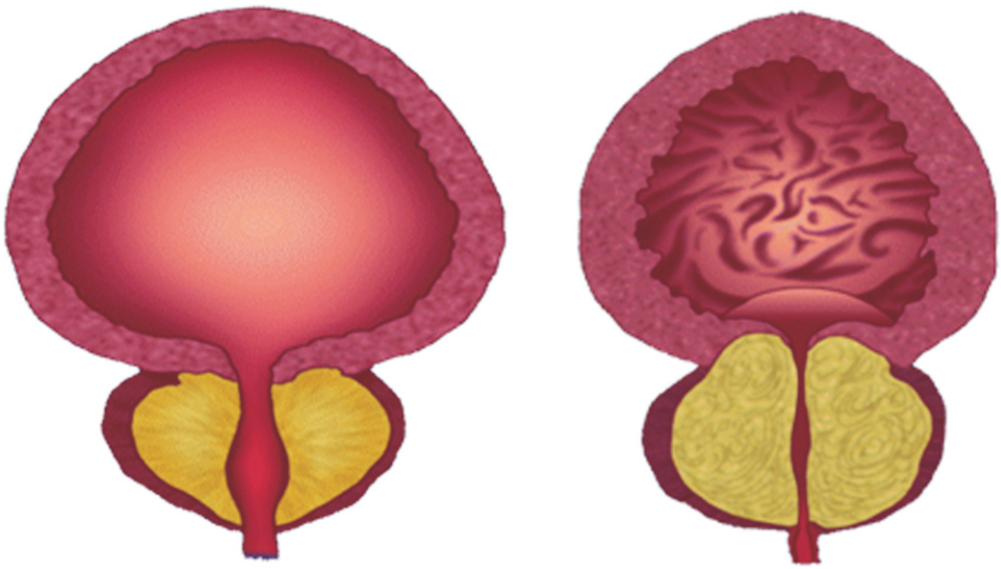

पौरूष ग्रंथि व मूत्र नली

बी.पी.एच. से सम्बन्धित लक्षण

प्रोस्टेटिक मूत्र नली पर बी.पी.एच. से होने वाले दबाव के कारण मूत्र का प्रवाह खुल कर नहीं हो पाता, जिससे विभिन्न प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं। इन लक्षणों को मूलतः दो भागों में बांटा जाता है –

1. संतापक लक्षण {इरेटेटिव सिम्पटम}
2. रूकावटी लक्षण {आब्सट्रक्टिव सिम्पटम}

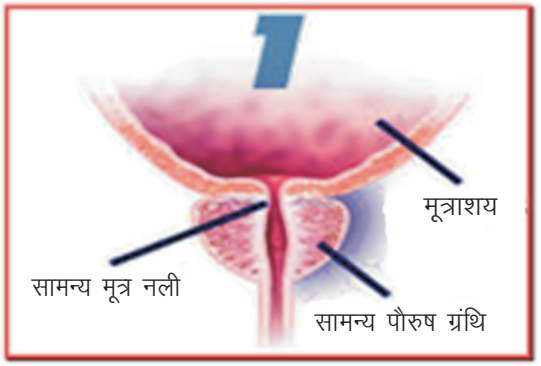

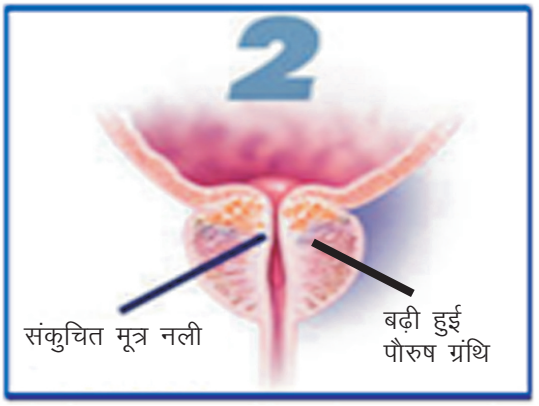

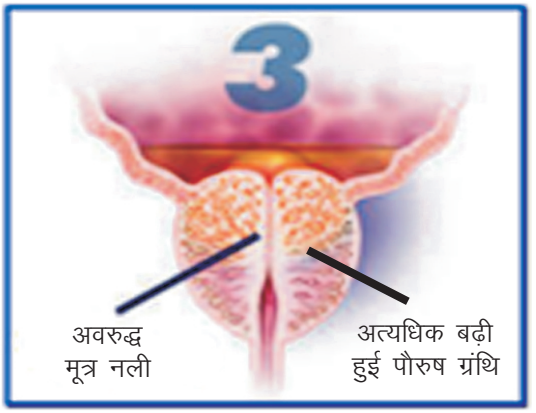

रूकावटी लक्षण

मूत्र विसर्जन के शुरूआत में समय लगना।

पतली धार आना।

पेशाब करने में जोर लगाना।

देर तक पेशाब करना।

पेशाब करने के बाद पेशाब थैली का पूरी तरह खाली न होना।

पेशाब का पूरी तरह रुक जाना।

संतापक लक्षण

पेशाब जाने की तुरन्त जरूरत महसूस होना।

रात में बार–बार पेशाब जाना।

मूत्र त्याग प्रारम्भ करने से पूर्व मूत्र की बूंदों का स्वंय निकल जाना।

{प्रोस्टेट वृद्धि रोग} वी.पी.एच. के असामान्य लेकिन गंभीर अवस्था के लक्षण

सोते समय मूत्र का स्वंय निकल जाना।

मूत्र त्याग के समय जलन होना/बुखार आना या दोनों का होना।

अत्यधिक प्यास लगना।

मूत्र में रक्त आना।

चेहरे, पैरों या पूरे शरीर पर सूजन आ जाना।

प्रोस्टेट वृद्धि रोग से शरीर पर होने वाले दुष्प्रभाव

पेशाब की थैली में काफी मात्रा में पेशाब का रह जाना इसे चिकित्सीय भाषा में रेसीड्यूल यूरिन कहते हैं।

पेशाब के थैली की मांसपेशियों का मोटा हो जाना।

पेशाब की थैली में डायर्विकुलम का बन जाना।

पेशाब के थैली में पथरी का बन जाना।

दोनों तरफ के गुर्दों में सूजन आ जाना इसे चिकित्सीय भाषा में हाइड्रोनेफ्रोसिस कहते हैं।

गुर्दे की कोशिकायें खराब होने से गुर्दों का सही तरीके से काम न करना।

पेशाब करने में जोर लगाने के कारण हार्निया का बढ़ जाना।

कभी भी पेशाब करने में जोर लगाने से बवासीर का रोग भी पनप सकता है।

प्रोस्टेट वृद्धि रोगी से मिलते–जुलते अन्य रोग

डायबिटीज रोगी मूत्र से शर्करा आने से बार–बार पेशाब जाते हैं।

पेशाब की थैली की मांसपेशियों का कमजोर हो जाना, जिसमें पेशाब धीरे–धीरे होता है व रूक भी सकता है।

पेशाब की थैली में पथरी होना, यह थैली में सूजन, संक्रमण व रुकावट पैदा करके पेशाब करने में रुकावट पैदा करती है।

मूत्रनली में रुकावट का रोग इसमें भी मूत्र विसर्जन में रुकावट होती है।

प्रोस्टेट ग्रन्थि के संक्रमण के कारण भी मूत्र विसर्जन सम्बन्धित शिकायतें आती है।

पेशाब की थैली का कैंसर, इसमें भी मूत्र विसर्जन में रक्त का जाना व मूत्र विसर्जन में रुकावट भी हो सकती है।

प्रोस्टेट कैंसर में भी मूत्र क्रिया में रुकावट का अहसास हो सकता है, पर यह कमर के पीछे हिस्से में दर्द के साथ भी हो सकता है। सामान्यतः प्रोस्टेट वृद्धि रोग के लिये प्रोस्टेट की अंगुली द्वारा जांच करने पर प्रोस्टेट कैंसर के लक्षणों का पता चलता है।

सांस व जुकाम इत्यादि की बीमारी में ली गयी कुछ दवाओं की वजह से भी पेशाब थैली सिकुड़ने में कठिनाई होने के कारण भी प्रोस्टेट वृद्धि रोग जैसे लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

गुर्दे व पेशाब की थैली में तपेदिक संक्रमण के होने से भी बी.पी.एच. जैसे लक्षण हो सकते हैं।

प्रोस्टेट वृद्धि रोग के मरीज का सम्पूर्ण परीक्षण

मरीज के लक्षणों का पूरा इतिहास जिसमें सभी बातें जैसे पेशाब में रक्त का जाना, पेशाब में संक्रमण, मधुमेह की बीमारी, पक्षाघात, फालिस अथवा पारकिन्सन की बीमारी, पूरी तरह से पेशाब का रुकना, पेशाब की नली के स्ट्रिक्चर की बीमारी या पेशाब की नली अथवा कोई अन्य आपरेशन का होना मुख्य रूप से पूछे जाते हैं।

मरीज के सांस, हृदय, उक्त रक्तचाप, तपेदिक इत्यादि रोगों के बारे में विस्तार से जानना भी अत्यन्त आवश्यक है।

प्रोस्टेट वृद्धि के रोगी का भौतिक चिकित्सीय परीक्षण

मरीज से आई.पी.एस.एस. स्कोर का चार्ट भरवाना उपरोक्त से चिकित्सक यह जानने का प्रयास करते हैं कि मरीज की रोग किस श्रेणी {हल्का, मध्यम, गम्भीर} में आ रहा है।

रोगी का सामान्य चिकित्सीय परीक्षण करना है।

रोगी के गुप्तांगों व मूत्र छिद्र की जांच। कभी–कभी रोगी को मूत्र छिद्र के सिकुड़ने में व लिंग की चमड़ी पीछे न जाने की वजह से भी पेशाब की रुकावट सम्बन्धी परेशानी हो सकती है।

गुदा द्वार द्वारा ऊंगली से प्रोस्टेट की जांच– इसमें चिकित्सक अपनी दस्ताने पहनी हुई ऊंगली के द्वारा गुदा द्वार से जांच करके गुदा द्वार सिकुड़ने की क्षमता, प्रोस्टेट के आकार, प्रोस्टेट में कोई कैंसर गांठ, संक्रमण या गुदा द्वार व रेक्टम के कैंसर के बारे में होने या न होने की जानकारी लेते हैं।

आई.पी.एस.एस. स्कोर

		कभी नहीं	5 मे से 1 बार	आधे से कम बार	करीब आधी बार	आधे से ज्यादा बार	करीब हर बार
1.	पिछले महीने में, कितनी बार आपको लगा कि पेशाब ठीक से नहीं हुआ है।	0	1	2	3	4	5
2.	पिछले महीने में, कितनी बार आपको पेशाब करने के दो घंटे के अंदर दोबारा पेशाब करना पड़ा।	0	1	2	3	4	5
3.	पिछले महीने में, एक बार पेशाब करते समय कितनी बार आपको पेशाब रूक–रूक करना पड़ा।	0	1	2	3	4	5
4.	पिछले महीने में, कितनी बार आपको मूत्र रोकने में दिक्कत महसूस हुई।	0	1	2	3	4	5
5.	पिछले महीने में, कितनी बार आपकी मूत्र की धार कमजोर हुई।	0	1	2	3	4	5
6.	पिछले महीने में, कितनी बार आपको पेशाब शुरू करने के लिए जोर लगाना पड़ा।	0	1	2	3	4	5
		कभी नहीं	**1 बार**	**2 बार**	**3 बार**	**4 बार**	**5 बार**
7.	पिछले महीने में, कितनी बार आपको रात को सोने के बाद और सुबह उठने से पहले पेशाब करना पड़ा। (1 रात में औसतन)	0	1	2	3	4	5

कुल आई.पी.एस.एस. स्कोर =

आई.पी.एस.एस. स्कोर के उपरांत चिकित्सक यह जानने का भी प्रयास करते हैं कि इन सभी लक्षणों के चलते आपके जीवन की कार्यशैली तथा उसकी गुणवत्ता पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इसके लिये वे आपको निम्न तालिका दिखाकर जानकारी लेंगे एवं इसको भी एक क्रमांक देकर स्कोर निश्चित करेंगे।

		बहुत खुश	खुश	औसतन संतुष्ट	संतुष्ट और असंतुष्ट करीब बराबर	ज्यादातर असंतुष्ट	दुखी	अत्यंत दुखी
1.	अगर आपको अपनी बाकी की पूरी जिन्दगी पेशाब इसी अवस्था में करनी पड़े तो आप कैसा महसूस करेंगे।	0	1	2	3	4	5	6

जीवन के गुणवत्ता के अंक =

प्रोस्टेट वृद्धि रोग के लिये आवश्यक जांचें

मूत्र की रासायनिक व माइक्रोस्कोपिक जांच।

आवश्यक होने पर मूत्र की कल्चर की जांच।

रक्त की जाँच

गुर्दों की क्रियान्वयन क्षमता {सीरम यूरिया व सीरम क्रिऐटिनीन} की जाँच।

मरीज के रक्त की मधुमेह की जांच।

अगर आवश्यकता हो तो रक्त की अन्य जांचें जैसे हीमोग्लोबिन, टी.एल.सी. व डी.एल.सी. इत्यादि जांचें।

पी.एस.ए. {प्रोस्टेट स्पेसीफिक एन्टिजन} की जाँच– यह वी.पी.एच. वृद्धि रोग में की जाने वाली आवश्यक व महत्वपूर्ण जांच है। इससे प्रोस्टेट ग्रन्थि के संक्रमण व कैंसर के बारे में जानकारी मिलती है। सामान्यतः यह 4.0 नैनो ग्राम/एम.एल. या उससे कम होता है पर प्रोस्टेट का आकार अधिक बड़ा होने पर 7.0 नैनो ग्राम/एम.एल. तक हो सकता है। इससे अधिक आने पर संक्रमण या कैंसर की सम्भावना बढ़ जाती है।

यूरोफ्लोमेट्री – इस जांच द्वारा रोगी के पेशाब की धार को मशीन द्वारा जांचा जाता है व उसके नतीजे से पेशाब की रुकावट के कारणों व तीव्रता दोनों का पता चलता है।

यूरोडायनामिक परीक्षण – यह उन मरीजों में की जाती है जिनमें पेशाब की थैली कमजोर होने या अत्यधिक कार्यशील {ओवर एक्टिव} होने या कोई अन्य न्यूरोलोजीकल {नसों सम्बन्धी} बीमारी की सम्भावना होती है।

अल्ट्रासाउण्ड गुर्दा मूत्राशय व प्रोस्टेट– इससे प्रोस्टेट आकार, मूत्र थैली, गुर्दो व रेजिडूयल यूरिन की जानकारी प्राप्त की जाती है। सामान्यतः सभी प्रोस्टेट वृद्धि रोगी के लिये यह आवश्यक है। इसमें उपरोक्त जानकारी के अलावा किसी अन्य बीमारी जैसे पथरी, हाइड्रोनेफोसिस, सी.के.डी. इत्यादि के बारे में भी जानकारी प्राप्त हो जाती है।

यूरोफ्लोमेट्री मशीन

प्रोस्टेट वृद्धि {बी.पी.एच.} की चिकित्सा

प्रोस्टेट वृद्धि रोग का निश्चित निदान के उपरान्त उसकी चिकित्सा प्रारम्भ की जाती है। मुख्यतः दो तरह के इलाज किये जाते हैं।

फार्मोलोजिकल {दवाओं द्वारा चिकित्सा}

सर्जरी के द्वारा चिकित्सा।

बी.पी.एच. की दवाओं द्वारा चिकित्सा

आम तौर पर सामान्य लक्षण वाले मरीजों की पहले दवाओं द्वारा चिकित्सा की जाती है। मूलतः यह दवाएं तीन प्रकार की होती है।

क. प्रोस्टेट की मांसपेशियों के अल्फा रिसेप्टर्स को ब्लाक करने वाली दवायें।

ख. टेस्टोस्ट्रोन को डाइ हाइड्रो टेस्टोस्ट्रोन में बदलने से रोकने वाली दवायें।

ग. कोम्बोथेरेपी।

क. अल्फा रिसेप्टर्स को ब्लाक करने वाली दवायें

1. प्राजोसीन, 2. टेरोजोसीन, 3. डाक्सोजोसिन, 4. अलफ्यूजोसीन, 5. टेमसुलोसिन, 6. सिलोडोसिन

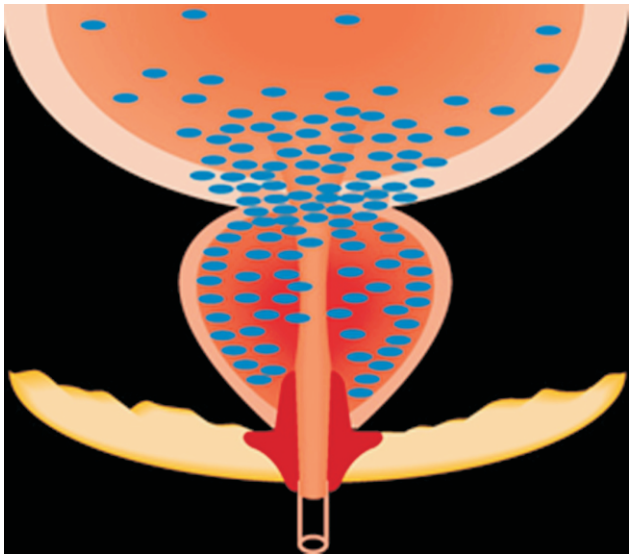

मूत्राशय व प्रोस्टेट में स्थित अल्फा रिसेपटर

ये दवायें प्रोस्टेट की मांसपेशियों का दबाव कम कर देती हैं जिससे प्रोस्टेट में तनाव कम हो जाता है और मूत्र का रास्ता ढ़ीला हो जाता है। इनमें से कुछ दवायें ब्लड प्रेशर भी कम कर देती हैं, जिससे बचने के लिये इन्हें सोते समय लेना चाहिये। टेमसोलोसिन व सिलोडोसिन के प्रोस्टेट अल्फा रिसेप्टर से अधिक स्लेक्टिव होने के कारण यह सम्भावना न के बराबर रहती है।

इन दवाओं की वजह से सम्भोग के उपरान्त वीर्य स्खलन से पूर्व की उत्तेजना व वीर्य स्खलन का अहसास सामान्य होता है, पर वह बाहर निकलने के स्थान पर पेशाब की थैली में चला जाता है परन्तु इसका शरीर पर कोई विपरीत असर नहीं पड़ता।

ख. टेस्टोस्ट्रोन को डी.एच.टी. में बदलने से रोकने वाली दवायें

{i} फिनेस्ट्राइड {ii} डूयाटास्ट्राइड

इनमें से डूयाटास्ट्राइड ज्यादा जल्दी व अधिक असरकारक होती है।

इन दवाओं का प्रतिकूल प्रभाव {5–10 प्रतिशत मरीजों में} जैसे सेक्स की इच्छा में कमी, लिंग में तनाव की कमी, स्तन में दर्द व स्तन का बढ़ना भी हो सकता है।

ग. कोम्बो थेरैपी

इसमें दोनों दवायें, अल्फा रिसेप्टर को बन्द करने वाली व डी.एच.टी. बनने से रोकने वाली एक साथ दी जाती हैं जिससे रोगियों के प्रोस्टेट का तनाव कम करने के साथ–साथ आकार को बढ़ने से रोका जाता है व तीन से छः हफ्ते के उपरान्त प्रोस्टेट का आकार घट कर छोटा भी हो जाता है।

बी.पी.एच. की शल्य चिकित्सा

यह लगभग 6–8 तरीकों से की जाती है परन्तु उसमें से 3 तरीकें मुख्य रूप से प्रचलित हैं।

1. टी.यू.आर.पी.।
2. लेजर द्वारा इलाज।
3. सामान्य शल्य चिकित्सा।

टी.यू.आर.पी.

इस विधि से पेशाब की नली के रास्ते दूरबीन डालकर बढ़ी हुई प्रोस्टेट ग्रन्थि को छोटे–छोटे टुकड़ों में निकाल लिया जाता है।

सर्वप्रथम एक दूरबीन {इन्डोस्कोप} मूत्रवाहिनी से होकर पेशाब की थैली में डालते हैं। लैंस और कैमरे की सहायता से बढ़ी हुई प्रोस्टेट ग्रंथि वीडियो पर देखी जाती है। ग्रंथि का बढ़ा हुआ भाग विद्युतजनित उपकरण से छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है व उसे एलिक इवेक्यूटेर से दबाकर निकाल लिया जाता है।

उसके उपरान्त मूत्रवाहिनी में रबर की नली–कैथेटर तीन–चार दिनों तक डाली जाती है जिससे शल्यक्रिया द्वारा काटा हुआ घाव भर सके। चूंकि ये शल्यक्रिया दूरबीन द्वारा मूत्रवाहिनी से होते हुए की जाती है। अतः आपको बाहर से कोई घाव नहीं दिखाई पड़ता।

टी.यू.आर.पी. के बाद मरीज को होने वाली परेशानियाँ

रिट्रोगेड इजेकुलेशन अर्थात सम्भोग के उपरान्त वीर्य बाहर न आकर मूत्राशय के अन्दर चला जाता है पर इससे कोई शारीरिक हानि नहीं होती।

कभी–कभी प्रोस्टेट ग्रंथि निकलने के बाद पेशाब को रोकने की क्षमता कम हो जाती है, जो सामान्यतः एक से तीन महीनों में ठीक हो जाती है।

टी.यू.आर.पी. की एक नई विधि में बाइपोलर विद्युत तरंगों का प्रयोग करते हैं जिसमें बड़ी प्रोस्टेट ग्रंथि भी दूरबीन विधि द्वारा सुगमता पूर्वक निकाल ली जाती है व टी.यू.आर. सिन्ड्रोम का खतरा नहीं होता है।

लेजर द्वारा इलाज

प्रोस्टेट ग्रंथि की शल्य चिकित्सा में मुख्यतः होलमियम, के.टी.पी. {ग्रीन लाइट लेजर}, डायोड व थूलियम लेजर प्रयोग में लाए जाते हैं। इसमें से अभी होलमियम व के.टी.पी. लेजर अधिक प्रयोग में है।

होलमियम लेजर से प्रोस्टेट ग्रंथि को उसके कैपसूल से काट कर अलग कर लिया जाता है व फिर मोरसिलेटर की सहायता से उसे छोट–छोटे टुकड़ों में कर के मूत्रवाहिनी से बाहर निकाल लिया जाता है।

के.टी.पी. लेजर द्वारा प्रोस्टेट ग्रंथि का फोटो वाष्पीकरण कर दिया जाता है। इसमें बिल्कुल रक्त स्राव नहीं होता व इससे उन मरीजों का आपरेशन भी किया जाता है जो रक्त को पतला करने की दवायें ले रहे हैं। इस विधि के उपरान्त रिट्रोग्रेड एजेकुलेशन की सम्भावना भी टी.यू.आर. पी. से काफी कम रहती है।

लेजर विधि के आपरेशन के उपरान्त यूरेनरी फ्लोरेट व आई.पी.पी.एस. स्कोर में सुधार टी.यू. आर.पी. जैसा या उससे भी अच्छा रहता है।

लेजर विधि से मरीजों की रिकवरी टी.यू.आर.पी. के मरीजों की अपेक्षा जल्दी होती है।

सामान्य शल्य चिकित्सा द्वारा प्रोस्टेट का आपरेशन

कुछ मरीजों में अत्यधिक बड़ी प्रोस्टेट होने के कारण या पेशाब की थैली का डायावारटीकुलम पेशाब की थैली में बड़ी व कठोर पथरी या पेशाब की नली में रुकावट व जोड़ों की जकड़न की वजह से आपरेशन टेबल पर उपयुक्त अवस्था में लिटाना संभव न हो तो ऐसे मरीजों के पेट के निचले हिस्से में चीरा लगाकर प्रोस्टेट ग्रंथि का आपरेशन किया जाता है।

इस आपरेशन में थोड़ा अधिक रक्त स्राव होता है। रोगी को अस्पताल में थोड़ा ज्यादा समय तक रहना पड़ता है व कभी–कभी पेशाब निरन्तर टपकने का खतरा बना रहता है। ऐसे मरीज लगभग 5–10 प्रतिशत होते हैं।

बेहोशी का अत्यधिक खतरा

कुछ मरीजों में हृदय व फेफड़ो की बीमारी की वजह से बेहोश करने में या कमर से सुन्न करने में अत्यधिक खतरे की आशंका रहती है या कुछ मरीजों में मस्तिष्क या रीढ़ की बीमारी होने के कारण अपने आप मूत्र निकल जाता है या शरीर में खून का थक्का बनने की क्षमता क्षीण होती है, ऐसे मरीजों की समस्या का समाधान निम्नलिखित तरीकों से किया जाता है।

सी.आई.सी.

इस विधि में मरीज या उसका कोई रिश्तेदार पेशाब के रास्ते में नली डालकर दिन में लगभग हर 4–6 घण्टे में पेशाब की थैली को खाली कर देता है।

प्रोस्टेटिक स्टैन्ट

इस विधि में मरीज की मूत्रवाहिनी सुन्न करके उसके प्रोस्टेट के रास्ते में स्टैन्ट डाल देते हैं, जिससे उसकी रुकावट दूर हो जाती है पर यह स्टैन्ट तीन से छः महीने में बदलवाना पड़ता है व परमानेन्ट स्टैन्ट अत्यधिक महंगें होते हैं व कुछ अन्य विकार भी उत्पन्न कर सकते हैं।

स्थायी कैथेटर पेशाब के रास्ते या पेट से

इस विधि में मरीज के पेशाब के रास्ते से या पेट से पेशाब की थैली में नली लगा देते हैं, जिससे पेशाब लगातार एक थैली में इकट्ठा होती रहती है जिसे वे समय–समय पर खाली करते रहते हैं। सामान्य प्रकार के कैथेटर को एक महीने में व सिलिकोन कैथेटर को दो महीने में बदलवाना होता है।

पित्ताशय की थैली का कैंसर

रूही दीक्षित एवं विजय कुमार शुक्ला

जनरल सर्जरी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

पित्ताशय की थैली का कैंसर पैत्तिक प्रणाली का सबसे आम घातक घाव और पाचन तंत्र का पांचवा सबसे ज्यादा पाया जाने वाला कैंसर है। पित्ताशय की थैली का कैंसर भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में बहुत ही आम बीमारी है। पित्ताशय की थैली का कैंसर पुरूषों की तुलना में महिलाओं में आम है। हर 10 मामलों में से 7 महिलाओं में होता है।

पित्ताशय की थैली के बारे में

पित्ताशय की थैली शरीर में एक छोटा सा, खोखला, नाशपाती के आकर का पाउच है। यह पेट के उपरी हिस्से में, लीवर के दाईं ओर नीचे स्थित होता है।

जोखिम कारक

कुछ रोग इसके जोखिम कारक हैं, जिससे बीमारी के होने का खतरा बढ़ जाता है। लेकिन आप भी अगर एक या अधिक जोखिम वाले कारकों से ग्रसित हैं तो मतलब यह नहीं है कि आपको निश्चित रूप से रोग हो जायेगा।

1. **उम्र**– पित्ताशय की थैली का कैंसर युवा लोगों की तुलना में अधिक उम्र के लोगों में आम है।
2. **पित्ताशय की पथरी और सूजन**– पित्ताशय की पथरी और सूजन होने, पित्ताशय की थैली के कैंसर के लिए सबसे आम जोखिम कारक है। पित्ताशय के पत्थर बहुधा काले भूरे रंग के होते हैं और ये 5 से लेकर 60 मिलिमीटर तक के होते हैं। अधिकतर पथरियां बहुत छोटी सी होती हैं पर कुछ रोगियों में एक बड़ा सा पत्थर होता है।
3. **पारिवारिक इतिहास**– अध्ययनों से यह पाया गया है कि यदि परिवार के सदस्य या रिश्तेदार {प्रथम डिग्री रिश्तेदार} का कैंसर हो तो पित्ताशय की थैली के कैंसर के विकसित होने की संभावना पांच गुना बढ़ जाती है।
4. **पोर्सिलेन पित्ताशय की थैली**– पोर्सिलेन पित्ताशय की थैली का मतलब है कि पित्ताशय की थैली के अंदर दीवार पर बना कैल्शियम जमा होना। यह स्थिति एक जोखिम कारक है, लेकिन पित्ताशय की थैली के कैंसर इस तरह के पित्ताशय के रोगों में अभी भी बहुत दुर्लभ है।
5. **पी.एस.सी.**– पी.एस.सी. पित्त नलिकाओं की सूजन का एक प्रकार है। इस हालत के लोगों में पित्ताशय की थैली में कैंसर के विकसित होने की संभावना है।
6. **धूम्रपान और रसायन**– सिगरेट और कुछ रासायनिक उद्योगों में nitrosamines का प्रयोग होता है। ये रसायन डीएनए को नुकसान और कैंसर के विकसित होने के खतरे को बढ़ा देते हैं।
7. **पित्ताशय तंतु**– ये कैंसर नहीं होते हैं। ये पित्ताशय की थैली की तरह ही लाइनिंग पर विकसित होते हैं, लेकिन लंबी अवधि में ये कैंसर में विकसित हो सकते हैं। इसका आकार जितना अधिक बड़ा होगा उतना ही कैंसर होने की संभावना बढ़ जाएगी। अगर पॉलिप 1 सेंटीमीटर {10 मिमी} से बड़ा है, तो इसे ऑपरेशन से अपना पित्ताशय निकलवा देना चाहिए।
8. **मोटापा**– बहुत अधिक वजन होने के कारण पित्ताशय के कैंसर का खतरा हो सकता है।
9. **आहार**– आहार में कार्बोहाइड्रेट की अधिकता से और फाइबर की कमी से पित्ताशय के कैंसर का खतरा बढ़ सकता है।

10. **जातीयता**– पित्ताशय के कैंसर के विकसित होने का खतरा दुनिया के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के लिए, और विभिन्न जातीय समूहों के लिए बहुत अलग है। उदाहरण के लिए, दुनिया में उत्तर भारत में, पित्ताशय के कैंसर की दर उच्चतम है।

11. **संक्रमण**– साल्मोनेला संक्रमण उन लोगों में पित्ताशय के कैंसर के खतरे को बढ़ा सकता है जो पथरी की शिकायत रखते हैं। चिली और उत्तर भारत में इस बात के पुख्ता सबूत हैं। कुछ छोटे अध्ययन भी यह बताते हैं कि हेलिकोबेक्टर बैक्टीरिया भी पित्ताशय के कैंसर होने के जिम्मेदार हैं।

12. **स्त्री हार्मोन**–जिन महिलाओं का हार्मोन एस्ट्रोजन अधिक होता है, उनमें पित्ताशय के कैंसर का खतरा बढ़ सकता है। उदाहरण के लिए 5 या इससे अधिक गर्भधारण करने वाली महिलाओं में से एक महिला को इस रोग से ग्रसित होने का खतरा बढ़ जाता है। जन्म नियंत्रण की गोली के सेवन से भी पित्ताशय के कैंसर का खतरा बढ़ने के सबूत हैं। इन सब जोखिम कारकों के बावजूद निश्चित रूप से इसके कारक को इंगित करना मुश्किल है।

पित्ताशय की थैली के कैंसर के लक्षण

पित्ताशय के कैंसर आमतौर पर अपनी प्रारम्भिक अवस्था में लक्षण पैदा नहीं करते हैं। पित्ताशय के कैंसर के कई लक्षण मिल सकते हैं। इनमें से अधिकांश बीमारी के बाद के चरणों में होते हैं। परन्तु ये लक्षण दूसरी बीमारी के भी हो सकते हैं। पित्ताशय की थैली के कैंसर का सबसे आम लक्षण निम्न प्रकार के होते हैं:

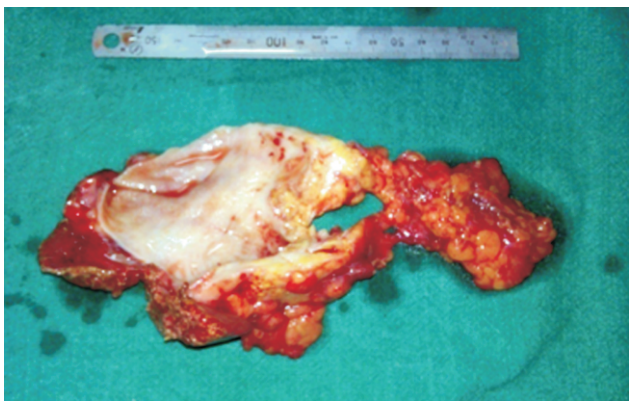

पित्ताशय का कैंसर

1. **पेट दर्द**– पेट के दाहिने ओर एक दर्द महसूस हो सकता है। यदि कैंसर या पथरी से पित्त नली ब्लॉक हो, तो बहुत तेज दर्द होता है।

2. **बीमार सा महसूस होना**– पित्ताशय कैंसर का पता चलने पर आधे से अधिक लोगों को अपनी बीमारी के कुछ स्तर पर अक्सर बीमार पाया जाता है।

3. **पीलिया**– पीलिया का मतलब है कि या तो लीवर ठीक से काम नहीं कर रहा है या आपके पित्त प्रणाली में रुकावट है। इन्हें निम्न तरीकों से पहचान सकते हैं:

   क. आँखों की सफेद त्वचा का पीला होना।
   ख. कुछ लोगों में गम्भीर खुजली।
   ग. पीला मूत्र
   घ. पीला रंग का मल {मल त्याग}

4. भूख न लगना।
5. वजन में कमी होना
6. पेट में सूजन
7. उल्टी
8. अपच
9. पेट का फूलना।

पित्ताशय की थैली के कैंसर का निदान

पित्ताशय की थैली के कैंसर के लिए परीक्षण:

1. **अल्ट्रासाउंड स्कैन**– अल्ट्रासाउंड स्कैन शरीर के अंदर की एक तस्वीर बनाने के लिए ध्वनि तरंगों का उपयोग करता है, जिससे पित्ताशय के कैंसर का पता चल सकता है। यह पूरी तरह से दर्द रहित होता है। यह स्कैन आमतौर पर अस्पताल के एक्स–रे विभाग में किया जाता है।

2. **सीटी स्कैन**– सीटी एक कम्प्यूटरीकृत स्कैन है जिसमें एक्स–रे का उपयोग होता है। पित्ताशय की थैली के सीटी स्कैन ये बताते हैं कि पित्ताशय की थैली के अन्दर वृद्धि हो रही है या पित्ताशय की थैली के बाहर भी वृद्धि हो रही है। सीटी स्कैन ये बताने में भी सहायक होते हैं कि पित्त नली, लिम्फ नोड्स या लीवर में कैंसर फैला है या नहीं?

3. **ई.आर.सी.पी.**– ई.आर.सी.पी. का मतलब है Endoscopic Retrograde Cholangio-pancreatography. कुछ रोगियों में इसकी आवश्यकता पड़ती है। इस परीक्षण को लीवर, पित्त नलिकाएं, अग्न्याशय और पित्ताशय की स्थिति का पता लगाने के लिए प्रयोग किया जाता है।

4. **एम.आर.आई. स्कैन**– एम.आर.आई. का मतलब होता है Magnetic Resonance Imaging. इस प्रकार का स्कैन शरीर के अंदर की एक तस्वीर बनाने के लिए चुम्बकत्व का उपयोग करता है। एम.आर.सी.पी. का मतलब होता है magnetic resonance cholangiopancreatography. यह एम.आर.आई. स्कैन का एक प्रकार है। यह आपके

अग्न्याशय, पित्ताशय की थैली और पित्त नलिकाओं का विस्तृत चित्र देने के लिए रेडियो संकेतों का उपयोग करता है।

5. **बॉयोप्सी और Fine Needle Aspiration (FNA)** – बायोप्सी का मतलब ऊतक का एक नमूना निकालने और माइक्रोस्कोप में देखने से होता है। यह बताने के लिए केवल निश्चित तरीका है कि ये वृद्धि एक कैंसर है या नहीं? परन्तु यदि डॉक्टर को दूसरी जांच से पता चल गया है कि आपको कैंसर है, तो उस समय इस जांच को करने की आवश्यकता नहीं हो सकती है। यदि आपको पित्ताशय की थैली में सूजन या पथरी है, तो आपको बायोप्सी की जरूरत नहीं है, क्योंकि उस अवस्था में आपकी पित्त की थैली वैसे भी निकाल दी जाएगी। इन सभी स्थितियों में, आपके सर्जन ऑपरेशन के समय निकले पित्ताशय की थैली के ऊतकों को माइक्रोस्कोपी जांच के लिए भेजते हैं।

पित्ताशय की थैली के कैंसर के लिए और परीक्षण

यदि आपके परीक्षण यह दिखाते हैं कि आपको पित्ताशय का कैंसर है तो आपको कैंसर का फैलाव जानने के लिए अन्य परीक्षण की जरूरत हो सकती है। इन परीक्षणों की जरूरत डॉक्टर को उपचार के बारे में फैसला करने के लिए पड़ती है। पित्ताशय के कैंसर के प्रसार के लिए सबसे आम क्षेत्र लीवर है, क्योंकि यह पित्ताशय की थैली के करीब होता है। 10 में से 8 लोगों में कैंसर लीवर तक फैल जाता है। यह लिम्फ नोड्स में भी फैल सकता है।

1. **इंडोस्कोपिक अल्ट्रासाउंड**– एक इंडोस्कोपिक अल्ट्रासाउंड एक इंडोस्कोप और एक अल्ट्रासाउंड स्कैनर का उपयोग करता है। यह काफी कुछ एक एंडोस्कोपी का ही रूप है। परन्तु इसमें एक अल्ट्रासाउंड प्रोब एण्डोस्कोप में जुड़ा होता है। यह परीक्षण कैंसर की अवस्था पता करने में मदद करता है। पित्ताशय की थैली का कैंसर पित्ताशय की दीवार में है या लीवर में फैल गया है, ये भी दिखाने में यह परीक्षण मदद करता है। यह सर्जरी के लिए योजना बनाने में मदद करता है।

2. **पित्तवाहिनीचित्रण**– पित्तवाहिनीचित्रण का मतलब होता है डाई और एक्स–रे के साथ पित्त नलिकाओं को देखना। पित्त नली के अंदर डाई {विपरीत माध्यम} एक्स–रे पर अधिक स्पष्ट चित्र दिखाने के लिए मदद करता है। एंडोस्कोपी करते समय ही यह किया जाता है। डाई एक्स–रे पर एक बहुत स्पष्ट तस्वीर दिखती है। पित्ताशय की थैली में एक ट्यूमर है या पित्त नली अवरूद्ध है यह देखने में सहायक होता है। अगर ऐसा है तो एक स्टेंट नामक एक छोटी ट्यूब इसमें डाल दिया जाता है जिससे पीलिया के लक्षणों से राहत मिल जाती है।

3. **लैप्रोस्कोपी**– लैप्रोस्कोपी एक छोटा सा ऑपरेशन है। लैप्रोस्कोप एक कैमरा के साथ एक ट्यूब और प्रकाश का मिश्रण है। लैप्रोस्कोपी से पित्ताशय की थैली को सीधे देखने में मदद मिलती है। लैप्रोस्कोपी सर्जरी या अन्य उपचार की योजना बनाने में मदद कर सकते हैं। एक लैप्रोस्कोपी के दौरान, ऊतक के छोटे टुकड़े {बायोप्सी} निकालकर कैंसर की कोशिकाओं के जांच के लिए भेजा जाता है।

पित्ताशय की थैली के कैंसर का इलाज

कैंसर स्टेजिंग – कैंसर स्टेज यह बताती है कि कैंसर कितनी दूर तक फैला है। यह स्टेज अक्सर इलाज का निर्णय लेने में मदद करती है। कैंसर स्टेजिंग के विभिन्न तरीके हैं। दो मुख्य तरीके हैं:

1. TNM प्रणाली
2. संख्या प्रणालियाँ

1. **टी.एन.एम. प्रणाली**– पित्ताशय की थैली के कैंसर का टीएनएम चरणों– टीएनएम का मतलब होता है– ट्यूमर (T), नोड (N) और मेटास्टेसिस (M)

   पित्ताशय की थैली का ट्यूमर के आकार और प्रसार –टी– ट्यूमर के आकार को 5 स्तरों में बांटते हैं – T1-T4 और बहुत ही प्रारंभिक चरण को Tis कहते हैं या carcinoma *in situ*

   कैंसर की कोशिकाएँ लिम्फ नोड्स में फैली है या नहीं – NO, N1 and N2

   कैंसर शरीर के विभिन्न हिस्से (M) में फैला है या नहीं – M0 and M1

2. **संख्या प्रणालियाँ**

   1. स्टेज 0 या carcinoma *in situ*
   2. स्टेज 1
   3. स्टेज 2
   4. स्टेज 3
   5. स्टेज 4

पित्ताशय की थैली के कैंसर के लिए इलाज के प्रकार

1. शल्य चिकित्सा – पित्ताशय की थैली के कैंसर के निदान के बाद इस कैंसर को दूर करने के लिए यह संभावना देखी जाती है कि पित्त की थैली बाहर निकाली जा सकती है या नहीं? पित्ताशय की थैली के कैंसर के लिए कई प्रकार के ऑपरेशन किये जाते हैं। परन्तु कौन सा ऑपरेशन होना है यह इस पर निर्भर करता है कि कैंसर कहाँ है और दूसरे ऊतकों में फैला {जैसे की लीवर} है या नहीं। ऑपरेशन के निम्न प्रकार हैं:

पित्ताशय की थैली का हटाया जाना {सरल cholecystectomy}– इस विधि में पूरे पित्ताशय को निकाल दिया जाता है।

पित्ताशय की थैली, लिम्फ नोड्स और लीवर के हिस्से को हटाना {विस्तारित cholecystectomy}– इस विधि में पूरा पित्ताशय, लगभग 1 इंच तक लीवर जो कि पित्ताशय के पास है और सभी आसपास के लिम्फ नोड्स निकाल दिये जाते हैं।

पित्ताशय की थैली एवं आसपास के ऊतकों को हटाना– इस ऑपरेशन में पित्त की थैली, लीवर का कुछ हिस्सा, कॉमन बाईल डक्ट, वह भाग जो लीवर और आंतों से जोड़ता है, लीवर, पेट, आंतों और अग्न्याशय के आसपास के अंगों के लिम्फ नोड्स निकाले जाते हैं।

कैंसर से प्रभावित आसपास के अंगों को हटाने के लिए शल्य चिकित्सा– इस प्रक्रिया में अग्न्याशय {पाचनतन्त्र}, अपने लीवर का बड़ा हिस्सा और

अंगों के किसी भी अन्य भागों जिनमें कैंसर कोशिकाएं हों {उदाहरण के लिए पेट या आंत का हिस्सा} उसे निकाल देते हैं।

2. कीमोथेरैपी– कीमोथेरैपी में कैंसर की कोशिकाओं को नष्ट करने के लिए एंटी कैंसर या साइटोटोक्सिक ड्रग्स का उपयोग होता है। ड्रग्स कैंसर कोशिकाओं के विकास में बाधा पहुँचाने का काम करते हैं। यदि एडवांस पित्ताशय की थैली का कैंसर है, तो कैंसर को कीमोथेरैपी की सहायता से छोटा कर बीमार के लक्षणों को कम किया जाता है। Gemcitabine और cisplatin का संयोजन अक्सर एडवांस्ड पित्ताशय की थैली के कैंसर के लिए प्रयोग किया जाता है। oxaliplatin का प्रयोग cisplatin की जगह भी किया जा सकता है। कुछ अध्ययनों से पता चला है कि लोकली एडवांस पित्ताशय के कैंसर को सर्जरी या रेडियोथेरैपी के साथ संयोजन में कीमोथेरैपी देने से संक्षिप्त अवधि के लिए रोग का नियंत्रण होता है।

कीमोथेरैपी के साइड इफेक्ट

ड्रग्स अलग–अलग तरीकों से लोगों को प्रभावित करती है। यह जरूरी नहीं कि हर किसी को एक ही दवा से एक ही जैसा दुष्प्रभाव हो। इन दुष्प्रभावों में कुछ निम्नलिखित हैं:

रक्त कोशिकाओं की संख्या में गिरावट
बीमार महसूस करना।
अतिसार
मुँह और मुँह में छाले होना
बालों का झड़ना या पतला होना
थका हुआ महसूस करना।

3. रेडियोथेरैपी– रेडियोथेरैपी कैंसर कोशिकाओं को मारने के लिए उच्च उर्जा किरणों का उपयोग करता है। ये एक्स–रे की तरह होती हैं तथा सामान्य शरीर के ऊतकों को नुकसान पहुंचाये बिना कैंसर की कोशिकाओं को मार देती है। रेडियोथेरैपी होते समय कुछ महसूस नहीं होता है लेकिन कुछ ही हफ्तों के बाद आमतौर पर कुछ दुष्प्रभाव होते हैं। लगभग 10 में से 4 कैंसर से पीड़ित लोगों को इलाज के रूप में रेडियोथेरैपी दी जाती है। यह विभिन्न तरीकों से दिया जा सकता है:

1. शरीर के बाहर से बाहरी रेडियोथेरैपी, एक्स–रे का उपयोग कर कोबाल्ट विकिरण, इलेक्ट्रॉन, और अन्य कणों के रूप में जैसे कि प्रोटॉन के रूप में।
2. आंतरिक रेडियोथेरैपी के रूप में शरीर के भीतर से।

पित्ताशय की थैली के कैंसर के साथ रहना

पित्ताशय की थैली के कैंसर के निदान के बाद व्यावहारिक और भावनात्मक रूप से रोग का मुकाबला करना बहुत मुश्किल हो सकता है। पित्ताशय की थैली के कैंसर और इसके उपचार से रोगी के शरीर में शारीरिक परिवर्तन होते हैं। इस तरह के बदलाव रोगी के आत्मसम्मान और अन्य लोगों को, विशेष रूप से परिवार और करीबी दोस्तों को प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही एडवांस पित्ताशय के कैंसर का रोगी बहुत थका हुआ और सुस्त महसूस करने लगता है। पित्ताशय की थैली के कैंसर रोगी को भोजन पचाने में दिक्कत कर देते हैं।

जीवित रहने के आँकड़े स्टेज के अनुसार

स्टेज	5 साल के जीवित रहने की दर
0	80%
I	50%
II	28%
IIIA	8%
IIIB	7%
IV	4%
IVB	2%

निष्कर्ष

अंत में, पित्ताशय की थैली के कैंसर का अपने अस्पष्ट लक्षणों के कारण जल्दी निदान {पता चलने} करना मुश्किल है। इस रोग का जल्दी पता लगाने और जीवन में सुधार लाने के लिए स्वास्थ्य अध्ययन हो रहे हैं।

कमरदर्द

डॉ. एस. के. सर्राफ

आर्थोपेडिक्स विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भारत में पीठ दर्द और गर्दन के दर्द से पीड़ित मरीजों की संख्या में बड़ी तीव्र गति से वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण जीवन शैली में परिवर्तन, शहरीकरण और जनसंख्या वृद्धि है। कमर दर्द आज आम स्वास्थ्य समस्या बनती जा रही है। बढ़ती उम्र के लोगों को ही नहीं, युवाओं को भी यह दर्द बहुत सता रहा है। 90 प्रतिशत लोग अपने जीवन की किसी न किसी अवस्था में कमर दर्द से पीड़ित रहते हैं। आजकल यह देखने में आ रहा है कि 30 से 35 वर्ष की उम्र में आते ही लोग कमर दर्द की शिकायत करने लगते हैं। लगभग 80 प्रतिशत लोग अपने जीवन में कभी न कभी कमर दर्द से परेशान होते हैं। कमर दर्द नया भी हो सकता है और पुराना रोग भी हो सकता है। नया रोग कमर की मांसपेशियों का असंतुलित उपयोग करने से उत्पन्न होता है। रोग पुराना होने पर वक्त बेवक्त कमर दर्द होता रहता है और उसके कारण का पता नहीं चलता है। सतही तौर पर देखने पर कमर में होने वाला दर्द भले ही एक सामान्य सी स्थिति लगता है, लेकिन इसे नजरअंदाज करने से समस्या काफी बढ़ सकती है। 'कमरदर्द' इतना आम माना जाता है कि हम इस पर खास ध्यान नहीं देते। कमरदर्द हो रहा हो तो हम आम तौर पर स्वयं को यह कहकर आश्वस्त करने की कोशिश करते हैं कि शायद गलत वजन उठा लिया होगा या शायद गद्दा या बिस्तर ठीक नहीं है या हम गलत मुद्रा में बैठकर टीवी देखे थे। औरतों के कमरदर्द को तो हम किसी गिनती में ही नहीं लाते। आज की व्यस्त और भागमभाग भरी जिंदगी में पीठ या कमर दर्द का अहसास सभी को होता है। जहां कुछ को यह दर्द कभी–कभी सताता है, वहीं कुछ इससे स्थायी रूप से परेशान रहते हैं, तो कुछ स्लिप डिस्क का शिकार होकर बिस्तर पकड़ लेते हैं। आखिर क्यों होता है यह दर्द? और क्या है इसका उपचार? क्या इससे बचा जा सकता है?

वैसे तो पीठ या कमर दर्द किसी भी उम्र के व्यक्ति को हो सकता है, लेकिन 30 से 50 वर्ष की आयुवर्ग के लोग इसकी चपेट में अधिक आते हैं। वे महिला और पुरूष इसके अधिक शिकार होते हैं, जिन्हें अपने काम की वजह से बार–बार उठना, बैठना, झुकना या सामान उतारना, रखना होता है। कमरदर्द केवल कमर की हड्डी या नस में किसी बीमारी के कारण हो रहा हो यह जरूरी नहीं। कमरदर्द के कई कारण हो सकते हैं। डिस्क खिसक जाना, स्पांडिलाइटिस, कमर की हड्डी की चोट, कमर की हड्डी के पैदाइशी डिफेक्ट, उम्र के साथ इन हड्डियों का कमजोर हो जाना {ऑस्टोपोरसिस}, वहां कोई इन्फेक्शन हो जाना आदि बहुत से कारण हैं। शरीर में कहीं कैंसर भी दर्द पैदा कर सकता है। प्रॉस्टेट, स्तन, फेफड़ों, आंतों आदि के कैंसर कभी–कभी पहली बार तब पता चलते हैं, जब वे फैलकर इन हड्डियों में फैल जाते हैं। कैल्शियम मेटाबॉलिज्म की गड़बड़ी भी हड्डियों को कमजोर करके कमरदर्द उत्पन्न कर सकती है। यदि समय पर उपचार न मिले तो शारीरिक विकृति, पक्षाघात की स्थिति बन सकती है। यह आपको जीवन भर के लिए विकलांग तक बना सकता है।

कमर दर्द के कारण

कमर दर्द सिर्फ रीढ़ की हड्डी या कमर की मांसपेशियों की समस्या के कारण नहीं होता। यह कई गंभीर बीमारियों का संकेत भी हो सकता है। इनमें किडनी से संबंधित बीमारियां या संक्रमण, ब्लेडर में संक्रमण, स्पाइनल ट्यूमर, रीढ़ की हड्डी में संक्रमण आदि प्रमुख होता है।

आजकल युवाओं में विशेष तौर पर कमर दर्द की शिकायत आम बात हो गई है, जिसका मुख्य कारण अनियमित दिनचर्या है। अचानक झुकने, वजन उठाने, झटका लगने, गलत तरीके से उठने–बैठने और सोने,

व्यायाम न करने, पेट बढ़ने से कमर दर्द हो सकता है। इसके अलावा छात्रों के भारी बस्ते, ऊँची एड़ी, उबड़–खाबड़ रास्तों में ड्राइविंग से भी रीढ़ की डिस्क प्रभावित हो सकती है। वहीं साइटिका की वजह से भी पीठ दर्द शुरू होता है। यदि डिस्क कुछ खिसक जाए, तो कमर अथवा पीठ के निचले हिस्से में तीव्र पीड़ा होने लगती है। हमारी रीढ़ की हड्डी में डिस्क होती है जो शाक एब्जार्वर का काम करती है। इस डिस्क के घिस जाने से यह उभरकर बाहर निकल आती है। इसके बाद यह रीढ़ की हड्डी से पैरों तक जाने वाली नसों पर दबाव डालती है। इससे कमर के निचले हिस्से में भयंकर दर्द होता है। किसी व्यक्ति को कमर दर्द के साथ पैरों में भी अगर दर्द होता है तो उसे तुरंत इसका उपचार लेना चाहिए। नसें दबने के कारण यह दर्द पैरों तक भी जा सकता है। इसमें पैर सुन्न हो जाने का खतरा रहता है। इसी तरह जिन्हें स्लिप डिस्क की शिकायत होती है, उन्हें कमर के निचले हिस्से में असहनीय पीड़ा होती है जो फैलकर कूल्हे तथा जांघ तक पहुंच जाती है। ऐसा डिस्क द्वारा साइटिका नस पर दबाव पड़ने से होता है। अधिकतर कमर दर्द चौथे एवं पांचवे नंबर {कमर के पास} की रीढ़ की हड्डियों के डिस्क के अपने स्थान से हट जाने के कारण होता है। इस कारण स्लिप्ड डिस्क स्पाइन के पीछे कैनाल की भीतरी नसों का दबाव देने लगती है, इससे मरीजों को असहनीय पीड़ा महसूस होती है। नसों पर अत्यधिक जोर पड़ने पर कभी–कभी पैर के बेकार हो जाने की संभावना रहती है।

हमारी जीवनशैली और कमर दर्द का बड़ा करीबी रिश्ता है। जो लोग अपने पेशे की वजह से एक ही स्थिति में बैठ कर घंटों काम करते हैं या ऐशो आराम की जिंदगी जीते हैं या अत्यधिक शारीरिक श्रम करते हैं, वे बड़ी आसानी से कमर दर्द के शिकार हो जाते हैं। शरीर का भार सामान्य से अधिक होना, पेट बाहर की ओर निकला होना, व्यायाम की कमी, मांसपेशियों में खिंचाव, बिना रूके लंबे समय तक काम करना, हमेशा आगे की ओर झुक कर चलना या बैठना आदि भी इस दर्द के प्रमुख कारण हो सकते हैं। जो लोग दमा या रियुमेटिक बीमारियों के कारण लम्बे समय से स्टेरॉयड ले रहे हों, ज्यादा लंबे समय तक बिस्तर पर पड़े रहते हों या अत्यधिक तनाव, उत्तेजना में रहते हों, तब भी ऐसा हो सकता है, क्योंकि इससे शरीर की मांसपेशियों में तनाव आ जाता है और अचानक खिंचाव की आशंका बढ़ जाती है। कमर दर्द के और भी कई कारण हो सकते हैं।

महिलाओं में कमर दर्द आम समस्या हो गई है। करीबन 90 प्रतिशत महिलाएं इससे ग्रस्त हैं। इसका प्रमुख कारण हमारी गलत ढंग की दिनचर्या है। महिलाओं के कमर दर्द में मोटापा, मासिक की अनियमितता, वेदनायुक्त मासिक, मासिक के पूर्व गर्भाशय में सूजन, गर्भाशय बाहर आना, गर्भावस्था, प्रसूतावस्था, सिजेरियन प्रसव के पश्चात अति आराम, अति श्रम, व्यायाम का अभाव, ऊंची एड़ी की सैंडल पहनना इत्यादि कारणीभूत घटक हैं।

इसके अलावा कमर झुकाकर बैठना, लगातार खड़े रहना, स्कूटर आदि वाहन अधिक चलाना, बैठने व सोने का गलत ढंग, नरम बिछावन पर सोना, रीढ़ पर आघात, सिर पर या पीठ पर बोझा ढोना, वृद्धावस्था, रीढ़ की हड्डी में टी.बी. का संक्रमण, रीढ़ की हड्डी का क्षरण, कब्ज इत्यादि कारण भी पीड़ा के लिए जिम्मेवार हैं।

स्पाइनल स्टेनोसिस मुख्यतः वृद्धावस्था में होता है। इसमें मेरूदंड की मोटाई सिकुड़ने लगती है जिससे उसमें से निकलने वाली नाड़ियों में दबाव बढ़कर कमर दर्द होता है। स्पांडिलाइटिस में मेरूदंड की हड्डियों में सूजन आने से कमर दर्द का लक्षण मिलता है। गुर्दे एवं यूरेटर {मूत्र नली} में पथरी या अन्य विकृति होने के कारण कमर दर्द मुख्य लक्षण मिलता है। इसके अलावा पेट में कोई विकार होने पर भी कमर दर्द पाया जाता है। अनेक मानसिक कारणों से भी कमर दर्द होता है। अवसाद के रोगियों में अक्सर कमर दर्द की शिकायत मिलती है।

एंकीलोजिंग स्पांडिलाइटिसः सैक्रोइलिएक जोड़ में जलन पैदा होने के कारण होती है। पर इस प्रकार की जलन की वजह का अभी पता नहीं चल सका है। महिलाओं की अपेक्षा पुरूष इस तरह के पीठ दर्द से ज्यादा परेशान रहते हैं। यह बीमारी 20–40 वर्ष की उम्र में अधिक पाई जाती है। इसके उपचार के लिए सिकाई, मालिश व कसरत का सहारा अधिक लेना चाहिए। चिकित्सकीय सलाह से कुछ दर्द निवारक औषधियां भी ली जा सकती हैं।

काक्सीडायनियाः मेरूदण्ड के नीचे अंतिम छोर पर स्थित त्रिकोण के आकार की हड्डी कॉक्सिक्स में होने वाला दर्द कॉक्सिडायनिया कहलाता है। अक्सर रीढ़ की हड्डी के बल किसी कड़ी सतह पर गिरने से इसकी शिकायत होती है। कुर्सी पर बैठकर घण्टों काम करने वाले लोग भी कॉक्सीडायनिया के शिकार हो सकते हैं। इसका कोई स्थाई उपचार नहीं है, किन्तु सिकाई व दर्द निवारक के जरिए दर्द से छुटकारा अवश्य पाया जा सकता है। अधिकतर मामलों में दर्द धीरे–धीरे खुद ही कम हो जाता है।

फाइब्रोसाइटिसः कभी–कभी मांसपेशियों में दर्द और कड़ापन पैदा हो जाता है। इसके कारण पीठ के साथ–साथ गले, छाती, कंधों, कूल्हों व घुटनों में दर्द होने लगता है। ज्यादा तनाव व ठीक तरह से न उठना–बैठना इसके प्रमुख कारण हैं। कई बार इंफेक्शन के कारण या किसी स्नान, मालिश, दर्दनाशक दवाओं का सेवन और रिलेक्सेशन व्यायामों के जरिए मांसपेशियों के खिंचाव व दर्द को काफी हद तक दूर किया जा सकता है।

जांच

एक्स–रे, सी.टी. स्कैनिंग, एम.आर.आई. उपर्युक्त सभी जांच चिकित्सकीय परामर्श के बाद ही करानी चाहिए।

उपचार

सामान्यतः दो से तीन सप्ताह 'बेड रेस्ट' करने से सामान्य किस्म का डिस्क प्रोलैप्स ठीक हो जाता है। यह सच है कि कमर दर्द के दौरान शरीर को आराम देना जरूरी है। लेकिन अधिक बेड रेस्ट आपके कमर दर्द को कम करने के बजाय बढ़ा भी सकता है। अगर बेड रेस्ट के बावजूद दर्द बरकरार रहता है तो स्पाइनल कैनाल की 'डिकम्प्रैशन सर्जरी' के जरिए इसका इलाज किया जा सकता है। इसके लिए किसी बड़े अस्पताल में सलाह लेनी चाहिए।

पीठ दर्द से बचने के लिए व्यायाम

नियमित व्यायाम न सिर्फ आपको पीठ दर्द से छुटकारा दिलाता है, बल्कि पुराने पीठ दर्द में भी लाभ पहुंचाता है। व्यायाम उचित ढंग से करें। गलत ढंग से किया गया व्यायाम पीठ दर्द को और बढ़ा सकता है। यह भी ध्यान रखें कि चिकित्सकीय परामर्श के बाद यह सुनिश्चित अवश्य कर लें कि आपको किस प्रकार का पीठ दर्द है और उसमें कौन–कौन से व्यायाम करना ठीक रहेगा। इसी प्रकार यदि पीठ दर्द नहीं है तो पीठ दर्द से बचे रहने के लिए भी नियमित व्यायाम लाभदायक रहते हैं।

निम्नलिखित व्यायाम सभी के लिए लाभदायक हो सकते हैं, किन्तु नियमितता आवश्यक हैः–

तैरना

लम्बे समय से पीठ दर्द से परेशान लोगों के लिए तैरना एक बेहद फायदेमंद व्यायाम साबित हुआ है।

तेज चाल

तेज चलना भी शरीर में लोच बनाए रखने के लिए लाभदायक है, किन्तु सुबह के समय, खाली पेट ही घूमना अधिक फायदेमंद होता है।

मोटापे से मुक्ति के लिए भी प्रयास करें

शरीर के मध्य भाग में अतिरिक्त भार होना पेल्विस को आगे की ओर खींचता है और कमर के निचले हिस्से पर दबाव डालता है। इस अतिरिक्त भार को संभालने के लिए कमर आगे की ओर झुक जाती है। वजन अधिक बढ़ने से रीढ़ की हड्डी के छोटे–छोटे जोड़ों में टूट–फूट जल्दी हो जाती है और डिस्क भी जल्दी खराब हो जाती है।

ऑपरेशन

कमर दर्द ज्यादा गंभीर होने जैसे रीढ़ की हड्डी के मुड़ जाने, डिस्क को नुकसान हो जाने पर ऑपरेशन की नौबत आ सकती है। आमतौर पर 85–95 प्रतिशत कमर दर्द बिना किसी सर्जरी के दवाओं, व्यायाम, पोश्चर करेक्शन तकनीकों और फिजियोथेरेपी की विभिन्न तकनीकों से ठीक किए जा सकते हैं। केवल 5–10 प्रतिशत मामलों में ही जब मरीज परंपरागत उपचारों से ठीक नहीं होता तो आपरेशन की जरूरत पड़ती है।

कमर की मजबूती के लिए सर्जरी

सर्जरी जनरल एनेसथीसिया देकर की जाती है। सर्जरी द्वारा डिस्क को बाहर निकाल लिया जाता है। इसके अलावा स्पाइन फ्यूजन के द्वारा भी कमर की

मजबूती पुनः कायम की जा सकती है। सर्जरी के बाद 1 से 3 महीने आराम करने की सलाह दी जाती है। इस दौरान ड्राइविंग करने, वजन उठाने, आगे की ओर झुकने, लंबे समय तक बैठने, भागने–दौड़ने की मनाही होती है।

ओजोन थेरेपी

कमर और डिस्क के दर्द के लिए ओजोन थेरेपी एक तकनीक है, जो लोकल एनेसथीसिया में की जाती है। इसमें ओजोन को डिस्क के आंतरिक हिस्से तक पहुंचाया जाता है, लेकिन हर तरह के कमर दर्द में यह कारगर नहीं है।

जो लोग बहुत कड़े गद्दों पर सोते हैं उनकी अपेक्षा मध्यम कड़े गद्दे पर सोने वाले लोगों को कम कमर दर्द होता है। कई बार कमर दर्द की वजह गद्दे न होकर आपके सोने का तरीका भी हो सकता है।

1. फिजियोथेरैपी में मुख्यतः मैनुअलथेरैपी जैसे मांसपेशियां एवं नसों के खिंचाव, व्यायाम, इलेक्ट्रिक स्टीम्यूलेशन, लेजरथेरैपी, गरम या ठण्डा सिकाई आदि दी जाती है, जिससे दर्द और मांसपेशियों की जकड़न कम हो। इसके बाद विशेष प्रकार के व्यायाम करने की सलाह दी जाती है।
2. **हीट थेरैपी**– यह कमर दर्द को दूर करने में सहायक होती है। बाजार में ऐसे कई उपकरण मिल जाते हैं जिनसे दर्द के दौरान सिंकाई की जाती है।
3. **मसाज या मालिश**– यह कमर दर्द को दूर करने का सबसे पुराना और कारगर इलाज है। मालिश के दौरान शरीर से दर्द निवारक एंडोफ्रीन निकलता है, जो शरीर को आराम देने के अलावा दर्द से भी निजात दिलाता है।
4. **दर्द निवारक गोलियां**– हर दर्द निवारक गोली अलग तरह से असर करती है। यह दर्द के संकेतों को दिमाग तक पहुंचने ही नहीं देती। इस कारण दर्द का एहसास नहीं होता।
5. **टेन्स मशीन**– बैटरी से चलने वाले उपकरण ट्रांसक्यूटेनियस इलेक्ट्रीकल नर्व सिटीम्यूलेशन को कमर में लगाया जाता है। इस इलेक्ट्रिकल पैड से नसों को उत्प्रेरित करके दर्द को खत्म किया जाता है।

सावधानियाँ

यदि आप पीठ या कमर दर्द से बचना चाहते हैं तो इन बातों पर ध्यान दे।

नियमित रूप से पैदल चलें। यह सर्वोत्तम व्यायाम है।

अधिक समय तक स्टूल या कुर्सी पर झुककर न बैठे।

शारीरिक श्रम से मांसपेशियाँ पुष्ट होती हैं।

एक सी मुद्रा में न तो अधिक देर तक बैठे रहें और न ही खड़े रहें।

किसी भी सामान को उठाने या रखने में जल्दबाजी न करें।

भारी सामान को उठाकर रखने की बजाय धकेल कर रखना चाहिए।

ऊँची एड़ी के जूते–चप्पल के बजाय साधारण जूते–चप्पल पहनें।

सीढ़ियाँ चढ़ते–उतरते समय सावधानी बरतें।

यदि कहीं पर अधिक समय तक खड़ा रहना हो तो अपनी स्थिति को बदलते रहें।

चित्त सोयें पेट के बल न सोयें।

नीचे रखी कोई वस्तु उठाते वक्त पहिले अपने घुटने मोड़ें फिर उस वस्तु को उठाएं।

कमर और पीठ के दर्द के निवारण हेतु कुछ योगासनों का विशेष महत्व है।

यदि कमरदर्द कई सप्ताह या माह से चल रहा हो, चाहे कितना भी हल्का हो डॉक्टर को दिखाएं।

यदि आप स्त्री हैं और आपको कमरदर्द परेशान करता है तो अस्थिरोग के अलावा अपना परीक्षण स्त्री रोग विशेषज्ञ से भी कराएं। गर्भाशय एवं पेल्विस की बीमारियां कमरदर्द पैदा कर सकती हैं।

कमर दर्द के साथ बुखार भी आता है तो तुरंत ही {बहुत–सी} जांचों की आवश्यकता हो सकती है।

यह टीबी, आस्टियोमाईलाइटिस से लगाकर कमर के {मेरूदंड} जोड़ों की आर्थ्राइटिस तक निकल सकता है। बुखार हल्का भी हो तो नजरअंदाज न करें।

कमरदर्द यदि लगातार हो, लेटने या आराम करने से भी ठीक न हो तो पूरी जांच की आवश्यकता है क्योंकि कमरदर्द के सामान्य कारणों में प्रायः आराम कर लेने से दर्द कम हो जाता है।

कमरदर्द चलने पर हो परंतु आगे थोड़ा झुककर चलें या साइकिलिंग करें तो यह लंबर कैनाल स्टीनोसिस नामक बीमारी हो सकती है।

यदि सिटी स्कैन या एक्स–रे में कमर की हड्डी या डिस्क में कोई खराबी दिखे तो जरूरी नहीं कि आपके कमरदर्द का कारण यही हो। कई बार यह होता है कि कैट स्कैन या एमआरआई में डिस्क खिसकी तो साफ दिख रही है या हड्डी बढ़ी दिख रही है, या कोई पुराना फ्रैक्चर ही दिख रहा है परंतु कमरदर्द किसी और कारण से हो रहा हो, ऐसे लोग कई बार ऑपरेशन तक करा लेते हैं पर दर्द ठीक नहीं होता, तो केवल जांच रिपोर्ट पर न जाएं।

कमरदर्द के साथ यदि पांवों में या किसी उंगली, अंगूठे आदि में झुनझुनी हो या वह हिस्सा सुन्न हो जाए या उसमें ताकत कम लगे तो इसे इमरजेंसी मानें, तुरंत डॉक्टर को बताएं। कमरदर्द के साथ इनका होना खतरनाक है।

कमरदर्द कई बार कूल्हे की बीमारी से भी हो सकता है। ऐसे में कमर की जांच कुछ नहीं बता सकेगी।

स्तन कैंसर

प्रो. अजय खन्ना

सर्जरी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भारतीय महिला में बच्चेदानी के मुंह के कैंसर के बाद स्तन कैंसर सबसे आम है। कुछ–कुछ जगह तो भारत में स्तन कैंसर सबसे आम है। भारतीय महिलाओं में 21–22 औरतों में एक को स्तन कैंसर हो सकता है।

स्तन में गांठ तो प्रायः पायी जाती है। पर ज्यादातर 10 में से 9 औरतों में यह कैंसर नहीं होता है। भारत में स्तन कैंसर के मरीज काफी बढ़ी हुई अवस्था में आते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है कि इस बीमारी के बारे में जानकारी नहीं है। शुरूआती दौर में दर्द नहीं होने के कारण भी मरीज को बीमारी का पता नहीं चलता है।

स्तन कैंसर क्या है?

स्तन कैंसर एक घातक ट्यूमर है, हालांकि स्तन कैंसर महिलाओं में मुख्य रूप से होता है पर यह पुरूषों को भी प्रभावित कर सकता है।

स्तन कैंसर के जोखिम कारक क्या है ?

स्तन कैंसर के लिए जोखिम कारक इस प्रकार है

बढ़ती आयु स्तन कैंसर की सम्भावना को बढ़ाने के रूप में एक जोखिम है।

परिवार में मां, बहन, बेटी को स्तन, ओवरी या बड़ी आंत का कैंसर होना।

निजी इतिहासः एक स्तन में स्तन कैंसर का निदान किया गया है तो दूसरे स्तन या मूल स्तन में एक अतिरिक्त कैंसर का खतरा बढ़ जाता है।

कुछ सौम्य स्तन की स्थिति के साथ का निदान महिलाओं में स्तन कैंसर के खतरों को बढ़ा देता है जैसे कि एटिपिकल हाइपरप्लेजिया।

माहवारीः उन महिलाओं में जिनमें 12 वर्ष के पहले मासिक धर्म चक्र शुरू हो जाता है या 55 वर्ष के बाद तक रहता है।

घने स्तन उतक के साथ महिलाओं में स्तन कैंसर का खतरा होता है।

गोरी महिलाओं में स्तन कैंसर होने का खतरा अधिक होता है।

यदि पहला बच्चा 30 की उम्र के बाद हो या कोई बच्चे न हों।

यदि स्तन पान न कराया जाय।

अधिक वजन या मोटापे से ग्रस्त होने के कारण भी स्तन कैंसर का खतरा बढ़ जाता है।

कुछ तरह की गर्भ निरोधक दवाइयां उपयोग करने से 10 वर्षों में स्तन कैंसर का खतरा बढ़ जाता है।

संयुक्त हार्मोन थेरेपी का उपयोग रजोनिवृत्ति के बाद करने पर स्तन कैंसर का खतरा बढ़ जाता है।

शराब का उपयोग स्तन कैंसर के खतरे को बढ़ा देता है।

व्यायाम स्तन कैंसर के खतरे को कम कर सकता है।

स्तन कैंसर के लक्षण क्या है ?

स्तन कैंसर का सबसे आम लक्षण स्तन में गांठ होना है। इसके अलावा निम्नलिखित स्तन कैंसर के सम्भावित लक्षण हैं –

निपल से खून या पानी गिरना।

स्तन या निपल में दर्द।

स्तन में सूजन या गड्ढ़ा हो जाना।

कांख में गिल्टी, हाथ का सूजन।

स्तन कैंसर को जल्दी कैसे पहचाना जा सकता है ?

अमेरिकन कैंसर सोसायटी ने स्तन कैंसर स्क्रीनिंग के लिए निम्नलिखित सिफारिशें की हैः

1. महिलाओं को 40 की उम्र के बाद हर साल एक स्क्रीनिंग मेम्मोग्राम कराना चाहिए।
2. महिलाओं को नियमित रूप से स्वास्थ्य परीक्षा के रूप में 20 से 30 की उम्र में हर तीन साल पर तथा 40 साल के बाद हर साल पेशेवर डाक्टर द्वारा एक नैदानिक स्तन परीक्षण कराना चाहिए।
3. स्वयं परीक्षा {बीएसई} स्तन 20 वर्ष की उम्र के बाद से महिलाओं को अपने स्तन को महीने में एक बार देखकर, छू कर देखना चाहिए और अगर कोई गांठ या स्तन में परिवर्तन नजर आता है तो तुरन्त डाक्टर को दिखाना चाहिए।

स्तन कैंसर का निदान कैसे किया जाता है ?

स्तन में गांठ है तो उसकी सुई से एफएनएसी/एफएनएबी जांच की जाती है। कभी–कभी उसका अल्ट्रासाउण्ड, मेम्मोग्राफी या एमआरआई भी किया जा सकता है।

यह निर्धारित करने के लिए कि अगर कैंसर फैल गया है, कई अलग–अलग इमेजिंग तकनीक का इस्तेमाल किया जा सकता है जैसेः

चेस्ट एक्स–रे– यह फेफड़ों के फैलाव के लिए किया जाता है।

मेम्मोग्राम्स या अल्ट्रासाउण्ड– अधिक विस्तृत और अतिरिक्त मेम्मोग्राम्स स्तन की अधिक छवियों को उपलब्ध कराते हैं और स्तन के अन्य भागों को देखा जा सकता है।

कम्प्यूटरीकृत टोमोग्राफी या सीटीस्कैन– इस विशेष एक्स–रे का शरीर के विभिन्न भागों में यदि स्तन कैंसर फैल गया है देखने के लिए प्रयोग किया जाता है।

बोनस्कैन– बोनस्कैन कैंसर के हड्डियों में फैलाव का पता लगाता है।

पोजीट्रान उत्सर्जन टोमोग्राफी– पीईटी स्कैन शरीर में इन क्षेत्रों को जहां कैंसर फैला हो उसे रेखांकित कर सकता है।

स्तन कैंसर की स्टेजिंग

सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली प्रणाली कैंसर ''टीएनएम'' प्रणाली है जिसकी अमेरिकी संयुक्त समिति द्वारा संस्तुति की गई है। इमेजिंग परीक्षण से प्राप्त जानकारी के अलावा इस प्रणाली में शल्य चिकित्सा की प्रक्रियाओं के परिणाम का उपयोग भी किया जा सकता है।

टीएनएम

टीः यह ट्यूमर के आकार का वर्णन करता है। यह 0 से 4 अधिक संख्या में होता है।

टीएक्सः प्राथमिक ट्यूमर का आकलन नहीं किया जा सकता।

टीः प्राथमिक ट्यूमर के कोई सबूत नहीं।

टी 1: ट्यूमर 2 सेमी या उससे कम है।

टी 2: ट्यूमर 2 सेमी से 5 सेमी तक है।

टी 3: ट्यूमर 5 सेमी से अधिक है।

टी 4: किसी भी छाती की दीवार या त्वचा में कैंसर फैला है।

एनः यह स्तन के पास लिम्फनोड्स में फैलने का वर्णन करता है। यह 0 से 3 तक होता है।

एनएक्सः लिम्फनोड्स का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है।

एन1: कैंसर के लिए एक से तीन ग्रुप के लिम्फनोड्स अण्डरआर्म लिम्फनोड्स या आंतरिक स्तन लिम्फनोड्स, छाती के पास लिम्फनोड्स में कैंसर का द्योतक होता है।

एन 2: कैंसर 4 से 9 ग्रुप के लिम्फनोड्स में फैल गया है या कैंसर में आंतरिक स्तन लिम्फनोड्स बढ़े हुए हैं।

एन 3: कैंसर कम से कम 2 मिमी से बड़ा तथा कैंसर के साथ 10 या अधिक लिम्फनोड्स में फैल गया है या कैंसर कालर बोन {पसली की हड्डी} के नजदीकी लिम्फनोड्स में फैल गया है।

एमः यह 0 या 1 यह दर्शाता है कि कैंसर अन्य अंगों में फैल गया है।

एमएक्सः मेटास्टेसिस का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

एम0: कोई दूर अंगों में नहीं फैला हुआ है।

एम 1 : अन्य अंगों में मौजूद है।

स्तन कैंसर के लिए इलाज क्या है ?

स्तन कैंसर के साथ मरीजों को कई उपचार के विकल्प है। अधिकांश उपचार विशेष रूप से कैंसर के प्रकार और स्टेज पर निर्धारित है।

सर्जरी

स्तन कैंसर के साथ ज्यादातर महिलाओं को सर्जरी की आवश्यकता होगी। मोटे तौर पर, स्तन कैंसर के लिए शल्य चिकित्सा, स्तन संरक्षण सर्जरी {ब्रेस्ट कन्जर्वेशन सर्जरी} और मैस्टेक्ओमी में विभाजित किया जा सकता है।

स्तन संरक्षण सर्जरी

इस सर्जरी में आंशिक स्तन के रूप में स्तन का कुछ हिस्सा निकाला जाता है। सर्जरी की गम्भीरता आकार और ट्यूमर के स्थान द्वारा निर्धारित की जाती है। लम्पेक्टोमी में केवल स्तन गांठ और कुछ आसपास के उतकों को हटा दिया जाता है तथा आसपास के स्तन में विकिरण चिकित्सा दी जाती है।

मैस्टेक्टोमी

इस सर्जरी में स्तन के उतकों को अतिरिक्त कांख से लिम्फनोड्स को हटा दिया जाता है। अगर औरत चाहती है तो उसके लिए प्लास्टिक सर्जरी की जा सकती है जिसमें स्तन का उभार फिर बना दिया जाता है।

विकिरण चिकित्सा

विकिरण चिकित्सा उच्च उर्जा किरणों के साथ कैंसर की कोशिकाओं को नष्ट कर देता है। विकिरण चिकित्सा के दो तरीके हैं –

बाहरी बीम विकिरण या टेलीथेरेपी

विकिरण की किरण से एक बाहरी मशीन द्वारा प्रभावित क्षेत्र पर किरणों को केंद्रित किया जाता है। यह 5–6 हफ्ते तक चलता है।

ब्रैकीथेरेपी

इस फार्म में रेडियोधर्मी बीज या छर्रों का उपयोग किया जाता है। बाहर से एक बीम विकिरण पहुंचाने के बजाय, इन बीजों को स्तन कैंसर के बगल में प्रत्यारोपित किया जाता है।

कीमोथेरेपी

रसायन चिकित्सा कैंसर की दवा है। कैंसर की कोशिकाओं को रक्त के माध्यम से मारा जाता है। इन दवाओं को नसों में इंजेक्शन के द्वारा या मुंह द्वारा दिया जाता है। कीमोथेरेपी विभिन्न स्थितियों में दी जाती है।

सहायक कीमोथेरेपी एडजुवैन्ट

अगर सर्जरी से सभी दृश्य कैंसर हटा दिया गया है पर तब भी यह सम्भावना है कि कैंसर की कोशिकाएं शरीर में हैं तो इस स्थिति में एडजुवेन्ट कीमोथेरेपी दी जाती है।

नियोएडजुवैन्ट कीमोथेरेपी

यदि कीमोथेरेपी सर्जरी से पहले दी जाती है यह नियोएडजुवेन्ट कीमोथेरेपी के रूप में जानी जाती है। कीमोथेरैपी से कोई फायदा हो रहा है या नहीं, देखने के लिए तथा यह कि कैंसर की शल्य क्रिया के पहले कैंसर को सिकोड़कर उसका लाभ लेने के लिये होती है। इससे कैंसर का साइज छोटा हो जाता है और फिर इसका आपरेशन किया जाता है।

पैलियेटिव कीमोथेरेपी

यदि कैंसर शरीर में फैल चुका है तो कीमोथेरेपी उपचार के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। कई अलग–अलग एजेंटों को अकेले या संयोजन में दिया जाता है।

हार्मोनथेरेपी

यह चिकित्सा अक्सर सर्जरी के बाद कैंसर के दुबारा होने के जोखिम को कम करने में मदद करने के लिए इस्तेमाल किया है। लेकिन यह भी सहायक उपचार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। एस्ट्रोजन अण्डाशय द्वारा उत्पादित हार्मोन कुछ स्तन कैंसर के विकास को बढ़ावा देते हैं। इसमें मुख्य दवाएं हैं – टैमोक्सिफेन, एरोमाटेज इनहिबिटर आदि।

लक्षित चिकित्सा टारगेटेड थेरेपी

जैसा कि हम जीन परिवर्तन और कैंसर पैदा करने में उनकी भागीदारी के बारे में अधिक सीख रहे हैं, दवाओं का विकास किया जा रहा है विशेष रूप से कैंसर की कोशिकाओं को लक्षित कर रहे हैं। आम तौर पर अभी भी

कीमोथेरेपी के साथ सहायक के रूप में उपयोग किया जाता है।

लक्ष्यीकरण एचईआर 2/नियु प्रोटीन

मोनोक्लोनल एण्टीबाडी – ट्रैस्टूजुमैब एक इंजीनियर प्रोटीन है जो स्तन कैंसर की कोशिकाओं पर एचईआर 2/नियु प्रोटीन के लिए देता है। यह कैंसर कोशिका के विकास को धीमी करने में मददगार है।

स्तर कैंसर का प्रोग्नोसिस क्या है ?

अक्सर चर्चा की संख्या 5 साल का अस्तित्व ही है। यह रोगियों को कम से कम 5 साल जीवित रहने के बाद का प्रतिशत है। इन रोगियों में से कई बहुत लम्बे समय तक जीवित रहते हैं और कुछ रोगियों में स्तन कैंसर के अलावा अन्य कारणों से पहले मौत हो जाती है। वर्तमान 5 साल की उत्तर जीविता आंकड़ा रोगियों पर आधारित है।

मंच	5 साल जीवित रहने की दर
0	93 प्रतिशत
1	81 प्रतिशत
2	74 प्रतिशत
3	67 प्रतिशत
4	41 प्रतिशत
5	49 प्रतिशत
6	15 प्रतिशत

क्या स्तन कैंसर को रोका जा सकता है ?

जल्दी पता लगाने के लिए अमेरिकन कैंसर सोसायटी के दिशा निर्देश कैंसर को जल्दी पता लगाने और उपचार में मदद कर सकते हैं। कीमोपिवेंशन दवाओं के उपयोग से कैंसर का खतरा कम हो सकता है। स्तन कैंसर के कीमोप्रिवेंशन के लिए दो वर्तमान में स्वीकृत दवाओं में टैमोक्सिफेन एक दवा है जो कि स्तन ऊतक पर एस्ट्रोजन प्रभाव को रोकती है, और दूसरी रेलोक्सिफेन है, जो स्तन के ऊतकों पर एस्ट्रोजेन के प्रभाव को रोकती है।

स्तन कैंसर से बचा तो नहीं जा सकता, पर अगर स्तन कैंसर शुरू की अवस्था में पकड़ लिया जाय तो औरत का स्तन भी बच सकता है और उसकी जान भी। यही एक संकल्प लेना चाहिए कि अगर औरत को लगे कि उसके स्तन में गांठ है या स्तन का आकार बदल रहा है तो उसको तुरन्त डॉक्टर से मिलना चाहिए। ऐसा जरूरी नहीं कि हर गांठ कैंसर ही होती है। दस में से नौ गांठ तो कैंसर नहीं होती है और अगर एक औरत को जो कैंसर की गांठ है वह शुरूआती दौर में पकड़ मे आ जाती है तो वह औरत भी इलाज के बाद सामान्य जिन्दगी व्यतीत कर सकती है।

जलने की घटनाएंः कारण, निवारण एवं प्राथमिक उपचार

प्रो. प्रदीप जैन एवं वैभव जैन

प्लास्टिक सर्जरी एवं जनरल सर्जरी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अग्नि का आविष्कार मानव जाति के लिय एक विशेष उपलब्धि हैं पर यह दोधारी तलवार की तरह है। एक तरफ जहां इसके कई उपयोग हैं, दूसरी तरफ असावधानीवश जलने से मानव की मृत्यु भी सम्भावित है। इस तरह अग्नि के आविष्कार के समय से ही मानव जाति जलने की घटना से दो–चार होती रही है। जलने के उपचार का विवरण ईसा के जन्म के पांच सौ वर्ष पूर्व हिप्पोक्रेटस व भारतीय चिकित्सा शास्त्र के पितामह महर्षि सुश्रुत ने ''सुश्रुत संहिता'' में दिया है। इतनी पुरानी समस्या के बाद भी इसके उपचार की समुचित व्यवस्था का कई देशों विशेषकर विकासशील देशों में अभाव है। आइये, इसके कारणों, प्राथमिक उपचार व कुछ भ्रान्तियों के ऊपर प्रकाश डाला जाये।

समुचित रजिस्ट्री प्रक्रिया के अभाव में एक मोटे अनुमान के अनुसार, भारतवर्ष में गम्भीर रूप से जले हुये रोगियों की संख्या लगभग सात लाख एवम् उससे होने वाली मृतकों की संख्या लभगभ 2–3 लाख {30–40 प्रतिशत} होगी। इसमें अगर सभी प्रकार के जले हुये रोगियों को देखा जाय तो संभवतः 10 लाख लोग जलने से प्रभावित होते होंगे। इसमें से लगभग तीन चौथाई दुर्घटनायें घर में और वह भी रसोई घर में होती है और जलने वालों में लगभग 80 प्रतिशत महिलायें व बच्चे होते हैं। इससे इस स्थिति की गम्भीरता का अहसास किया जा सकता है।

जलने के कारण

जलने की घटना या तो शुष्क गरम या तरल गरम से होती है। शुष्क गरम जैसे कि आग की लपट से जलना और तरल गरम यानी गरम तरल पदार्थ जैसे कि गरम पानी, दूध, तेल, भाप आदि। कुल जले हुये रोगियों में से लगभग 90 प्रतिशत इस प्रकार जलते हैं। शेष में लगभग 5–6 प्रतिशत बिजली से व लगभग 4–5 प्रतिशत तेजाब से भी जलते हैं।

जलने की गम्भीरता का आकलन

क. गम्भीर रूप से जले हुये

1. 40 प्रतिशत या अधिक सेकेण्ड डिग्री जला हुआ बालिग
2. 20 प्रतिशत या अधिक सेकेण्ड डिग्री जला हुआ बच्चा
3. 10 प्रतिशत या अधिक थर्ड डिग्री
4. थर्ड डिग्री जला हुआ चेहरा/हाथ/पैर/जननांग एवं आसपास का स्थान
5. जलने के साथ श्वास नली का जलना
6. बिजली से जलना

ख. मध्यम गम्भीरता से जले हुये

1. 15–40 प्रतिशत सेकेण्ड डिग्री बर्न से प्रभावित युवा
2. 10 प्रतिशत से अधिक जला हुआ बच्चा
3. 1 प्रतिशत थर्ड डिग्री जला हुआ चेहरा, हाथ, पैर, जननांग व आसपास का स्थान

ग. आंशिक रूप से जला हुआ

1. प्रथम श्रेणी जला हुआ
2. सेकेण्ड डिग्री 15 प्रतिशत से कम जला हुआ युवा
3. बच्चे में सेकेण्ड डिग्री 10 प्रतिशत से कम जलना
4. थर्ड डिग्री 2 प्रतिशत से कम {हाथ, पैर, चेहरे व जननांग को छोड़कर}

जलने से बचने के उपाय

75 प्रतिशत जलने की घटनायें रसोईघर में होती हैं इसलिये उपुर्यक्त रसोई व खाना पकाने के सही तरीके को अपनाकर जलने की कई घटनाओं से बचा जा सकता है। कई जले रोगियों के आकलन के बाद यह पाया गया है कि अक्सर महिलायें नायलान, टेरीलीन जैसे

ज्वलनशील कपड़े व साड़ी पहन कर भूमि पर बैठकर भोजन बनाती हैं। ऐसा करना पूर्णतः गलत है क्योंकि यह केवल स्वयं के जलने को आमन्त्रण ही नहीं देता, बल्कि खेलता हुआ बच्चा भी इससे प्रभावित हो सकता है। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि महिलायें व बालिकाएं सही फिटिंग के सूती वस्त्र पहन कर एक ऊँचे स्थान पर खाना पकाएं। इससे अपने को जलने से बचाने के साथ–साथ, आप भूमि पर खेलते हुए नन्हें बच्चे को गलती से खाना पकाने के स्थान पर पहुँचने से भी रोक सकती हैं।

खाना बनाने से सम्बन्धित वस्तुयें रखनें के लिये आलमारी, खाना बनाने के स्थान से दायें या बायें स्थान पर होनी चाहिए जिससे कि खाना पकाते समय समान उठाने पर असावधानी से आप के वस्त्र का कोई हिस्सा आग की लपेट में न आ पाये।

खाना बनाने का साधन बत्ती वाला स्टोव या गैस होना चाहिए। सबसे ज्यादा जलने का कारण रसोई घर में प्रेशर स्टोव या गैस सिलिंडर से गैस का रिसाव है। अतः गैस सिलिंडर लेते समय सिलिंडर की जांच अवश्य करें। गैस लीक होने की स्थिति में रसोईघर की खिड़की तुरन्त खोल दें व कोई बिजली का स्विच न खोलें या बन्द करें। कभी–कभी स्विच बन्द करने या खोलने के समय स्विच से उत्पन्न चिंगारी से भयंकर आग लगने का खतरा रहता है।

खाना बनाते समय बालों को बांध कर जूड़ा बनाने से खुले बालों के आग की लपट में आने का खतरा भी कम हो जाता है।

खाना बनाते समय अग्निरोधी वस्त्र अथवा ऐप्रन पहनने से भी आग के खतरे से बचा जा सकता है। लेकिन उसका बहुत अधिक मूल्य इसके उपयोग में बाधक है खास तौर से निम्न व मध्यम आय वर्ग के लिये।

जलने पर क्या करें ?

जलने के बाद कोई लेप घी अथवा मंजन या स्याही को नहीं लगाना चाहिये। इसके इनफेक्शन के साथ–साथ घाव के सही आकलन में भी दुविधा होती है। जलने के तुरन्त बाद पानी डालने के पश्चात व्यक्ति को एक साफ चादर में लपेट कर पास ही स्थित किसी अस्पताल/स्वास्थ्य केन्द्र ले जाना चाहिये। अगर दुर्घटना स्थल से निकटतम अस्पताल की दूरी तय करने में एक घण्टे से ज्यादा समय लगता हो तो नमक–चीनी पानी का घोल {ओ. आर. एस. घोल} पिलाते रहना चाहिये नहीं तो मुंह से कुछ भी नहीं देना चाहिए।

भाप, गरम पानी या तेल आदि से जलने पर तुरन्त ठण्डे पानी में जला हुआ हिस्सा डुबा देना चाहिये या बहते पानी के नीचे रखना चाहिए।

बिजली से जलने के समय बिजली का तार अथवा स्विच से स्वयं को तुरन्त छुड़ाते हुये हो सके तो स्विच बन्द कर देना चाहिए। बिजली से जलने पर अस्पताल में उपचार आवश्यक है। बिजली से जला हुआ घाव प्रायः गरम होता है और कभी–कभी खून की नलियों के प्रभावित होने पर अंग भी सड़ सकता है।

तेजाब से जलने पर भी तेजाब पड़े हिस्से को बहते पानी के नीचे तब तक धोना चाहिये जब तक कि जलन कम न हो जाये। इस तरह का घाव प्रायः गहरा होता है और हल्के में नहीं लेना चाहिए।

जलने से होने वाली दुर्घटनाओं से बचने के लिये आवश्यक है कि बचाव के उपायों का पालन किया जाये। बच्चों को आरम्भिक कक्षाओं में ही जलने से बचने के उपायों के बारे में बताना चाहिये, खास तौर पर दीपावली व अन्य त्यौहारों के अवसर पर पटाखे छोड़ते समय। प्रेस व मीडिया में भी इस पर भरपूर प्रचार की आवश्यकता है। सरकार को भी कम से कम हर जिला अस्पताल में एक पूर्णकालिक बर्न यूनिट स्थापित करने के लिए ईमानदारी से प्रयास करना चाहिये। तभी हम जलने से होने वाली दुर्घटनाओं एवं उससे होने वाली मृत्यु में कमी ला पायेंगे।

एचआईवी/एआईडीएस के विषय में महत्वपूर्ण एवं आवश्यक जानकारियाँ

प्रो. यू. पी. शाही

रेडियोथेरैपी एण्ड रेडिएशन मेडिसीन विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

एचआईवी {ह्यूमन इम्यूनोडिफिसीएंसी वाइरस} एक विषाणु है जो एआईडीएस उत्पन्न करता है। यह विषाणु रेट्रोवाइरस समूह का है।

एचआईवी मानवीय कोशिकाओं को संक्रमित करता है एवं कोशिकाओं के भोजन व उर्जा का स्वयं इस्तेमाल करने लगता है।

एआईडीएस यानी एक्वायर्ड इन्थूनोडफिसीएंसी सिंड्रोम एक बीमारी है, जिसमें रोगी की प्रतिरोधी क्षमता खत्म हो जाती है एवं व्यक्ति बीमारियों के संक्रमण से अपनी रक्षा नहीं कर पाता है।

एचआईवी के विषाणु प्रतिरोधी श्वेत रक्त कणिकाओं में प्रवेश कर वृद्धि करते हैं, जिससे उनकी क्षमता कम हो जाती है। एचआईवी संक्रमण से टी हेल्पर या सीडी4 कोशिकाएं कम हो जाती हैं एवं व्यक्ति अनेक अवसरवादी रोगाणुओं एवं बीमारियों से ग्रसित हो जाता है।

किसी व्यक्ति में एड्स का निदान करने के लिए दो बातें होनी चाहिए।

1. एचआईवी की जांच पाजीटिव हो।
2. एड्स से जुड़े संक्रमण या रोग उपस्थित हों या सीडी 4, टी–सेल काउण्ट 200 कोशिकाएं प्रति घन मिमी. से कम हो।

टी–सेल कम होना या अवसरवादी रोगों का संक्रमण।

एचआईवी संक्रमण के तुरन्त बाद से लेकर 10–12 वर्षों या उससे भी अधिक समय के बाद भी हो सकता है। आरंभिक अवस्था में उपचार व्यक्ति को लम्बे समय तक जीवित रख सकता है।

एक जानकारी के अनुसार – दुनिया भर के एचआईवी/एआइडीएस से प्रभावित लोगों की संख्या वर्तमान में 3 करोड़ 32 लाख से भी अधिक है। इनमें अधिकांश यह नहीं जानते हैं कि उनमें एचआईवी का संक्रमण है एवं वे इन जीवाणुओं को दूसरों तक फैला रहे हैं।

एआईडीएस ने अबतक 2.5 करोड़ से अधिक लोगों को काल कवलित किया है। सिर्फ पिछले 25 वर्षों में एचआईवी संक्रमित व्यक्ति के रक्त, वीर्य, जननांगों से होने वाले श्राव दुग्ध आदि शारीरिक द्रवों में विषाणु पाये जाते हैं और ये दूसरे व्यक्ति के रक्त में पहुंच कर उसे संक्रमित कर सकते हैं। इन द्रव स्राव का रक्त से सीधे सम्पर्क या चमड़ी में किसी घाव या कटाव या इंजेक्शन या सूई के माध्यम से संक्रमण होता है।

सामान्यतः एचआईवी असुरक्षित यौन सम्पर्कों से प्रसारित होता है। महिलाओं को ज्यादा खतरा रहता है। विशेषकर अंगों में घाव या कटाव होने से खतरा बढ़ जाता है जिससे विषाणु रक्त नलिकाओं तक आसानी से पहुंच जाते हैं।

सीरिंज एवं सूई का संयुक्त रूप से अनेक व्यक्तियों द्वारा इस्तेमाल करने से एचआईवी संक्रमण फैलता है। यह पाया गया है कि इस्तेमाल किए गये सीरिंज में एचआईवी महीनों तक जीवित रह सकता है एवं दूसरे व्यक्तियों को संक्रमित कर सकता है। इसलिए सीरींज एवं सूइयों का दुबारा इस्तेमाल कभी भी नहीं करना चाहिए। शरीर में छेद करने के लिए तथा टैटू करने के लिए प्रयुक्त होने वाली सूइयां भी एचआईवी फैला सकती हैं।

गर्भावस्था व स्तनपान के दौरान एचआईवी संक्रमण को रोकने के लिए एचआईवी जांच आवश्यक है। संक्रमित महिला को दवा देकर बच्चे या भ्रूण में रोग के संक्रमण को बचाया जा सकता है। स्तन पान कराने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

एचआईवी एक व्यक्ति से दूसरे में आसानी से नहीं जा सकता है। भोजन, हवा, खांसी, छींक, साथ रहने से,

साथ काम करने से, भोजन का बरतन इस्तेमाल करने से, स्नानघर इस्तेमाल करने से, एक दूसरे के निकट रहने से यह नहीं फैलता है।

रक्तदान करने से एचआईवी प्रसार का कोई खतरा नहीं है। पसीना, आंसू, वमन, द्रव, पेशाब या शौचादि पदार्थों में एचआईवी होता है। परन्तु ये विषाणु नहीं फैलाते हैं। मच्छर या अन्य कीड़े, पतंगों द्वारा एचआईवी नहीं फैलता है।

सुरक्षित यौन क्रिया द्वारा एचआईवी से बचा जा सकता है। कान्डोम या अन्य ऐसे साधनों का प्रयोग काफी सुरक्षित है। प्रत्येक क्रिया से पहले सुरक्षा का इस्तेमाल करना चाहिए। यौन जनित रोगों की उपस्थिति में एचआईवी प्रसार की संभावना बढ़ जाती है।

उपचार

अवसरवादी रोगों के इलाज एवं एचआईवी को बढ़ने से रोकने के लिए अनेको दवाइयाँ आजकल उपलब्ध हैं।

अनेको मरीज उपरोक्त दवाओं को एक साथ लेते हैं जिसे एचएएआरटी कहते हैं। यह इलाज कारगर साबित हुआ है। यह रोगी के अंदर विषाणु की संख्या घटाते हैं तथा उसकी प्रतिरोधक क्षमता को सामान्य भी करते हैं, साथ में होने वाली बीमारियों की रोकथाम में भी दवाईयां सहायक होती हैं। ये दवाईयां एवं अन्य कीमोथेरैपी दवाईयां एड्स से जुड़े कैंसर का भी इलाज करने में प्रयुक्त हो रही हैं। वैज्ञानिक वाइरस को नष्ट करने के लिए नई दवाईयां खोज रहे हैं। यह प्रयास चल रहा है कि एचआईवी के इलाज के लिए नये लक्ष्य तय किए जाएं एवं मरीजों के प्रतिरोधी प्रणाली को चुस्त दुरूस्त किया जाय।

फिलहाल, एड्स का पूर्ण इलाज उपलब्ध नहीं है। नई दवाईयों से मरीज ज्यादा दिन तक जीवित रह रहे हैं, परन्तु इनको काफी परेशानियां भी उत्पन्न हो रही हैं। हृदय, वृक्क तथा अस्थियों को हानि पहुंचती है। बहुत से मरीज लम्बे समय तक इलाज नहीं ले पाते हैं, जिससे दवाईयों का असर कम होने लगता है। असर होने पर भी एचएएआरटी से एचआईवी पूर्णतः समाप्त नहीं होता है। अमेरिका में एड्स से होने वाली मृत्यु दर कम हुई है, परन्तु वैश्विक परिदृश्य पर कोई असर पड़ता नहीं दिखता, क्योंकि 95 प्रतिशत मरीज विकासशील देशों में रह रहे हैं, जहां लगभग नहीं के बराबर इलाज की सुविधा उपलब्ध है।

अनवरत चल रहे शोधों के बावजूद एड्स वैक्सीन तैयार करने में वर्षों लग सकते हैं और लाखों–करोड़ों को इमुनाइज करने में और भी कई वर्ष लगेंगे। तब तक एचआईवी रोकथाम की विधियां जैसे सुरक्षित यौन सम्बन्ध रखना एवं विषाणु रहित सिरींज तथा सूइयों का इस्तेमाल सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

किसी को बाहर से देखकर नहीं बताया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति एचआईवी या एड्स से पीड़ित है। एक संक्रमित व्यक्ति पूर्णतः स्वस्थ नजर आ सकता है और वह दूसरे में यह बीमारी फैलाने में पूर्णतः सक्षम है।

एचआईवी संक्रमण के तुरंत बाद कुछ लोग सामान्य फ्लू के लक्षण के साथ शरीर में गांठ विकसित करते हैं। यद्यपि वे स्वस्थ दिखते व महसूस करते हैं परन्तु वे एचआईवी संक्रमित हो सकते हैं। एचआईवी की स्थिति जानने के लिए रक्त के नमूने में एचआईवी एन्टीबॉडी की जांच आवश्यक है।

एचआईवी संक्रमण के आरंभिक अवस्था में ठोस कदम उठाकर लम्बे समय तक स्वस्थ रह सकते हैं। नियमित चिकित्सकीय जांच से उचित समय पर समुचित कदम उठाने में सहायता मिलेगी। एचआईवी धनात्मक होने पर आवश्यक कदम उठाकर दूसरों में संक्रमण फैलाने से रोक सकते हैं।

गर्भावस्था के दौरान एचआईवी संक्रमण का इलाज एवं सावधानी रखकर बच्चों को सुरक्षित रखा जा सकता है।

सामान्यतः छः महीने के उपरांत एचआईवी की जांच कर संक्रमण की स्थिति पता लगाते हैं आज अन्य बेहतर विधियां उपलब्ध हो रही हैं, जिससे 3–5 दिनों के भीतर ही तथा रक्त या थूक के नमूनों में एन्टीबॉडीज का पता लगाया जा सकता है।

एच.आई.वी./एड्स के क्षेत्र में चिकित्सा विज्ञान संस्थान का योगदान

डॉ. प्रद्योत प्रकाश

माइक्रोबायोलॉजी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

दुनिया को अपने चपेट में लेने वाला एड्स रोग ह्यूमन इम्यूनोडेफिसियेंसी वायरस {एच.आई.वी.}, नामक एक विषाणु के संक्रमण से होता है। इस बात की पुष्टि 1980–81 के दौरान फ्रांस और अमेरिका के वैज्ञानिकों ने की थी। सबसे पहले यह संक्रमण समलैंगिक संबंध रखने वाले कुछ पुरूषों में होने की पुष्टि हुई। जब तक इस रोग के फैलने और रोकथाम के तरीकों की जानकारी वैज्ञानिकों को हो पाती, संक्रमित लोगों के साथ यौन संबंध बनाने से यह रोग धीरे–धीरे दुनिया के हर कोने तक पहुँच गया। यह रोग आज संक्रमित खून के प्रयोग व संक्रमित माँ से उनके बच्चों में भी पहुँच रहा है।

यू.एन.एड्स के सन् 2011 के रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2005 में सर्वाधिक 22 लाख मृत्यु पूरी दुनिया में एड्स रोग के वजह से हुई, जो 2010 में घटकर 17 लाख हो गयी। एक दिसम्बर एड्स दिवस के रूप में मनाया जाता है। बीते एक दिसम्बर को हम सभी ने एक प्रण लिया है कि आने वाले कुछ वर्षों में किसी भी व्यक्ति को संक्रमित नहीं होने दिया जायेगा।

पिछले तीस वर्षों में, इस रोग की वजह से होने वाले बदलाव पर नजर डालें तो यह एहसास होता है कि सामाजिक, आर्थिक और चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अनेक बदलाव हुए हैं। अनेक असाध्य रोगों से लड़ने और जीवन जीने की नई ताकत चिकित्सा विज्ञान ने प्रदान की है। एड्स जैसे रोग से ग्रसित रोगियों को समाज में तिरस्कृत नजरों से देखा जाता था, चिकित्सा विज्ञान की नई औषधीय तकनीक और जानकारी ने उन्हें शारीरिक कष्टों से मुक्ति ही नहीं दिलायी, अपितु उनको मानसिक ताकत भी दी। उन्हें सामाजिक व सांस्कृतिक स्तर पर सामान्य जीवन जीने का हक दिया।

अस्सी और नब्बे के दशक में एड्स रोगियों को जो सामाजिक बहिष्कार झेलना पड़ा, वह 2005–06 तक आते–आते मुफ्त चिकित्सा के मुहैया होने से और टी.वी., रेडियो व अखबारों के जरिये जानकारियाँ प्रसारित करने से बहुत हद तक कम हो गया। यह बदलाव कोई जादू का नतीजा नहीं था, बल्कि वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम, विश्व स्वास्थ्य संगठन, सेन्टर फॉर डिसिज़ सर्विलेंस {सी.डी.सी.}, अनेक चैरिटेबल, व सामाजिक संगठनों के पुरजोर वकालत के कारण दुनिया के हर देश के सरकारों को जागृत करने से संभव हो पाया।

भारतवर्ष में पहला एड्स रोगी चेन्नई में वर्ष 1986 में चिन्हित किया गया। अगले कुछ वर्षों में यह महामारी पूरे देश में फैल गयी। भारत दुनिया के कुछ चुनिन्दा देशों में एक था जिसने इसकी भयावहता को समझते हुए वर्ष 1992 में नेशनल एड्स कन्ट्रोल आर्गनाईजेशन {नाको} का गठन किया और प्रत्येक राज्य में इस रोग के रोकथाम के लिए बने अनेक कार्यक्रमों को लागू करने हेतु स्टेट एड्स कंट्रोल सोसाइटी {सैक्स} का गठन किया।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का चिकित्सा विज्ञान संस्थान इस रोग के रोकथाम हेतु इस मुहिम का हिस्सा 1994 में ही बन गया था। संस्थान के माइक्रोबायोलॉजी विभाग द्वारा, 1994 से 2000 तक सर्विलेंस संचालित किया गया, जो इन सात वर्षों में 16915 उन व्यक्तियों का परीक्षण किया, जिसमें इस रोग के संक्रमण होने की संभावना अधिक होती है, जैसे ट्रक ड्राइवर जो अपने कार्यवश कई दिनों या महीनों घर नहीं लौटते और यौन जनित एच.आई.वी. संक्रमण के शिकार होते हैं। इसके अलावा समलैंगिक पुरूषों व कामर्शियल सेक्सुअल वर्कर की भी जाँच की गयी। इन 16 हजार से अधिक लोगों का परीक्षण कर यह पाया गया कि 668 लोग इस विषाणु से संक्रमित हैं।

इस मुहिम का दूसरा चरण 2001–2006 के बीच चला। माइक्रोबायोलॉजी विभाग में वालन्टरी काउन्सेलिंग

व टेस्टिंग सेंटर {वी.सी.टी.सी.} की स्थापना की गयी। इस केन्द्र का मकसद सिर्फ संक्रमण की जानकारी देना नहीं था। यहाँ पदस्थ काउन्सलर, जहाँ एक तरफ संक्रमित व्यक्ति को एक स्वस्थ जीवन जीने की सलाह देते, तो वहीं अन्य सभी को उनके सुरक्षित यौन व्यवहार रखने की सलाह देते।

इस दौरान 33594 व्यक्तियों का परीक्षण किया गया और 4200 को संक्रमित पाया गया। इस दूसरे चरण के अन्त होने से पहले संस्थान के मेडिसिन विभाग में सन् 2005 में एन्टी रिटरोवायरल थिरैपी {ए.आर.टी.} सेंटर स्थापित किया गया। इस केन्द्र का मकसद एड्स रोगियों के नियमित स्वास्थ्य परीक्षण के अलावा नाको द्वारा प्रदत्त मुफ्त दवाओं को मुहैया कराना भी था। संस्थान के एड्स के रोकथाम के प्रयासों को देखते हुए ए.आर.टी. सेंटर को अगस्त 2009 में सेंटर ऑफ एक्सीलेंस {सी.ओ.ई.} का दर्जा मिला और पूर्वी उत्तर प्रदेश व सीमा से सटे अन्य राज्यों के हजारों एड्स रोगी लाभान्वित हुए।

इस रोग से लड़ने की मुहिम का तीसरा चरण 2007–2011 के बीच चला। इस दौरान परीक्षण केन्द्र का नामकरण वी.सी.टी.सी. से बदलकर इन्टीग्रेटेड काउन्सेलिंग टेस्टिंग सेंटर {आई.सी.टी.सी.} कर दिया गया। अब यहाँ कार्यरत काउंसलर को और अधिक जिम्मेदारी दी गयी। इनका काम सभी संक्रमित व्यक्तियों को ए.आर.टी. सेंटर में पंजीकृत कराना और जो व्यक्ति अपना परीक्षण रिपोर्ट नहीं लेने आते, उनके घर तक जाकर उन्हें चिकित्सा प्राप्त करने को प्रेरित करना था। इसके अलावा क्षय रोग, जो एच.आई.वी./ एड्स रोगियों में अधिक नुकसानदेह है, लक्षण दिखने पर उन्हें संस्थान के चेस्ट व टी.बी. विभाग के टी.बी. परीक्षण केन्द्र पर जाँच सुनिश्चित कराना भी इनके कार्य का हिस्सा हो गया। तीसरे चरण में आई.सी.टी.सी. केन्द्र पर 63,109 व्यक्तियों का परीक्षण हुआ और 10,046 लोगों में संक्रमण की पुष्टि हुई।

चित्र 1

चित्र 2

चित्र 3

चित्र 4

आई.सी.टी.सी. माइक्रोबायोलॉजी विभाग में मरीजों की काउन्सलिंग (चित्र 1), एच.आई.वी. जाँच के लिए रक्त का नमूना लेते (चित्र 2), प्रयोगशाला में रक्त के नमूनों में सीडी–4 की (चित्र 3) व एस.आर.एल. में (चित्र 4) जाँच करते तकनीशियन।

एड्स रोगियों की बढ़ती संख्या को देखते हुए नाको व यू.पी.सैक्स द्वारा तीन नये कार्यक्रमों को तीसरे चरण का हिस्सा बनाया गया। पहला स्टेट रेफरेंस लैब {एस.आर. एल.) और दूसरा प्रीवेंशन ऑफ पैरेंट टू चाइल्ड ट्रांसमीशन {पी.पी.टी.सी.टी.) और तीसरा सेक्सुअली ट्रांस्मीटेड इन्फैक्सन({एस.टी.आई.) कंट्रोल प्रोग्राम की शुरुआत की गयी।

एस.आर.एल. का दायित्व न केवल माइक्रो–बायोलॉजी विभाग में चल रहे जाँच केन्द्र की गुणवत्ता सुनिश्चित करना था बल्कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के 9 जनपदों के अस्पतालों में चल रहे जाँच केन्द्रों के गुणवत्ता पर भी नजर रखना था। इसके लिए इन सभी आई.सी.टी.सी., पी. पी.टी.सी.टी. एवं ब्लड बैंकों के तकनीशियनों को समय–समय पर प्रशिक्षित किया गया। इन कार्यों के सही ढंग से क्रियान्वन हेतु एक तकनीकी अधिकारी को एस. आर.एल. में पदस्थ किया गया। संक्रमित माँ से नवजात बच्चे को होने वाले संक्रमण को रोकने हेतु संस्थान के स्त्री रोग विभाग में पी.पी.टी.सी.टी. केन्द्र खोला गया। जहाँ समय रहते संक्रमण पाये जाने पर, इलाज होने के उपरान्त यह संक्रमण 95 फीसदी से अधिक बच्चों में जाने से रोका जा सका।

तीसरा कार्यक्रम एस.टी.आई. {यौन जनित रोगों) के रोकथाम हेतु चलाया गया। इसमें संस्थान के चार विभाग, चर्म व रति रोग, स्त्री रोग, सामुदायिक चिकित्सा और माइक्रोबायोलॉजी विभाग के शिक्षकों ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के जनपदों के चिकित्सकों, नर्सों व तकनीशियनों को अन्य प्रमुख यौन जनित रोगों के निदान हेतु प्रशिक्षित किया। लक्षण के आधार पर इन रोगों के मुफ्त इलाज हेतु यू.पी. सैक्स लखनऊ, नाको द्वारा प्रदत्त दवाओं की सुलभता सुनिश्चित की गयी। अन्य यौन जनित रोगों के रहते एच. आई.वी. संक्रमण की संभावना लगभग दस गुना बढ़ जाती है।

आज की तारीख में, ए.आर.टी. केन्द्र, मेडिसिन विभाग में 16 हजार से अधिक रोगी पंजीकृत हैं। इनमें से हर माह 9 हजार से अधिक रोगी अपना परीक्षण कराने या मुफ्त दवाओं की खेप लेने ए.आर.टी. केन्द्र पहुँचते हैं। ए. आर.टी. केन्द्र की भूमिका यही खत्म नहीं होती, अब यह ए. आर.टी. केन्द्र जिसे सी.ओ.ई. (उत्कृष्टता केंद्र) का दर्जा प्राप्त है, इन एड्स रोगियों के इलाज संबंधी प्रशिक्षण देने हेतु राष्ट्रीय प्रशिक्षण केन्द्र का काम कर रहा है। बीते दो वर्षों मे यह केन्द्र उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, गुजरात व राजस्थान के अनेक ए.आर.टी. केन्द्रों के चिकित्सकों व पारामेडिकल कर्मचारियों को प्रशिक्षित कर चुका है। इन्हें यह प्रशिक्षण देने में मेडिसिन विभाग के शिक्षकों के साथ–साथ बाल रोग, स्त्री रोग, चर्म व रति रोग, कम्यूनिटी मेडिसिन, माइक्रोबायोलॉजी व मानसिक रोग विभाग के शिक्षकों की भी महती भूमिका होती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की हाल के रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि नाको विभिन्न राज्यों के एड्स कंट्रोल सोसाइटी और हर मेडिकल कॉलेज व जनपद अस्पतालों से संचालित इस कार्यक्रमों की वजह से भारत में नए संक्रमित होने वालों की तादाद घटी है। अब जब नाको एड्स के रोकथाम के लिए, अपने चौथे व निर्णायक चरण को शुरू करने जा रहा है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का यह संस्थान एड्स के खिलाफ इस मुहिम में अग्रणी भूमिका निभाने को तैयार है। लोगों में जागरूकता पैदा करना, एड्स से बचने के तरीकों के व्यावहारिक उपाय बताना और प्रकाशन के माध्यम से यह संस्थान इस सर्जनात्मक कार्य में कदम–दर–कदम अग्रसर है।

महामना मदन मोहन मालवीय जी के 150वीं जयन्ती के पुण्य अवसर पर उन्हें स्मरण करते हुए चिकित्सा विज्ञान संस्थान की यह मुहिम उनके विचारों और आदर्शों के प्रति सच्ची श्रद्धांजली है। मालवीय जी का स्वप्न था कि हमारा विश्वविद्यालय सिर्फ मानसिक रूप से समाज को सबल न बनाये, अपितु वह इसे शारीरिक रूप से भी स्वस्थ बनाये। पीड़ित और रोग से ग्रस्त लोगों को जीवन जीने का हक दिलायें, उनके जीवन में हर्ष और उत्साह पैदा करें, जिससे एक स्वस्थ, सबल और उन्नत राष्ट्र का निर्माण हो सके। कहना न होगा कि चिकित्सा विज्ञान संस्थान की यह सर्जनात्मक मुहिम इस कल्पना को यथार्थ में सफलतापूर्वक क्रियान्वित कर रही है और भविष्य में भी यह प्रयास सतत् जारी रहेगा।

दमाः लक्षण, बचाव एवं इलाज

डॉ. जी. एन. श्रीवास्तव

छाती एवं श्वास रोग विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

बढ़ते औद्योगीकरण और विकास जहाँ मानव समाज की भलाई के लिये उपयुक्त हैं वहीं जाने–अनजाने में कई ऐसे कार्य हो रहे हैं जो कि मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक ही नहीं, जानलेवा भी हैं। जंगलों के काटने पर जहां वायुमण्डल में आक्सीजन/कार्बनडाई आक्साइड के समन्वय में गतिरोध पैदा हो रहा है वहीं बढ़ते औद्योगीकरण से कार्बन डाई–आक्साइड का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। नतीजा यह हो रहा है कि इसका सीधा–सीधा प्रभाव हमारे फेफड़े पर पड़ रहा है और दिन प्रतिदिन श्वास सम्बन्धित बीमारी बढ़ती जा रही है। जंगलों की कटान एवं बढ़ते औद्योगीकरण वायुमण्डल के तापमान को और बढ़ा रहे हैं जिससे की ग्लोबल वार्मिंग की समस्या बढ़ती जा रही है। इनका सीधा प्रभाव मनुष्य के दैनिक जिन्दगी पर पड़ रहा है। श्वास सम्बन्धी बीमारी बढ़ती जा रही है। मुख्य रूप से मनुष्य सांस लेने में दिक्कत महसूस करता है और सांस फूलने की बीमारी पैदा हो रही है। दमा, जिसमें सांस का फूलना मुख्य लक्षण है, इसी का दुष्प्रभाव है। आज विश्व में दमा के लगभग 30 करोड़ मरीज हैं जो कि हर पल बढ़ रहे हैं, वहीं भारत में दमा के लगभग 3 करोड़ मरीज हैं जो प्रतिवर्ष बढ़ रहे हैं।

सांस का फूलना दमा का एक लक्षण होता है लेकिन अन्य कई कारण जैसे फेफड़े में पानी आना, प्ल्यूरीसी, न्यूमोनिया, टी.बी. एनीमिया हृदय सम्बन्धी बीमारी में भी श्वास फूलना एक लक्षण है। श्वास नली का किसी आन्तरिक या बाहरी प्रभाव के अन्तर्गत अति संवेदनशील होने के कारण नली में संकुचन व सूजन आ जाती है जिससे कि आन्तरिक नली सकरी हो जाती है, हवा के बहाव में प्रतिरोध उत्पन्न होता है और श्वसन क्रिया तेजी से होती है। यहीं श्वास का फूलना दमा है। दमा के दो कारण होते हैं एक आन्तरिक (आनुवंशिक) दूसरा बाहरी (एलर्जी)। दमा के मरीज में निम्न लक्षण पाये जाते हैं

1. काम/आराम के दौरान श्वास फूलना
2. थकावट
3. छाती में तनाव
4. लगातार खाँसी एवं झागदार बलगम आना
5. श्वांस क्रिया के दौरान सीटी की आवाज
6. सर्दी, जुकाम, गले में खराश एवं खुजली इत्यादि।

यदि किसी बच्चे या बुजुर्ग को उपर्युक्त लक्षण दिखाई दे तो उसे तुरन्त विशेषज्ञ चिकित्सक से जाँच करानी चाहिए, जिससे कि उसके बीमारी को जाना जा सके। मरीज की विस्तृत शारीरिक जाँच के बाद कुछ अन्य जाँच भी बीमारी को जानने में सहायक होते हैं, जैसे कि मरीज के गले से सीटी की आवाज का निकलना, छाती का एक्सरे, खून की जाँच इत्यादि दमा के लिये मुख्य रूप से पल्मोनरी फंक्शन टेस्ट (स्पाइरोमीटर टेस्ट (फूंक टेस्ट)) सबसे अधिक सहायक होती है। आपातकालीन स्थिति में ब्लड गैस एनालिसिस (एबीजी) के जरिये मरीज की भयावहता को जाना जा सकता है।

इस बीमारी में दो अटैक के बीच मरीज बिल्कुल लक्षणविहीन रहता है और उसे कोई परेशानी नहीं होती है। जब मरीज ऐसी वस्तु, वातावरण या भोज्य पदार्थ के सम्पर्क में आता है जो उसके श्वास नली के लिए प्रतिकूल हो तो मरीज में दमा का लक्षण उभर जाता है। ऐसे प्रतिकूल प्रभाव को एलर्जी कहते हैं।

अमूमन एलर्जी निम्न कारणों से होती हैः

1. एकाएक तापमान का बदलना
2. धूल–धुआं
3. मकरन्द, गाजर–घांस, भूसा

4. दवा
5. खाद्य पदार्थ
6. घरेलू वस्तु – अगरबत्ती, खटमल, कालीन/गरम कपड़े की धूल
7. जीवन शैली (सिगरेट, शराब, फास्ट फूड तथा देर रात्रि में भोजन)
8. व्यायाम

इस बीमारी का मूल मंत्र बचाव ही उपाय है। यदि आप अपने एलर्जी को पहचानते हों तो उससे बचें जिससे कि दमा का अटैक न पड़े। बचाव के लिये निम्नलिखित चीजों पर ध्यान दें :

1. एलर्जी को पहचानें (जिस वस्तु के सम्पर्क में आने से आपकी सांस का फूलना बढ़ता है उससे बचें)
2. धूल–धुआं से बचें
3. खाद्य पदार्थ को पहचानें (पुनः खाकर देखें यदि समस्या बढ़ती है तो दोबारा न खायें)
4. जीवन शैली को आवश्यकता अनुसार बदलें।

कवि घाघ जीवन शैली के लिये सुझाव दिये हैं जिससे कि मरीज न केवल दमा के अटैक से बच सकता है बल्कि स्वस्थ जीवन भी जी सकता है।

सावन हर्रे भादो चित
क्वार मास गुड़ खाओ मित
कार्तिक मूली, अगहन तेल
पूष में करें दूध से मेल
माघ मास घी खिचड़ी खायें
फागुन उठके प्राते नहायें
चैत मास में नीम बसहती
बैशाख मास में खायें जड़हती
जेठ मास में जो दिन में सोये
ताकर देखु आसाढ़ में रोये।

अन्य बीमारी जैसे शुगर, ब्लड प्रेशर की तरह दमा के भी मरीज को अपने बीमारी का पूर्वाभास हो जाता है। इस बीमारी में 48 से 72 घंटे पहले प्रारम्भिक लक्षण (सर्दी, जुकाम, गले में खराश, खुजली) का आभास होते ही यदि दवा शुरु कर दे तो दमा के भयावहता से बचा जा सकता है।

इसका इलाज दो प्रकार से किया जाता है

1. बीमारी के अटैक के बीच में बचाव ही इलाज है।
2. बीमारी के दौरान टैबलेट, इन्हेलर (रोटा हेलर, मीटर डोज इन्हेलर, स्पेसर), नेबुलाइजर, इन्जेक्शन, ऑक्सीजन।

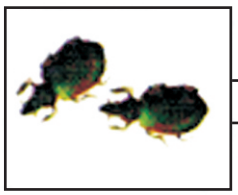
धूल के घुन

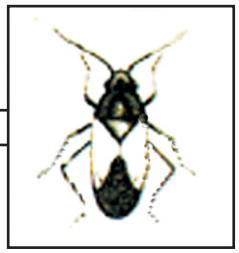
तिलचट्टा

पालतू जानवर

मौसम

धूम्रपान

पराग कण

रोटाहेलर का उपयोग कैसे करें?

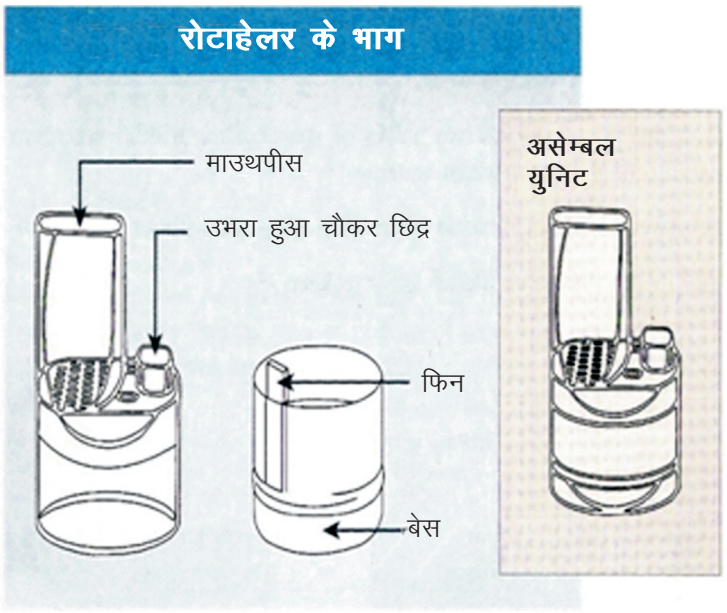

रोटाहेलर उपयोग के लिये तैयार किया जाना

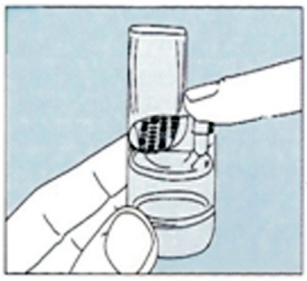

पुनः उपयोग हेतु

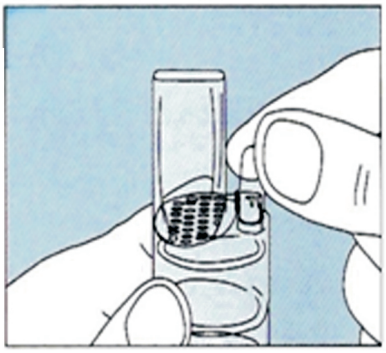

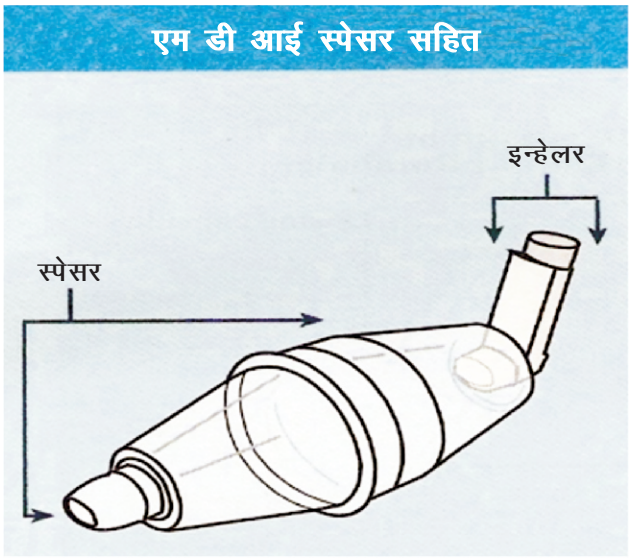

एम डी आई स्पेसर सहित

दमा के अटैक से बचने हेतु उपाय

1. दमा के लक्षण को जानें
2. अपने एलर्जी को पहचानें
3. जीवन शैली में आवश्यकता अनुसार बदलाव लाएं
4. प्रथम लक्षण को नज़रअंदाज न करें और तुरन्त दवा लें।
5. दमा के बीमारी के दौरान दरवाजा खिड़की खोल दें और कपड़ा ढीला रखें।
6. अपने पास हमेशा इन्हेलर रखें एवं सार्वजनिक स्थानों पर लेने में संकोच न करें।
7. इन्हेलर लेने की विधि को अपने चिकित्सक से जरूर समझ लें।

दमा का दौरा पड़ने पर सभी लक्षण अपनी भयावहता या चरम स्थिति में पहुँच जाती है। सांस की नली में संकुचन व सूजन आ जाती है और रक्तचाप गिर जाता है। आक्सीजन की कमी से शरीर के कुछ अंग जैसे नाखून, जीभ, नीले पड़ने लगते हैं। मरीज के खून में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा बढ़ने लगती है। मरीज अचेतावस्था में चला जाता है। उसका अपने शरीर पर नियन्त्रण खत्म हो जाता है। यदि मरीज को पहले से दमा की शिकायत है और उपर्युक्त लक्षण आने लगे तो उसे तुरन्त अस्पताल पहुँचाना चाहिए। घर या कार्य स्थल से अस्पताल ले जाने के पहले मरीज के वस्त्र को ढीला कर दें, कमरे की सभी खिड़की/दरवाजे खोल दें। कमरे में भीड़ न लगायें। यदि इन्हेलर ले रहा हो और लेने की स्थिति में हो तो तुरन्त इन्हेलर दें।

दमा का पूर्ण निदान नहीं है। दमा दम के साथ जाता है। जरूरत है संयमित जिंदगी एवं नियमित दवा की। इसके द्वारा आप ताउम्र लक्षण विहीन रहकर पूरे जीवन को सरल बना सकते हैं।

चिकित्सा विज्ञान संस्थान के श्वास व टी.बी. विभाग में दमा सम्बन्धी सभी जाँच की सुविधा है साथ में इसके उपचार के लिये 24 घण्टे चिकित्सक उपलब्ध रहते हैं। विभाग में अन्य सुविधा जैसे ब्रांकोस्कोपी, अल्ट्रासाउण्ड, पी.एफ.टी., स्लीप लैब, हाई डिपेन्डेन्सी यूनिट की भी सुविधा है।

आँखों में चोट (आकुलर इन्जरी): कारण, जटिलताएं एवं रोकथाम

डॉ. राजेन्द्र प्रकाश मौर्या, प्रो. विरेन्द्र प्रताप सिंह एवं प्रो. महेन्द्र कुमार सिंह

नेत्र विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आँखे प्रकृति द्वारा मनुष्य को दी गयी एक अमूल्य धरोहर है। बिना आंखों के चारों ओर अंधकार है। आंखों को सहेज कर रखना हम सभी का कर्तव्य है। वैसे तो हमारी आंखें प्राकृतिक रूप से पलकों, अस्थि गुहा एवं उसके चारों तरह फैली हुई वसा या चर्बी से सुरक्षित रहती है, परन्तु आज देश में तेजी से बढ़ रहे औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा व्यक्ति की भागदौड़ बढ़ने से आंखों में बाहरी वस्तुओं के प्रवेश करने एवं चोट लगने की सम्भावना भी तेजी से बढ़ रही है।

दृष्टिहीनता हमारे देश के लिए एक अभिशाप है। आंखों में चोट दृष्टिहीनता व दृष्टिबाधिता का एक प्रमुख कारण है। आज पूरी दुनिया में चोट के कारण लगभग 16 लाख व्यक्ति पूरी तरह से अन्धे हैं, जबकि 19 लाख एक आंख से दृष्टिहीन है। 23 लाख लोग दोनों आंखों से दृष्टिबाधित हैं। नेत्र रोग के कारण हॉस्पिटल में भर्ती होने वाले कुल रोगियों में से 5–10 प्रतिशत नेत्र चोट के होते हैं। नेत्रचोट का असर न केवल व्यक्ति विशेष अपितु उसके परिवार, समाज व देश पर भी पड़ता है। कम उम्र में चोट के कारण दृष्टिहीन होने से व्यक्ति आर्थिक रूप से दुर्बल हो जाता है। चोट के ईलाज का खर्च तथा उसके उपरान्त होने वाली विकलांगता के कारण व्यक्ति धनार्जन के योग्य नहीं रह जाता। जिसके कारण वह परिवार, समाज व देश पर बोझ समझा जाने लगता है।

90 प्रतिशत नेत्र चोट रोकने योग्य होते हैं और एक पुरानी कहावत है ''ईलाज से बचाव अच्छा'' है, मगर बचाव तभी सम्भव है जब नेत्र चोट के बारे में पूरी जानकारी हो।

नेत्र चोट के कारण

चोट का कारण बहुत कुछ देश की भौगोलिक परिस्थिति, जलवायु, समाज के रीति–रिवाज, व्यक्ति के जीवन व कार्यशैली पर निर्भर करता है।

चोट की परिस्थिति के आधार पर नेत्र चोट मुख्य रूप से दो तरह के होते हैं। आकुपेशनल व नान–आकुपेशनल।

अ. रोजगार सम्बन्धी {आकुपेशनल} नेत्र चोट

इसमें चोट का कारण व्यक्ति के पेशे से सम्बन्धित होता है। जैसे– फैक्ट्री, कारखाने में काम करने वाले श्रमिकों को मशीन, मशीन के पार्ट्स, छिटककर आने वाले धातुकण, विद्युत व रासायनिक पदार्थ आदि से लगने पर। भवन निर्माण, लकड़ी का कार्य करने, खराद मशीन व वेल्डिंग का कार्य करने वाले मिस्त्री आदि की आंखों में चोट असावधानी के कारण अक्सर लग जाती है।

आँख में फोरेनबॉडी जाने से कार्नियल अल्सर

ब. गैर रोजगार संबंधी (नान–आकुपेशनल) नेत्र चोट

यह कई तरह का होता है जैसेः

घरेलू कार्य के दौरान चोट– घरेलू कार्य जैसे किचन में खाना बनाते समय, बाथरूम व घर की साफ–सफाई के दौरान, बागवानी के समय पौधों की टहनियों आदि से तथा पालतू जानवरों की पूंछ या सींग से भी आंखों में बहुतायत चोट लग जाती है। घरेलू कार्य के दौरान अक्सर सीढ़ी या छत से गिरने की सम्भावना होती है, जिससे कई अंगों {पॉलीट्रामा} के साथ आंखों में भी चोट लग जाती है।

प्रेशर कुकर की सीटी से 1. पलक व नेत्र गोलक का फटना, 2. शल्यक्रिया के उपरान्त

यातायात सम्बन्धी चोट– यातायात सम्बन्धी नेत्र चोट विकसित व विकासशील दोनों देशों में बहुतायत में देखने को मिलता है। यातायात के दौरान चश्मा, हेलमेट नहीं पहनने से आंखों में बाह्य पदार्थ (फारेन बाडी) के जाने की सम्भावना बढ़ जाती है। सिर व चेहरे के चोट के साथ आंख व नेत्र की अस्थि गुहा में चोट लग सकता है। यातायात सम्बन्धी नेत्र चोट अक्सर दोनों आंखों में और गम्भीर होता है।

खेल सम्बन्धी नेत्र चोट (स्पोर्ट रिलेटेड इन्जरी)

हमारे देश में कई तरह के परम्परागत खेलकूद जैसे–गुल्ली डंडा, कबड्डी, तीरंदाजी व कुश्ती एवं आधुनिक खेल जैसे क्रिकेट, हाकी, गोल्फ, टेनिस, बैडमिन्टन आदि से आंखों में चोट अक्सर लग जाती है।

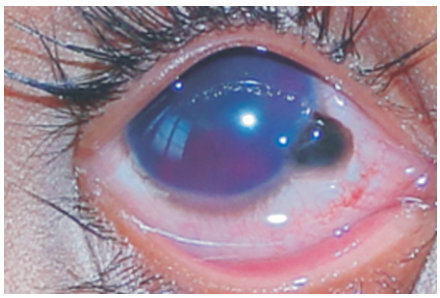

बच्चे की आँख में तीर–धनुष से

1. परफोरेटिंग चोट व आइरिस प्रोलेप्स,

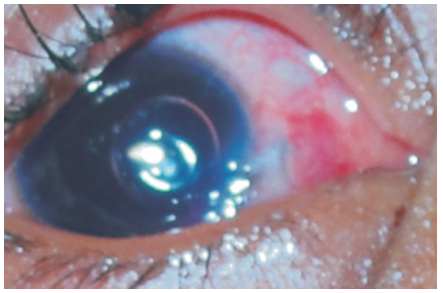

2. शल्यक्रिया के पश्चात

अपराध या मारपीट सम्बन्धी नेत्र चोट (एसाल्ट/वायलेन्स रिलेटेड इन्जरी)

लगभग 15 प्रतिशत आंखों का चोट अपराध या मारपीट सम्बन्धी होता है। इस तरह का चोट अक्सर युवाओं में होता है। इसमें बायीं आंख में ज्यादा चोट लगती है क्योंकि अपराधी ज्यादातर दायें हाथ से वार करता है। इस तरह के चोट अक्सर गम्भीर होते हैं।

1. वृद्ध की आँख में बन्दूक के छर्रे से नेत्र गोलक विच्छेद,

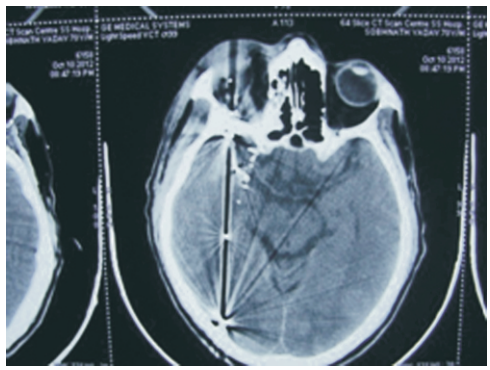

2. सीटी स्कैन– नेत्र गोलक व ब्रेन में छर्रा दर्शाता हुआ।

नेत्र चोट के प्रकार, लक्षण एवं जटिलतायें

चोट के कारक (ट्रामैटिक एजेन्ट) के आधार पर नेत्र चोट मुख्यरूप से दो प्रकार के होते हैं, यान्त्रिक व अयान्त्रिक चोट।

यान्त्रिक (मेकेनिकल) चोट

यह चोट किसी ठोस भौतिक वस्तु से लगती है जो नानपरफोरेटिंग या परफोरेटिंग हो सकती है।

नानपरफोरेटिंग चोट– यह दो प्रकार का होता है– नेत्र श्लेष्मला या स्वच्छपटल का **खरोंच**– इसमें नेत्र श्लेष्मला या स्वच्छपटल का ऊपरी आवरण या पर्त नुकीली वस्तु से चोटिल हो जाती है। इसमें रोगी की आंख से पानी आने लगता है, रोशनी में देखने पर दर्द होने लगता है। यह स्वतः 24 घण्टे में ठीक हो जाता है। धूप से बचने के लिए काला चश्मा लगाना चाहिए। संक्रमण से बचने के लिए एन्टीबॉयोटिक ड्राप तथा आराम के लिए लूब्रिकेन्ट ड्राप जल्दी–जल्दी डालना चाहिए। **कन्ट्यूशन** यह बिनाधार वाली वस्तु जैसे गेद, मुक्का आदि से चोट लगता है। इसमें रोगी की स्वच्छपटल या कार्निया से दृष्टिपटल या रेटिना तक को झटका लग सकता है, जिसके फलस्वरूप रोगी को तत्काल दिक्कत हो सकता है या बाद में चलकर कुछ नेत्र दोष जैसे द्वितीयक सम्बलबाई, चोट जन्य मोतियाबिन्द या परितारिका–रोमपिण्ड शोध (आइरीडो– साइक्लाइटिस) या नेत्र गोलक का बैठना आदि हो जाता है।

कन्ट्यूशन से तत्काल होने वाली दिक्कतें

पलक में सूजन या रक्त एकत्रित होने से पलक नीली हो जाती है जिसे ''ब्लैक आई'' कहते हैं। इसके लिए बर्फ से सेंकाई तथा सूजन कम करने की दवा दी जाती है। नेत्रश्लेष्मा में चोट से रक्तस्राव हो जाता है जिसे ''सबकन्जक्टाइवल हैमरेज'' कहते हैं। इसके लिए भी एन्जाइम (सिरेसीयोपेप्टाइडेज या काइमोट्रिप्सीन) की गोली लाभदायक होती है।

मारपीट के कारण आँख में सबकन्जक्टाइवल हैमरेज

कार्निया या स्वच्छ पटल के पीछे अग्रकोष्ठ में रक्त एकत्रित होने को ''ट्रॉमेटिक हाईफीमा'' कहते हैं। यदि यह लम्बे समय तक अग्रकोष्ठ में पड़ा रह जाय तथा साथ में नेत्रगोलक का आन्तरिक दबाव बढ़ा हो तो, स्वच्छपटल भूरे रंग का हो जायेगा और रोगी की रोशनी स्थायी रूप से कम हो जाती है।

स्वच्छपटल विच्छेद एवं ट्रोमेटिक हाईफीमा

परितालिका (आइरिस) में चोट के कारण पुतली या प्यूपील सिकुड़ या स्थायी रूप से फैल सकती है। कभी–कभी पुतली (आइरिस) फटकर रोमपिण्ड (सिलियरी बाडी) से अलग हो जाता है जिसे आइरीडोडायलसिस कहते हैं। इसके लिए शल्यक्रिया करने की आवश्यकता हो जाती है। सिलियरी बाडी के नष्ट होने से आंखों का आन्तरिक दबाव घट जाता है तथा आंख बैठ सकती है। लेन्स या मोती में चोट लगने से लेन्स अपनी जगह से खिसक जाता है या लेन्स की झिल्ली फटने से ''चोट जनित मोतियाबिन्द'' हो जाता है। सिलियरी बाडी की रक्त वाहिनियों के फटने से कचाभद्रव में रक्त भर जाता है जिसे ''विट्रियस हैमरेज'' कहते हैं। इसमें रोगी को कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है।

दृष्टिपटल या रेटिना में चोट लगने पर, परदे के पिछले ध्रुव पर सफेद बादल जैसे ''बर्लिन सोफ'' हो जाता है जो धीरे–धीरे ठीक हो जाता है। चोट से दृष्टिपटल के पीतबिन्दु या ''मैकुला में छिद्र'' हो सकता है तथा ''दृष्टिपटल विच्छेद'' (रेटिनल डिटेचमेन्ट) भी हो सकता है। चोट अधिक तीव्र होने पर नेत्रगोलक फट सकता है। रोगी स्थायी रूप से दृष्टिहीन हो सकता है।

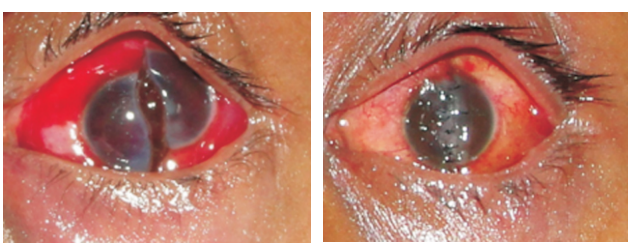

चोट से नेत्र गोलक का फटना (शल्यक्रिया से पूर्व एवं पश्चात)

छिद्रित (परफोरेटिंग) चोट– यह नुकीले या तेजधार वाले यन्त्र से चोट लगने पर होता है। इस तरह के चोट में जीवाणुओं, टिटनेस या फंगस के संक्रमण की सम्भावना ज्यादा होती है। संक्रमण, सहानुभूति स्वरूप रोगी की दूसरी आंख को भी प्रभावित कर सकती है जिसे ''सिम्पैथटिक आपथेल्मिया'' कहते हैं।

आंखों में बाह्य पदार्थ का प्रवेश

आज के भागदौड़ व व्यस्त जीवन में बाह्य वस्तु (फारेन बॉडी) जैसे धूल, कोयला, पत्थर, लोहे के कण, घासफूस, कीड़े आदि के आंख में जाने की सम्भावना बढ़ रही है। ये वस्तुएं या तो पलक में फंस जाती है या रगड़ने के कारण कार्निया में धंस जाती है, जिससे रोगी की आंख गड़ने लगती है तथा लाल होकर कीचड़ व पानी आने लगता है। आंख में बाह्य वस्तु के जाने पर मलना या रगड़ना नहीं चाहिए, अन्यथा कार्निया के अन्दर घाव (अल्सर) हो जाता है। यदि बाह्य पदार्थ लोहे, तांबे व जस्ते का हो तो मवाद बनने की सम्भावना अधिक हो जाती है। उपर्युक्त परिस्थिति में बाह्य वस्तु को शीघ्र नेत्र सर्जन से निकलवाना चाहिए।

आँख में फोरेनबाडी (चींटी)

अयान्त्रिक चोट (नानमेकेनिकल) चोट

इसमें चोट किसी यन्त्र के बजाय रासायनिक पदार्थ, ताप, तेज प्रकाश या विकिरण से लगती है।

आँखों का जलना

गर्म वस्तु जैसे– गर्म पानी, दूध, चाय, गर्म कोयला तथा पटाखे आदि से आंखों के जलने की सम्भावना घर एवं फैक्ट्री में कार्य करते वक्त रहती है।

गर्म पदार्थ के सम्पर्क से आंख की पलक, झिल्ली ज्यादातर लोगों में जल जाती है। ऐसा होने पर आंखों को ठण्डे पानी से धोकर एण्टीबॉयोटिक एवं स्टेरॉयड ड्राप, लूब्रिकेन्ट व एट्रोपीन मलहम आंख में डालना चाहिए।

बच्चे की दाँयीं आँख पटाखे से जल गयी है।

रासायनिक पदार्थ से जलना

रासायनिक पदार्थों जैसे– अम्ल, क्षार या अमोनिया गैस आदि का सम्पर्क घर में बाथरूम व आभूषण साफ करते समय, आइसक्रीम फैक्ट्री, प्रयोगशाला आदि में कार्य करते समय हो जाता है।

अम्ल से जलना– हाइड्रोक्लोरिक, सल्फयूरिक एवं नाइट्रिक अम्ल क्षार की तुलना में कम हानिकारक होते हैं। अम्ल आंख के प्रोटीन को गला कर अघुलनशील प्रोटीनेट बना देते हैं जो अम्ल को आंख की गहराई तक जाने से रोकता है। अम्ल आंख में जाने पर, आंख को साधारण जल या सामान्य लवण के पानी (नारमल सैलाइन) से अच्छे से धोना चाहिए। एट्रोपिन, एण्टीबॉयोटिक स्टेरायड व लुब्रिकेन्ट आई ड्राप डालना चाहिए।

क्षार से जलना – चूना, कास्टिक, पोटाश व सोडा तथा अमोनियम हाइड्रोक्साइड अम्ल की तुलना में ज्यादा खतरनाक होता है, क्योंकि क्षार, कोशिकाओं के प्रोटीन को अर्धतरल प्रोटीनेट बनाता है जो घुलनशील होता है तथा क्षार को गहराई तक पहुंचने में मदद करता है। जिसके कारण कार्निया व कन्जक्टाइवा अधिक नष्ट हो जाते हैं। बाद में चलकर आंखों की पलक व नेत्रश्लेष्मला (कन्जक्टाइवा) आपस में सट जाता है। जिसे सिम्वलीफरान कहते हैं। इसके लिए शल्यक्रिया अनिवार्य हो जाता है।

विद्युत एवं विकिरण से चोट

सिर व आंख के पास विद्युत का सम्पर्क होने से 'इलेक्ट्रिक मोतियाबिन्द' एवं आंख के परदे में रक्तस्राव तथा दृष्टि तंत्रिकातन्तु में सूजन आ सकती है।

सूर्य की किरण एवं बेल्डिंग के समय निकलने वाली अल्ट्रावायलेट व इन्फ्रारेड किरणों से आंख में ''फोटो आफ्थैलामिया'' हो जाता है। इसमें रोगी की आंख में लाली, दर्द व तेज पानी आने लगता है। ऐसे में आंखों को ठण्डे पानी या बर्फ से सेकना चाहिए तथा एण्टीबॉयोटिक, लुब्रिकेन्ट व स्टेरॉयड का प्रयोग करना चाहिए।

नेत्र चोट की रोकथाम

1. दो पहिया वाहन चलाते समय हैलमेट या अच्छी गुणवत्ता के धूप के चश्में का इस्तेमाल अवश्य करना चाहिए।
2. बाह्य पदार्थ {फारेन बाडी} के आंख में जाने पर आंख को रगड़ना या मलना नहीं चाहिए। अपितु स्वच्छ पानी से कई बार छींटा मार कर धोना चाहिए। स्वच्छ रूई से निकालने का प्रयास करें यदि सम्भव न हो तो, तत्काल नजदीकी नेत्र विशेषज्ञ को दिखायें।
3. जहाँ तक सम्भव हो रात्रि में मोटर वाहन सावधानी पूर्वक चलानी चाहिए, क्योंकि गाड़ी की तेज हेडलाइट की चमक से दुर्घटना की सम्भावना रहती है।
4. शराब पीकर तथा तेज रफ्तार से गाड़ी नहीं चलानी चाहिए। नशे की हालत में आंखों की रोशनी धुंधली हो जाती है। दूरी का सही निर्णय नहीं हो पाता है, तथा मन व शरीर का नियन्त्रण नहीं रहता है, जिससे दुर्घटना की सम्भावना बढ़ जाती है।
5. बच्चों को नुकीली वस्तुओं या खिलौनों जैसे चाकू, कैंची, तीर–धनुष व गुल्ली–डंडा आदि से न खेलने दें।
6. बच्चों को त्यौहार विशेष पर पटाखे, आतिशबाजी से दूर रखना चाहिए। हमेशा आतिशबाजी के समय बड़ों को साथ में होना चाहिए।
7. सुर्ती या खैनी बनाने के लिए प्रयोग में आने वाले चूने का ट्यूब बच्चों से दूर रखना चाहिए। चूना व कलर करते समय पेन्टर को भी बचाव हेतु चश्मा लगाना चाहिए।
8. प्रयोगशाला में प्रयोग करते समय आंखों के बचाव हेतु विशेष ध्यान देना चाहिए। किसी प्रकार के रासायनिक पदार्थ के आंखों में चले जाने पर तुरन्त स्वच्छ एवं ठण्डे पानी से देर तक धोना चाहिए तथा ईलाज हेतु नजदीकी नेत्र विशेषज्ञ से अविलम्ब सम्पर्क करना चाहिए।
9. वेल्डिंग करते समय पराबैगनी या अल्ट्रावायलेट निरोधी शीशे या चश्मे का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।
10. कारखानों में कार्य करने वाले मजदूरों को नेत्र सुरक्षा संबंधी जानकारी अवश्य देनी चाहिए तथा उनका समय–समय पर नेत्र परीक्षण कराते रहना चाहिए।

आधुनिक कोशिका और जीन चिकित्सा पद्धतियाँ

प्रो. राजावशिष्ठ त्रिपाठी

आणविक जीवविज्ञान शाखा, मॉलिकुलर बॉयोलाजी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान

मनुष्य की तमाम बीमारियों का इलाज आधुनिक कोशिका एवं जीन चिकित्सा पद्धतियों को अपनाकर बड़े कारगर ढ़ंग से किया जा सकता है। इन दोनों चिकित्सा पद्धतियों का विकास आणविक जीवविज्ञान के मौलिक अन्वेषणों पर आधारित है जिनमें निरन्तर प्रगति हो रही है। मनुष्य शरीर की रचना एवं कार्यिकी की मूल इकाई कोशिका होती है जिसके केन्द्रक में स्थित मनुष्य का जीनोम् (सम्पूर्ण आनुवंशिकीय पदार्थ) 23 जोड़े गुणसूत्रों में विभाजित है। इनमें से 22 जोड़े आटोजोम्स एवं एक जोड़ा (X Y) लिंग गुणसूत्र कहलाते हैं। जीव की शरीर रचना एवं कायिकी गुणसूत्रों पर स्थित उन अणुओं द्वारा होती है जिनको जीन कहते हैं। जीन अपने अन्तर्निहित जीवन की सूचना कोशिका के मुख्य अवयव प्रोटीन का निमार्ण करके करते हैं। वस्तुतः कोशिका एवं उससे उपजे मनुष्य का जन्म, कार्य एवं मृत्यु का निर्धारण कोशिका के केन्द्रक में उपस्थित जीन समूह की प्रमुख भागीदारी से होता है।

गुणसूत्रों की संख्या या बनावट अथवा उन पर स्थित एक या कई जीन में खराबी के कारण मनुष्य शरीर मे बीमारियाँ होती हैं जिनकी शुरूआत को तीन प्रमुख समूहों में बांटा जा सकता है : जन्म से पहले, जन्म के दौरान एवं जन्म के बाद। इन तीनों स्थितियों में मनुष्य का जीनोम अपने निकट के वातावरण से प्रभावित होकर निरंतर सक्रिय रहता है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि हर दस में से एक व्यक्ति के जीवन में आनुवंशिक बीमारियां हो सकती हैं, जिनकी नींव जन्म से पहले पड़ चुकी होती है। आनुवांशिक बीमारियों में कुछ रोग जैसे– गंजापन, बौनापन, रतौंधी आदि वंशानुक्रम से एवं कुछ जैसे– कैंसर कोशिकाओं के आनुवंशिक परिवर्तन के नाते होते हैं। अधिकांश मनुष्य जन्म के बाद मृत्यु तक की यात्रा में अपनी जीवन शैली, खान–पान एवं वातावरण के प्रभाव में बीमारियां इकट्ठा कर लेते हैं। आधुनिक शोध कार्यों से पता चलने लगा है कि मनुष्य के स्वास्थ्य प्रबन्धन में कोशिका एवं जीनोम् के साथ–साथ खान–पान, जीवन शैली एवं पर्यावरण का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। आनुवांशिक, जीवन शैली, खान–पान एवं पर्यावरण के प्रभाव से उत्पन्न मनुष्य शरीर की सभी बीमारियों का इलाज कोशिका एवं जीन चिकित्सा पद्धति से संभव है।

चित्र 1: मनुष्य शरीर की एक कोशिका एवं उसके केन्द्रक में स्थित गुणसूत्र। नेशनल ह्यूमन जीनोम संस्थान, यू.एस.ए. की वेब साइट से आभारपूर्वक लिये गये इस चित्र में यह दर्शाया गया है कि केन्द्रक में स्थित गुणसूत्रों के ऊपर डी.एन.ए., जो जीन की रचना करते हैं, कैसे स्थापित हैं।

कोशिका चिकित्सा

कोशिका चिकित्सा के अन्तर्गत पूरी कोशिका को बीमारियों के इलाज के लिए उपयोग में लाया जाता है। इस चिकित्सा पद्धति का ऐतिहासिक अभिलेख लगभग 200 साल पुराना है, जिसमें एक मनुष्य की रक्त कोशिकाओं को दूसरे मनुष्य में ट्रान्सफ्यूज किया गया था। कोशिका चिकित्सा का आधुनिक स्वरूप काफी समृद्ध हो चुका है और अपने कई रूपों में एक लम्बी अवधि से मनुष्य के स्वास्थ्य प्रबन्धन में सशक्त संभावनाओं को जन्म दे रहा है। इस चिकित्सा पद्धति की एक प्रमुख उपलब्धि स्टेम (मातृ) कोशिका चिकित्सा है। स्टेम कोशिकाएँ ऐसी कोशिकाएँ है जो विभाजित होकर खुद को जन्म देती हैं और आवश्यकता पड़ने पर दूसरी नई कोशिकाओं को बनाती हैं। मनुष्य शरीर के अन्दर लगभग 220 से ज्यादा तरह की कोशिकाएँ मौजूद हैं जो प्रतिदिन हमारे शरीर के ऊतकों एवं अंगों की कार्य प्रणाली को सुचारू रूप से चलाकर हमारे जीवन की व्यवस्था का संचालन करती हैं। मनुष्य शरीर के अंग जब क्षतिग्रस्त या बीमार हो जाते हैं तो स्टेम कोशिकाएँ स्वयं पुनर्निर्मित होकर अलग–अलग स्तरों पर ऊतकों या अंगों में आंशिक या पूर्ण नवनिर्माण करने की विशेषता एवं उच्च क्षमता द्वारा कोशिकाओं को सुधारने या बदलने में सक्रिय भूमिका निभाती हैं।

मनुष्य स्वास्थ्य प्रबन्धन में स्टेम कोशिकाओं के महत्त्वपूर्ण योगदान को देखते हुए दुनिया भर की प्रयोगशालाओं में लगातार शोधकार्य हो रहे हैं। बीमार ऊतकों या अंगों की अपनी स्टेम कोशिकाएँ जब संख्या या गुणवत्ता की कमी के नाते क्षति या बीमारी को सुधारने के लिए पर्याप्त नहीं होती हैं तो उत्तम स्रोतों से प्राप्त अधिक संख्या में स्टेम कोशिकाओं का प्रत्यारोपण करने से ऊतक या अंग विशेष की क्षति या बीमारी को सुधारने का काम प्रभावशाली तरीके से किया जा सकता है। स्टेम कोशिकाएं कई स्रोतों से प्राप्त की जा सकती हैं जिसमें भ्रूण से प्राप्त कोशिकाओं को भ्रूण स्टेम कोशिका एवं अस्थी मज्जा, गर्भनाल रक्त, एडिपोज वसा से प्राप्त स्टेम कोशिकाओं को एडल्ट (वयस्क) स्टेम कोशिका कहते हैं। मनुष्य की त्वचा कोशिका को भी एक विशेष विधि 'न्यूक्लियर रिप्रोग्रामिंग' से स्टेम कोशिका में परिवर्तित किया जा सकता है। अभी हाल ही में शोधकर्ताओ की एक टीम ने सोमैटिक सेल न्यूक्लियर ट्रांसफर तकनीक का इस्तेमाल करते हुए मानव शरीर की त्वचा कोशिकाओं से भ्रूण स्टेम कोशिकाओं के समतुल्य कोशिका का निर्माण कर लिया है।

स्टेम कोशिका चिकित्सा द्वारा मानवों में प्रचलित बड़ी बीमारियों जैसे डाइबिटिज, अल्जाईमर, स्पाईनल कार्ड ईन्जरी, कैंसर, हृदय रोग, पारकिंसन, मलटिपल स्क्लोरोसिस, स्ट्रोक, रीढ़ की हड्डी की चोट, इम्यून सिस्टम एवं परिसंचरण तंत्र की बीमारियाँ, नरम ऊतक रोग, घाव के धीरे भरने की समस्या और अन्य कई बीमारियों का उपचार किया जा सकता है। मनुष्य की लाइलाज बीमारियों के लिए स्टेम कोशिका का चिकित्सा के अंतिम विकल्प के रूप में उपयोग होना शुरू हो गया है। स्टेम कोशिका चिकित्सा पद्धति अभी भी प्रयोगों के दौर से गुजर रही है इसे आम बनाने से पहले सुरक्षा सहित अन्य चुनौतियों का सामना करना जरूरी है क्योंकि स्टेम कोशिका से टयूमर बनने और प्रतिरक्षा अस्वीकृति का संकट है। फिर भी लगातार शोधकार्य से वर्तमान में सुरक्षित और प्रभावशाली स्टेम कोशिका बोन मेरो प्रत्यारोपण की चिकित्सा विश्व के कई देशों में उपलब्ध है। भारत में स्टेम कोशिका चिकित्सा अभी शुरूआती दौर में देश के कुछ गिनी चुनी जगहों पर कुशल चिकित्सकों के निर्देशन में संपादित हो रही है। कोशिका चिकित्सा चुनने की प्रक्रिया में सावधानी बरतने की जरूरत है और मरीजों को उन्हीं चिकित्सकों के पास सहयोग के लिए जाना चाहिए जो प्रमाणिक विधि से इस चिकित्सा पद्धति के विकास कार्य में लगे हुए हैं। उन चिकित्सकों से बचना चाहिए जो 'पब्लिसिटी स्टन्ट' कर इस नई चिकित्सा पद्धति से मरीजों के हित को नजरअन्दाज करते हुए केवल धन उगाहना चाहते हैं। स्टेम कोशिकाओं के उपयोग से चिकित्सा जगत में अभूतपूर्व परिवर्तन की सम्भावना स्पष्ट दिख रही है और शायद सिर्फ एक या दो दशकों में स्टेम कोशिका प्रत्यारोपण से स्वास्थ्य प्रबन्धन आम बात हो जाए। भारत को स्टेम कोशिका चिकित्सा की तमाम विलक्षण संभावनाओं को प्रमाण आधारित शोधकार्य द्वारा मूर्त रूप देकर विश्व में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाने की कोशिश करनी चाहिए। यदि ऐसा होता है तो स्टेम कोशिका चिकित्सा प्रौद्योगिकी (बायोटेक्नालॉजी) सूचना प्रौद्योगिकी की तरह भारत के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।

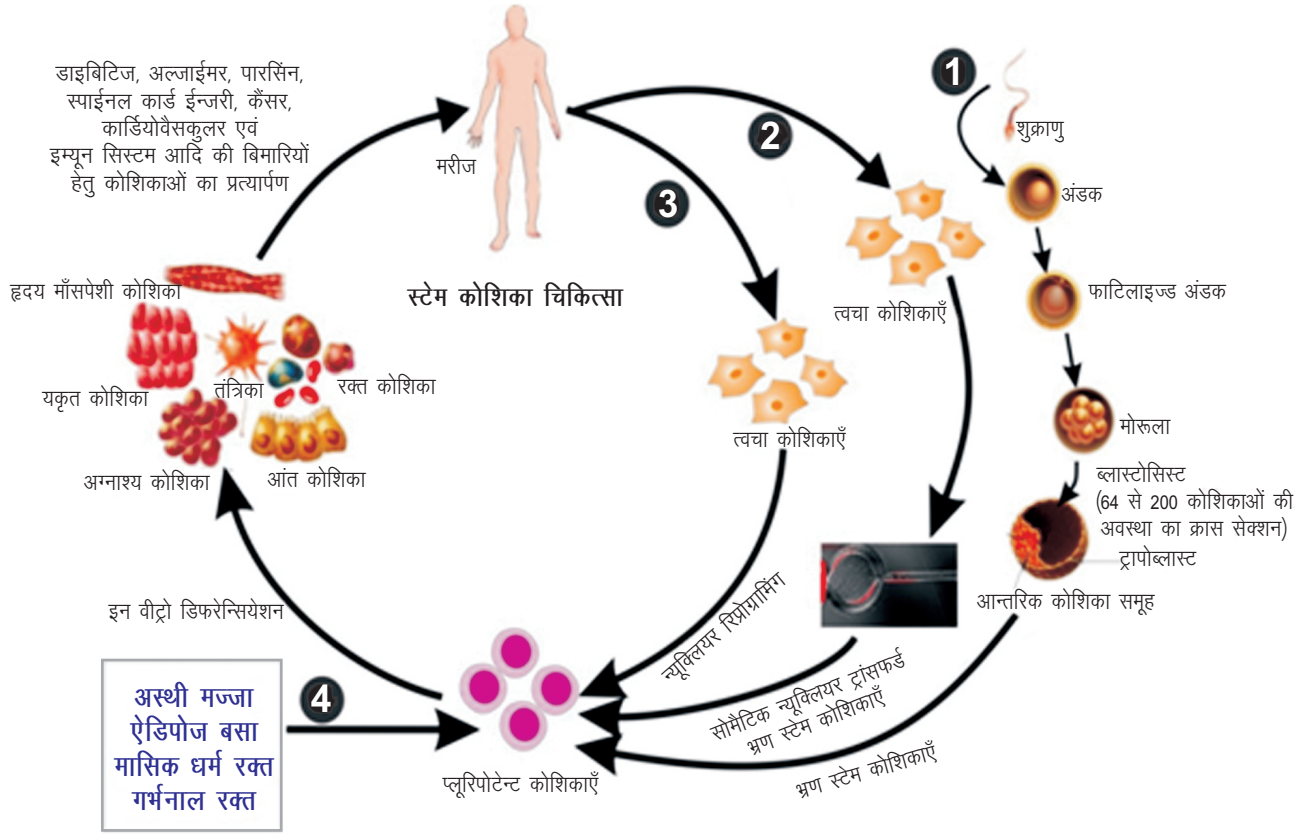

चित्र 2: स्टेम कोशिकाओं के विविध स्रोत एवं चिकित्सा पद्धति द्वारा उपचार की क्रमिक अवस्थायें। भ्रूण स्टेम या भ्रूण स्टेम जैसी कोशिकाओं को 1) भ्रूण से, 2) सोमैटिक सेल न्यूक्लियर ट्रान्सफर से और 3) सोमैटिक कोशिका की न्यूक्लियर प्रोग्रामिंग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वयस्क स्टेम कोशिका के स्रोत के रूप में 4) अस्थि मज्जा, ऐडिपोज वसा, मासिक धर्म रक्त एवं गर्भनाल रक्त आदि प्रमुख हैं। इन सभी स्रोतों से प्राप्त स्टेम कोशिकायें 'प्लूरिपोटेन्ट' होती हैं जिनको शरीर के बाहर टिशू कल्चर विधि से डिपरेन्सियेशन करा कर यकृत, हृदय माँसपेशी, तंत्रिका, आँत, अग्नाशय, रक्त आदि कोशिकाओं में तब्दील कर विभिन्न बीमारियों का इलाज हो सकता है।

जीन चिकित्सा

जीन चिकित्सा बीमारियों के उपचार के लिए एक नयी एवं प्रायोगिक चिकित्सा पद्धति है जिसमें मरीज की कोशिकाओं में जीन की खराबी को ठीक कर बीमारियों को कम करने या रोकने की कोशिश होती है। चूंकि मनुष्य शरीर में पायी जाने वाली लगभग सभी कोशिकाओं के केन्द्रक में जीन होते हैं इस नाते जीन चिकित्सा सब पर लागू हो सकती है। शरीर की समस्त कोशिकाओं को दो प्रमुख समूहों में बाँटा जा सकता है। एक वे जो शरीर की रचना करती है जिन्हे सोमैटिक कोशिका कहा जाता है। और दूसरी वे जिन्हे जर्मलाईन कोशिका का नाम दिया गया है जैसे अंडे एवं शुक्राणु। इस तरह जीन चिकित्सा को कोशिकाओं के आधार पर जर्मलाईन और सोमैटिक जीन चिकित्सा दो प्रमुख वर्गों में बाँट दिया गया है जर्मलाईन कोशिकाओं का उपयोग कर जीन चिकित्सा स्थायी परिवर्तन कर वंशानुगत बीमारियों को समाप्त कर सकती है। तकनीकी जटिलता एवं उपचार के प्रभाव की अनिश्चितता के नाते जीन चिकित्सा के इस विधि में विशेष प्रगति नहीं हो पा रही है। जर्मलाईन कोशिकाओं का स्थायी परिवर्तन और वंशानुगत पीढ़ी दर पीढ़ी प्रभाव के नाते भी बहुत सावधानी बरतने की जरूरत पड़ रही है। तुलनात्मक स्तर पर सोमैटिक कोशिकाओं का उपयोग कर की गई जीन चिकित्सा काफी प्रभावी ढंग से आगे बढ़ी है। सोमैटिक जीन चिकित्सा अमूमन अस्थायी एवं मरीज की शरीर तक ही सीमित रहती है, संतानो में आगे नहीं बढ़ती। आज तक जीन चिकित्सा की अधिकांश

विधियाँ सोमैटिक कोशिका को लेकर ही की गयी हैं। सोमैटिक जीन चिकित्सा को दो प्रमुख विधियों द्वारा उपयोग में लाया गया है; एक वह, जिसे 'इक्स वीवो' कहते है, जिसमें कोशिकाओं (जैसे रक्त एवं अस्थिमज्जा) को शरीर के बाहर निकालकर उनमें नया थिराप्यूटिक जीन डालने के बाद मरीज के शरीर में बीमारियों के उपचार हेतु डाला जाता है। दूसरी विधि, जिसे 'इन वीवो' कहते हैं, थिराप्यूटिक जीन को सीधे मनुष्य शरीर की कोशिकाओं में वेक्टर द्वारा पहुँचाती है।

थिराप्यूटिक जीन को कोशिका में पहुँचाने के लिए इन वीवो सोमैटिक जीन चिकित्सा दो प्रमुख विधियों को उपयोग में लाती है। एक (नान–वायरल), थिराप्यूटिक जीन को लिपिड के साथ काम्पलेक्स (लाइपोसोम) बनाकर और दूसरी (वायरल), थिराप्यूटिक जीन को वायरस के अन्दर पैकेज कराकर। नान–वायरल विधि वायरल विधि से कई मायनो में उपयोगी एवं उत्तम दिखती है क्योंकि इसमें वायरस से जुड़ी हुई समस्याएं नहीं होती हैं और जीन चिकित्सा के लिए अधिक मात्रा में थिराप्यूटिक जीन काम्पलेक्स (लाइपोसोम) बनाया जा सकता है। इस विधि की उपयोगिता वायरल विधि से इस नाते कम हो जाती है कि प्रत्यारोपित थिराप्यूटिक जीन का एक्सप्रेशन (प्रदर्शन) मनुष्य शरीर की कोशिकाओं में कम देखा गया है। नान–वायरल विधि की तुलना में वायरल विधि से प्रत्यारोपित थिराप्यूटिक जीन का एक्सप्रेशन मनुष्य शरीर की कोशिकाओं में कई गुना ज्यादे देखा गया है जो जीन चिकित्सा के लिए आश्यक है। चूंकि वायरस प्राकृतिक रूप से जीन को एक कोशिका से दूसरी कोशिका में ले जा सकते हैं इस नाते वैज्ञानिकों ने वायरल विधि को काफी महत्त्व दिया है। इस विधि के अन्तर्गत एडिनोवायरस, एडिनो–असोसिऐटेड वायरस, रिट्रोवायरस एवं लेन्टीवायरस आदि का उपयोग कर जीन चिकित्सा के सम्भावनाओं को बल मिला है। चित्र संख्या 3 में एडिनोवायरस का उपयोग कर जीन चिकित्सा की विधि को दर्शाया गया है।

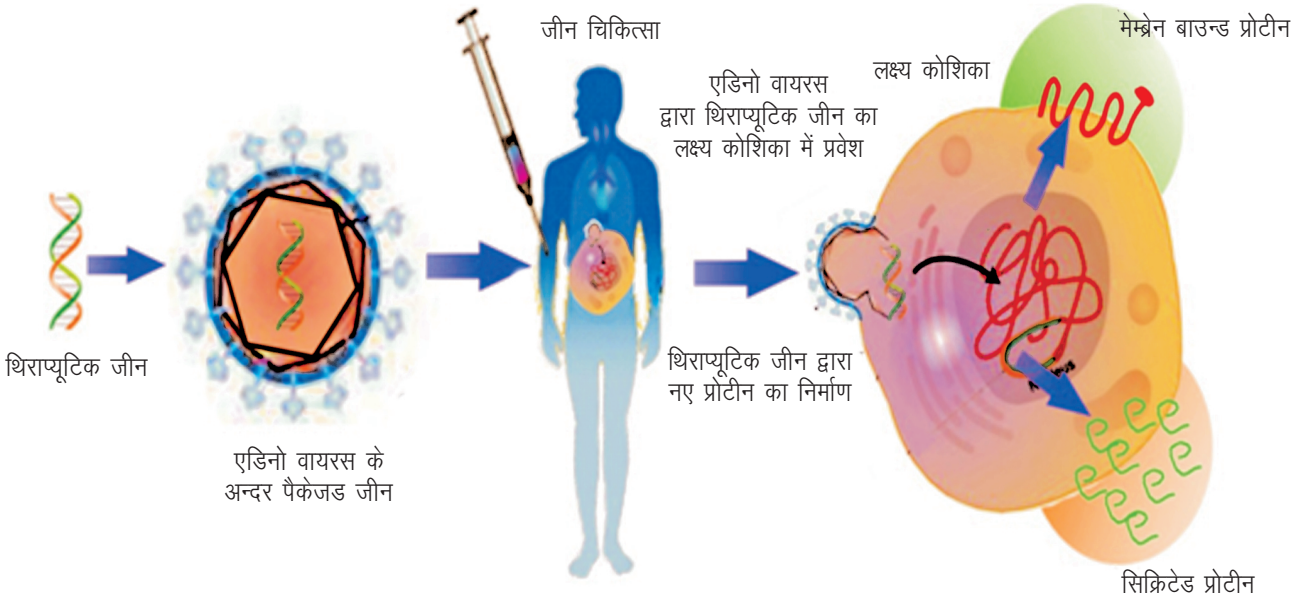

चित्र 3: एडिनोवायरल सोमैटिक जीन चिकित्सा पद्धति। एडिनोवायरस के अन्दर पैकेज्ड थिराप्यूटिक जीन को मनुष्य शरीर में डाला जाता है जहाँ एडिनोवायरस द्वारा थिराप्यूटिक जीन का लक्ष्य कोशिका में प्रवेश होता है और लक्ष्य कोशिका नये उपयोगी प्रोटीन का निर्माण कर ऊतक या अंग की बीमारी को कम या ठीक करती है।

सैद्धान्ति रूप से मनुष्य शरीर की सभी बीमारियों का इलाज जीन चिकित्सा पद्धति से हो सकता है। वर्तमान में जीन चिकित्सा पद्धति का उपयोग कुछ चुनी हुई बीमारियों जैसे कि कैंसर, हृदय रक्त रोग, डायबिटिज, सिस्टिक फाईब्रोसिस, चर्म रोग, रक्त रोग एवं अन्य लाईलाज बीमारियों के लिए प्रयोग के तौर पर ही आगे बढ़ रहा है। जीन चिकित्सा पद्धति का उपयोग कर वैज्ञानिकों ने मनुष्यों में पाई जाने वाली उन बीमारियों पर भी ध्यान देना शुरू कर दिया है जो देखने, सुनने, सूंघने, चलने एवं स्वाद को प्रभावित करती हैं।

यद्यपि जीन चिकित्सा को विकसित करने का कार्य तेजी से हुआ है फिर भी इस पद्धति को आम उपयोग में लाने के लिए और शोधकार्य की जरूरत है। जीन चिकित्सा, कोशिका चिकित्सा पद्धति के साथ, निश्चित ही एक उत्तम एवं उपयोगी भविष्य की ओर अग्रसर है। शोधकार्य की दशा एवं दिशा ऐसी ही बनी रही तो ये दोनों चिकित्सा पद्धतियाँ आम जन तक पहुँचने में सफल हो जाएंगी। ऐसा लगता है कि कोशिका एवं जीन चिकित्सा पद्धतियाँ अलग–अलग और एक साथ मिलकर मनुष्य के स्वास्थ्य प्रबन्धन की प्रमुख धारायें बन जाएंगी। मैं उस दिन की कल्पना करता हूँ जब चिकित्सक मरीज के इलाज के लिए उसकी अपनी स्टेम कोशिकाओं का उपयोग कर रियल टाइम कोशिका चिकित्सा पद्धति अपनायेगें। पराकाष्ठा तो तब होगी जब चिकित्सकों का समूह स्टेम कोशिका चिकित्सा के साथ जीन चिकित्सा को जोड़कर मनुष्य की सभी बीमारियों का इलाज करने में समर्थ होगा। आईये, सुनहरा सपना देखते हैं और भविष्य उन्ही का है जो सुनहरे सपने देखते हैं।

जोड़–दर्द (आर्थराइटिस) के निदान में पैथोलॉजी जाँच की भूमिका

प्रो. ऊषा एवं डॉ. शशिकांत च.उ. पटने

पैथोलॉजी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

हमारे देश में जोड़ो का दर्द एक आम बीमारी है। परन्तु यह आम बीमारी हमारी दिनचर्या में बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि जोड़–दर्द होने पर व्यक्ति अपने दैनिक कामकाज करने में असमर्थ हो जाता हैं कई बार जोड़ों के दर्द की वजह से बिस्तर पकड़ने तक की नौबत आ जाती है। जोड़ो में दर्द होने के कई कारण होते हैं। इन कारणों को मुख्य रूप से ऑटोइम्यून आर्थराइटिस, डिजनरेटिव आर्थराइटिस, क्रिस्टल जनित आर्थराइटिस, दवाई जनित आर्थराटिस, संक्रमण जनित आर्थराइटिस एवं बाह्य पदार्थ जनित आर्थराइटिस में विभाजित किया जाता है। चालीस साल की उम्र से पहले जोड़ो का दर्द होने की वजह संधिवात गठिया जैसी इम्यून आर्थराइटिस, सिरोनेगेटिव आर्थराइटिस, स्कलेरोडर्मा, वैस्क्युलाइटीस, मिक्स्ड कनेक्टिव टिशु डीसिज इत्यादि हैं। पचास वर्ष की आयु के बाद आर्थराइटिस होने का मुख्य कारण ऑस्टीयोआर्थराइटिस के जैसी डिजनरेटिव आर्थराइटिस है। संक्रमण जनित आर्थराइटिस किसी भी उम्र में हो सकती है। बुढ़ापे में होने वाले जोड़ों के दर्द का मुख्य कारण क्रिसटल–जनित आर्थराइटिस है। इसमें विभिन्न प्रकार के क्रिस्टलों का जोड़ों में जमाव हो जाता है, जैसे कि मोनो सोडियम यूरेट तथा सी.पी.पी.डी. क्रिस्टल।

जोड़ दर्द के इन्हीं सब कारणों का पता लगाने के लिए मरीज की अच्छी तरह से जांच की जाती है। चिकित्सा विज्ञान संस्थान के सर सुन्दरलाल अस्पताल में जोड़ दर्द के उपचार के लिए विशेषज्ञ उपलब्ध हैं। ये विशेषज्ञ अस्थि रोग विभाग एवं मेडिसिन के गठिया रोग क्लिनिक में अपनी सेवाएं देते हैं। जोड़ दर्द से पीड़ित कोई भी मरीज जब डॉक्टर के पास जाता है तो डॉक्टर सबसे पहले मरीज के जोड़ दर्द की अवधि, प्रभावित जोड़ अथवा जोड़ों का प्रकार, दर्द होने का समय, दर्द का दैनिक क्रियाकलापों से सम्बन्ध इत्यादि की जानकारी लेता है। इस पूछताछ की प्रक्रिया को मेडिकल की भाषा में हिस्ट्री लेना कहते हैं। इसके बाद मरीज के शरीर तथा प्रभावित जोड़ की जांच की जाती है। हिस्ट्री तथा शारीरिक जांच के आधार पर डॉक्टर मरीज को विभिन्न जांचों की सलाह देता है जिसमें एक्स–रे, खून की जांच, पेशाब की जांच एवं अन्य जांचे शामिल हैं। इन जांचों के आधार पर ही मरीज की बीमारी का पूर्ण रूप से पता लग पाता है। जोड़ दर्द के कारणों का पता लगाने में चिकित्सा विज्ञान संस्थान का पैथोलॉजी विभाग सक्रियता से कार्य करता है। इन जांचों में मुख्यतया खून की जांच शामिल है। खून की जांचें पैथोलॉजी विभाग के हिमेटोलॉजी, क्लिनिकल जांच केन्द्र तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्चीकृत इम्यूनोडायग्नोस्टिक प्रशिक्षण एवं शोध केन्द्र में होती है। जोड़ दर्द के निदान के लिए UGCAITRC में कई सामान्य एवं विशेष जांचे उपलब्ध हैं।

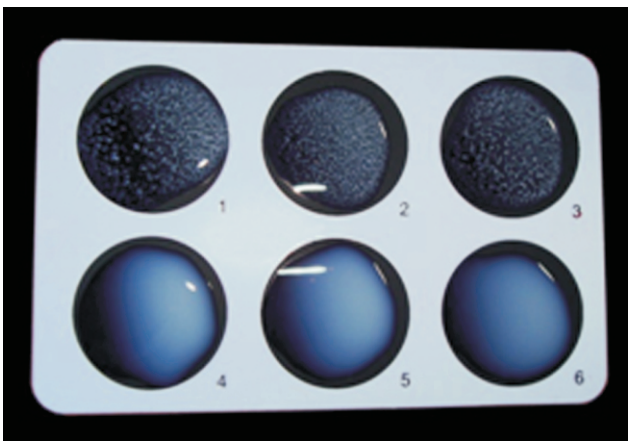

गोलाक्रमांक 1, 2 एवं 3 में रूमेटॉइड फैक्टर की पॉजीटिव जाँच

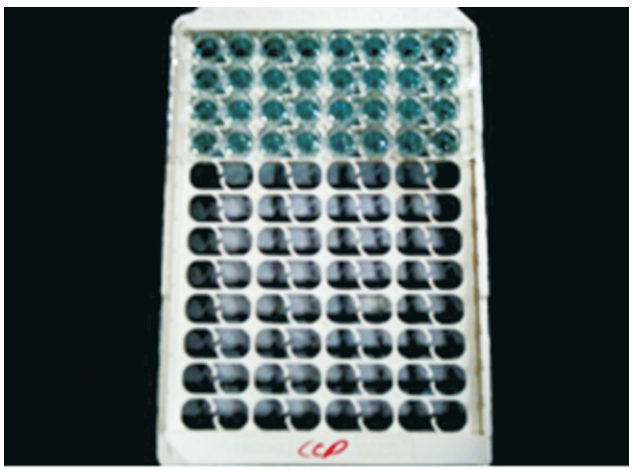

एन्टी सी.सी.पी. 2 एन्टीबॉडी की जाँच किट

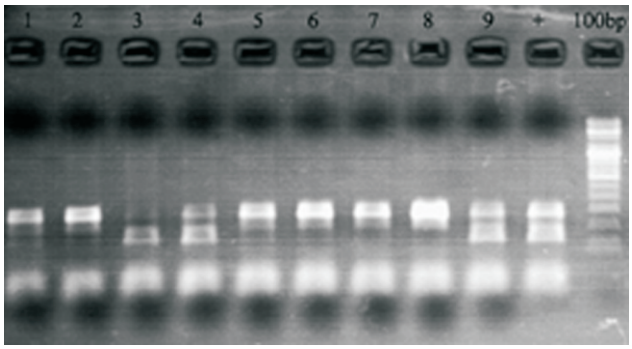

नमूना क्रमांक 4 एवं 9 में एच.एल.ए.बी. 27
की पॉजिटिव जाँच

संधिवात गठिया

यदि किसी महिला के दोनों हाथों या कलाईयों में जोड़ दर्द अथवा जकड़न है तथा सुबह उठने के बाद यह समस्या एक घण्टे से अधिक समय तक रहती है तो संधिवात गठिया होने की संभावना बढ़ जाती है। संधिवात गठिया की बीमारी को पकड़ने के लिये रूमेटॉइड फैक्टर की जांच की जाती है। रूमेटॉइड आर्थराइटिस के 60–80 प्रतिशत मामलों मे यह जांच पॉजिटिव आती है। रूमेटॉइड फैक्टर IgM प्रकार की ऑटोएंटीबॉडी है जो इम्युनोग्लोब्युलिन को पकड़ती है। हालांकि केवल रूमेटॉइड फैक्टर की जांच पॉजिटिव आने पर संधिवाात गठिया का रोग निश्चित नहीं होता है, क्योंकि यह जांच 5–10 प्रतिशत सामान्य व्यक्तियों एवं दूसरी ऑटोइम्यून बीमारियों में भी पॉजिटिव आती है। इसके लिए एंटी सी0सी0पी0–2 एंटीबॉडी नामक एक और विशेष जांच UGCAITRC में उपलब्ध है। एंटी सी.सी.पी.–2 एंटीबॉडी की जांच रूमेटाइड फैक्टर के मुकाबले अधिक सटीक है क्योंकि ये रूमेटॉइड आर्थराइटिस की बीमारी को प्रारंभिक अवस्था में भी पकड़ लेती है। एंटी सी.सी.पी.–2 एंटीबॉडी की जांच से रूमेटॉइड आर्थराइटिस के 95 प्रतिशत मामले सटीकता से पहचाने जा सकते हैं।

लुपस आर्थराइटिस

सिस्टेमिक लुपस एरीथेमेटोसस एक ऑटोइम्यून बीमारी है, जो सामान्यतया वयस्क महिलाओं में पायी जाती है। इस बीमारी के लक्षणों में चेहरे पर चकत्ते होना, खून की कमी होना, किडनी का खराब होना, धूप में निकलने पर शरीर में चकत्ते पड़ना, मुंह में छाले पड़ना इत्यादि होता है। इसके साथ ही करीब 70 प्रतिशत मामलों में जोड़ों में दर्द भी होता है, जिसे लुपस आर्थराइटिस कहते हैं। इस बीमारी का पता लगाने के लिए कम्प्लीट ब्लड काउंट जांच की जाती है जिससे खून की कमी का पता लग जाता है। इसके अलावा मूत्र में प्रोटीन, लाल रक्त कणिका आदि की जांच की जाती है। इसके साथ ही बहुत सी ऑटोएंटीबाडी विशेषकर ANA, anti ds DNA, ANTI Smith Ab आदि की जांच लुपस आर्थराइटिस को पहचानने के लिए आवश्यक है। लुपस आर्थराइटिस के 30–40 प्रतिशत मामलों में रूमेटॉइड फैक्टर की जांच भी पॉजिटिव आती है परन्तु एंटी सी.सी. पी.–2 एंटीबॉडी की जांच निगेटिव रहती है।

सिरोनिगेटिव स्पॉन्डीलोआर्थराइटिस

सिरोनिगेटिव स्पॉन्डीलोआर्थराइटिस जोड़ दर्द की बीमारियों का एक समूह है, जो अनुवांशिक रूप से प्रभावित युवा पुरूषों में अधिक पाया जाता है। इस बीमारी में निचली कमर में जकड़न एवं दर्द होता है। इसके साथ ही नितंब, घुटने और कंधे के जोड़ों में भी दर्द रहता है। इसमें रीढ़ की हड्डियों के जोड़ों में सूजन हो जाती है जिससे ये जोड़ कड़े हो जाते हैं, इस बीमारी को एन्काईलोसिंग स्पॉन्डीलाईटीस कहते हैं। सिरोनिगेटिव स्पॉन्डीलोआर्थराटिस में विशेषता यह रहती है कि इसमें रूमेटॉइड फैक्टर और ए.एन.ए. की जांच निगेटिव रहती है। इस बीमारी का पता लगाने के लिए HLA B27 की विशेष जांच UGCAITRC में की जाती है तथा इस जांच के लिए खून का नमूना UGCAITRC में ही निकाला

जाता है। HLA B27 की की जॉच सिरोनिगेटिव स्पोन्डीलोआर्थराइटिस के 60–90 प्रतिशत मामलों में पॉजिटिव आती है। एन्काईलोसिंग स्पॉन्डीलाईटीस के 90 प्रतिशत से अधिक मामलों में HLA B27 की जांच पॉजिटिव रहती है।

जुवेनाइल इडियोपेथिक आर्थराइटिस

यह बीमारी 16 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में देखी जाती है। जुवेनाइल इडियोपेथिक आर्थराइटिस के तीन प्रमुख प्रकार होते हैं–1. सिस्टेमिक, 2. ओलिगो–आर्टीक्युलर {चार से कम जोड़ों में दर्द}, 3. पॉलीआर्टीक्युलर {चार से ज्यादा जोड़ों में दर्द}। इस बीमारी का पता लगाने के लिए खून में सफेद रक्त कणिका, हिमोग्लोबिन एवं प्लेटलेट की संख्या देखी जाती है। पॉलीआर्टीक्युलर प्रकार में रूमेटॉइड फैक्टर एवं एंटी सी.सी.पी–2 एंटीबॉडी की जांच पॉजिटिव आती है। ANA की जांच सभी प्रकारों में पॉजिटिव रहती है परन्तु विशेष रूप से सिस्टेमिक प्रकार में ज्यादा पॉजिटिव पायी जाती है।

सायनोवियल तरल पदार्थ की जाँच

जोड़ दर्द के निदान के लिए जोड़ों की पतली झिल्ली से स्रावित सायनोवियल तरल पदार्थ की जांच बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सायनोवियल तरल पदार्थ को सिरिंज की मदद से प्रभावित जोड़ों से निकालकर पैथोलॉजी जांच के लिए भेजा जाता है। सायनोवियल तरल पदार्थ में कोशिकाओं की संख्या, उनका प्रकार तथा विभिन्न प्रकार के क्रिस्टलों का अध्ययन सूक्ष्मदर्शी में देखकर किया जाता है। साथ ही इस तरल पदार्थ में अलग–अलग प्रकार के सूक्ष्म जीवों की उपस्थिति का पता लगाकर संक्रमण जनित आर्थराइटिस को पहचाना जा सकता है। सायनोवियल तरल पदार्थ में कोशिकाओं की जांच से इन्फ्लेमेटरी आर्थराइटिस को नॉन–इन्फ्लेमेटरी आर्थराइटिस से अलग किया जा सकता है। चोट एवं रक्त स्राव जनित आर्थराइटिस को सेप्टिक आर्थराइटिस से भी अलग किया जा सकता है। सायनोवियल तरल पदार्थ की जांच क्रिस्टल जनित आर्थराइटिस को पकड़ने में विशेष रूप से सहायक है। इसके लिए तरल पदार्थ को सेंट्रीफ्यूज करके पोलराइज सूक्ष्मदर्शी में देखकर विभिन्न क्रिस्टलों की पहचान की जाती है। गठिया रोग में मोनो सोडियम यूरेट क्रिस्टल का, ऑस्टीयो आर्थराइटिस में कैल्शियम पायरोफॉस्फेट क्रिस्टल का तथा डायलिसिस – जनित आर्थराइटिस में कैल्शियम ऑक्सेलेट क्रिस्टल का जोड़ों में जमाव होता है। इसके अलावा सायनोवियल तरल पदार्थ को जांचकर दवाईयों तथा बाह्य पदार्थ के क्रिस्टलों को भी पहचाना जा सकता है।

उपर्युक्त चर्चा से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जोड़ दर्द होने के बहुत से कारण हैं जो विभिन्न आयु वर्ग के पुरूषों तथा महिलाओं में अलग–अलग प्रकार के होते हैं। इन कारणों को सही प्रकार से जानने तथा इलाज की सही दिशा तय करने में इम्यूनोपैथोलॉजी की जांच अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

एफ.एन.ए.सी.–कैंसर के जाँच की एक सरल विधि

प्रो. मोहन कुमार

पैथोलॉजी विभाग तथा प्रयोगिकी औषधि एवं शल्य केन्द्र, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

एफ.एन.ए.सी. {फाइन नीडल एस्पिरेशन साइटो–लॉजी} एक ऐसी तकनीक है, जिसके द्वारा शरीर के किसी भी अंग के ट्यूमर की जांच एक घण्टे से कम समय में की जा सकती है। यह एक सरल और सस्ती तकनीक है, जिसमें एक पतली सुई की मदद से थोड़ी सी कोशिकाएं निकाली जाती है। इन कोशिकाओं को कांच की स्लाइड पर फैला दिया जाता है और स्टेन करके सूक्ष्मदर्शी के द्वारा जांच कर ली जाती है। बाहरी अंगों की गांठों जैसे थाइरॉइड ग्रंथि, स्तन, लार ग्रंथि, लसीका गांठ इत्यादि की बीमारी का पता लगाने का यह अत्यंत सरल तरीका है। अब अल्ट्रासाउंड, सी.टी. स्केन तथा एम.आर. आई. के प्रचलन के बाद इस विधि का प्रयोग शरीर के किसी भी अंदरूनी हिस्से की जांच के लिए किया जा रहा है। एफ.एन.ए.सी. का विकास पिछले 25–30 सालों में इतनी तेजी से हुआ है कि यह तकनीक अब कैंसर की जांच का एक प्रमुख हिस्सा बन चुकी है। अभी तक कैंसर की जांच के लिए रोगयुक्त हिस्से से मांस का टुकड़ा निकालकर प्रयोगशाला में जांच के लिए भेजते हैं, जिसे बायोप्सी कहते हैं। बायोप्सी की जांच में 5–6 दिन का समय लगता है, परन्तु एफ.एन.ए.सी. के आ जाने के बाद 90–95 प्रतिशत ट्यूमर की सही जांच 1 घण्टे के अंदर हो जाती है। अनुभवी पैथोलॉजिस्ट के हाथों में इसकी प्रमाणिकता बायोप्सी के बराबर ही है। एफ.एन.ए.सी. की विश्वसनीयता केवल कैंसर की जांच में ही नहीं है अपितु टी.बी., घेंघा इत्यादि रोगों का भी इस विधि से आसानी से पता लगाया जा सकता है। थाइरॉइड ग्रंथि के बढ़ने को घेंघा रोग कहते हैं। घेंघा रोग कई कारणों से होता है, जिसमें ट्यूमर के कारण घेंघा रोग होने की संभावना केवल 5–10 प्रतिशत ही होती है। शेष 90–95 प्रतिशत घेंघा रोग मेडिकल कारणों से होता है, जिसमें सर्जरी की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इन सब कारणों को एफ.एन.ए.सी. की जांच द्वारा आसानी से पता किया जा सकता है। अतः एफ.एन.ए.सी. की जांच न केवल चिकित्सक को सही इलाज का मार्ग दिखाती है वरन् मरीज को भी अनचाही सर्जरी से बचाती है।

वैसे तो एफ.एन.ए.सी. की तकनीक पिछले 30–35 सालों से ज्यादा प्रचलन में आई है पर इस तकनीक का जिक्र दसवीं शताब्दी में अरब चिकित्सा विज्ञान में किया गया है। उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मन और फ्रांस देशों में इसका प्रचलन था परन्तु इसकी मान्यता शुरू में अमेरिकियों ने नहीं दी और फिर यह तकनीक अतीत के अंधेरे में गुम हो गई। सत्तर और अस्सी के दशक में पुनः इसका प्रादुर्भाव हुआ और इस समय अमेरिका सहित पूरे विश्व ने इसकी महत्ता को पहचाना। अब बहुत सारे शोध पत्रिकाएं और लेख इसके विकास के लिए प्रकाशित हो रहे हैं। भारत में भी इस तकनीक का आरम्भ सत्तर के दशक में हुआ और इसे शिक्षण संस्थानों में स्नातकोत्तर पाठ्य–पुस्तकों में शामिल किया गया। इतना ही नहीं इसके महत्व पर प्रकाश डालने के लिए नियमित कार्यशाला और सम्मेलन का आयोजन कर पैथोलॉजिस्ट, रेडियोलॉजिस्ट और शल्य चिकित्सकों को जागरूक किया जा रहा है। नियमित रूप से इस विधा पर शोध–पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं, जिसका लाभ आज की नयी पीढ़ी के चिकित्सकों को मिल रहा है और इस तकनीक का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है।

एफ.एन.ए.सी. की जांच करते हुए डॉक्टर

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान के पैथोलॉजी विभाग में साइटोलॉजी एक अलग यूनिट के रूप में कार्यरत है और इससे जुड़े हुए चिकित्सक एवं जूनियर डॉक्टर इसके विकास की दिशा में अच्छा कार्य कर रहे हैं। एफ.एन.ए.सी. तकनीक के कुछ दुष्प्रभाव पुस्तकों में दर्ज हैं जैसे रक्त–स्राव, सुई के मार्ग में कैंसर का फैलाव, संक्रमण आदि। परन्तु पिछले तीस सालों के अनुभव में मैंने किसी प्रकार के दुष्प्रभाव का सामना नहीं किया है। इसकी प्रमाणिकता के लिए अनुभव की बहुत आवश्यकता है। अनुभवहीन हाथों में परिणाम घातक भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए कैंसर का गलत निदान मरीज के लिए मृत्यु तुल्य कष्टकारी है। आज उपभोक्ता फोरम के युग में चिकित्सक को बहुत सोच समझ कर ही निदान देने की आवश्यकता है अन्यथा हर्जाने की भारी राशि चुकानी पड़ सकती है। जिस किसी मामले में कैंसर के सम्बन्ध में अगर संशय हो तो बायोप्सी की जाँच अवश्य कर लेनी चाहिए।

एफ.एन.ए.सी. का भविष्य उज्जवल है और आने वाले सालों में चिकित्सकों की एक नयी पीढ़ी इस विधा में पूर्णतः निपुण होकर कार्य क्षेत्र में आएगी और गलत निदान की बहुत कम संभावना रह जाएगी।

वृद्धावस्था में रोगों से बचाव

प्रो. आई.एस. गम्भीर

मेडीसिन विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वृद्धावस्था जीवन का अभिन्न अंग है। शैशव के बाद यौवन एवं यौवन के बाद वृद्धावस्था प्राकृतिक नियम है। वृद्धावस्था शास्त्रों में रोग तुल्य {जरा–रोग} मानी गयी है। शारीरिक एवं मानसिक जीर्णता रोगों की अभिवृद्धि करती है।

''वासंसि जीर्णानि यथा विहाय''

महात्मा बुद्ध ने भी वृद्धावस्था {जरावस्था} को शाश्वत दुःख माना है। वृद्धावस्था की मानसिक एवं शारीरिक ढलान {जीर्णता} सभी व्यक्तियों में एक समान नहीं होती है। यह व्यक्ति विशेष की गुणसूत्र संरचना {पैदायशी बनावट}, रहन–सहन, खान–पान वातावरण एवं विभिन्न बीमारियों के सम्मिलित प्रभाव पर निर्भर करता है। वृद्धावस्था को रोक पाना या उसका परावर्तन तो अभी चिकित्सा जगत की पहुंच से बाहर है लेकिन निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने से वृद्धावस्था के कष्ट कम हो सकते हैं।

खान–पान

आम धारणा है कि बूढ़े व्यक्ति को कम भोजन करना चाहिये, यह सत्य है कि बुढ़ापे में शारीरिक मेहनत की कमी से ऊर्जा की जरूरत कम हो जाती है परन्तु शरीर में ढलान के चलते पौष्टिक तत्वों की जरूरत बढ़ जाती है जिनकी कमी शरीर में विभिन्न प्रकार के रोगों को जन्म देती है। अतः वृद्धावस्था में सन्तुलित आहार की महत्ता बढ़ जाती है। वृद्धावस्था में पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है, अतः बहुत ज्यादा तली हुई चीजें पेट में गैस {अपच} पैदा करती हैं। इसी तरह देर से पचने वाली वस्तुएं जैसे– मिठाई, रबड़ी, मलाई से परहेज करना चाहिये। इस अवस्था में सुपाच्य एवं सन्तुलित आहार उपयुक्त होता है।

भोजन के प्रकार

वृद्धावस्था में व्यक्ति के मुँह में लार कम बनती है, दाँत गिरने और कमजोर होने लगते हैं, अतएव वृद्ध व्यक्ति का भोजन इस प्रकार का होना चाहिये कि उसे चबाना कम पड़े और निगलने में दिक्कत कम हो अर्थात उनके भोजन में पर्याप्त गीलापन होना चाहिये। रेशायुक्त आहार बुढ़ापे में बहुत लाभकारी होता है इससे कब्ज, डायबिटीज और दिल की बीमारी कम होती है। रेशायुक्त आहार के लिए मैदा की बजाय चोकर वाला आटा, हरी सब्जियाँ, फल व सलाद होना चाहिये। उम्र बढ़ने से पेट छोटा हो जाता है तथा पाचन क्रिया कमजोर होती है, अतः भोजन थोड़ा–थोड़ा 4–5 बार लेना चाहिए। दिन में पर्याप्त मात्रा में पानी/तरल पदार्थ लेना चाहिए।

नियमित रूप से वसा रहित दूध दही अथवा छाछ {मट्ठा} का सेवन हड्डियों को मजबूत रखता है तथा शरीर को आवश्यक प्रोटीन देता है। यह शाकाहारी लोगों के लिए विटामिन बी12 का एकमात्र साधन है। इसी तरह पर्याप्त मात्रा में मौसमी फल एवं सलाद शरीर को विभिन्न लवण एवं पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं। अल्पमात्रा में बादाम, सूखा मेवा, मूंगफली इत्यादि भी अवश्य लेना चाहिए।

दिनचर्या

वृद्धावस्था में शारीरिक तौर एवं दिमागी तौर पर गतिशील रहना चाहिए। पैदल चलना सबसे उत्तम व्यायाम है। प्रतिदिन 1–2 मील चलना लम्बी एवं स्वस्थ जिन्दगी देता है। पैदल चलते समय यथासम्भव खाली पेट रहें।

दिमागी गतिशीलता

घर में खेल, बच्चों की पढ़ाई/कहानियां, हिसाब–किताब तथा सामाजिक गतिविधियों से दिमागी गतिशीलता रहती है।

नींद

आम धारणा के विपरीत बुढ़ापे में 6–7 घण्टे की नींद जरूरी है। दिन में खाने के बाद आधा–एक घण्टे की नींद स्वास्थ्य के लिए अच्छी है। आरामदेह विस्तर, शान्त कमरा, शान्त मन, हल्का प्रकाश नींद के लिए जरूरी है।

मौसम संबंधी परेशानियाँ

वृद्धावस्था में शरीर गर्मी या सर्दी के अनुसार अपने को नहीं ढाल पाता है। बुढ़ापे में ज्यादा गर्मी {लू} व ज्यादा सर्दी दोनों ही घातक हो सकती है। बूढ़े व्यक्ति को लू लगने का खतरा ज्यादा होता है एवं इससे प्राण जा सकते हैं। लू से बचने के लिए ज्यादा गर्मी में घर के अन्दर रहें, शरीर को ठण्डा रखने का उपाय करें {पंखा/कूलर} खूब पानी पीयें। इसी तरह ज्यादा सर्दी में शरीर को गर्म रखने का उपाय करें। {कमरे के अन्दर सोयें/गर्म कपड़े पहने} रात भर जलने वाली अंगीठी धुयें/गैस के चलते नुकसान करती है।

वृद्धावस्था में उचित एवं सन्तुलित तत्वों को आवश्यकता हेतु सारिणी

क्र. सं.	व्यक्तिगत विवरण	मानक/आवश्यकता
1.	आयु	60 या उससे ऊपर
2.	लिंग	महिला/पुरूष
3.	वजन	60 किलो
4.	शारीरिक गतिविधियाँ	सामान्य क्रियाकलाप करना
5.	सामाजिक,आर्थिक स्थिति	मध्यम आय वाला
6.	भोजन की आवश्यकता	शाकाहारी
7.	भोजन का विवरण	आवश्यक ऊर्जा की जरूरत
8.	ऊर्जा	2000 कैलोरी
9.	प्रोटीन	60 ग्राम
	कैल्शियम	1500 मि. ग्राम

वृद्धावस्था में सामान्य बीमारियां

वृद्धावस्था में शारीरिक ढलान के चलते सामान्य बिमारी भी गम्भीर रूप ले लेती है और वृद्ध व्यक्ति स्व उपेक्षा के चलते बीमारियों के बारे में देर से बताता है जिससे बिमारी और जटिल हो जाती है। वृद्धावस्था में अक्सर एक से अधिक बिमारियां एक साथ होती हैं, अतः उनका निदान व इलाज भी ज्यादा मुश्किल होता है। वृद्ध व्यक्ति शारीरिक क्षीणता के चलते मौसम/खान–पान, रहन–सहन में बाधाओं से जल्दी बीमार हो जाता है।

पेट सम्बन्धी पेरशानियाँ

1. **कब्जः** बुढ़ापे की आम शिकायत है और इसके लिए ज्यादा पानी, रेशेदार भोजन, नियमित दिनचर्या लाभदायक है।
2. **डायरियाः** बुढ़ापे में पानी की कमी के कारण दस्त जानलेवा हो सकता है, दस्त की अवस्था में ओ. आर.एस. 2 चम्मच 1 गिलास सादा पानी में तथा क्रमवार सादा पानी एक–एक करके दें।
3. **गैस/अपचः** अनियमित भोजन, पेट का संक्रमण {इन्फेक्सन}, पेट में सूजन {दर्द की दवा के कारण} के मुख्य कारण हैं। तुरन्त राहत के लिए ठण्डा पानी ले व डाक्टर को दिखायें।
4. **श्वास की बीमारियाँ/खाँसीः** बुढ़ापे में खाँसी एक बीमारी है। बुढ़ापे से खांसी नहीं होती है। बुढ़ापे में खांसी या सांस का फूलना फेफड़े या दिल की बीमारी की वजह से हो सकता है। इसको डॉक्टर से दिखा कर उचित इलाज से फायदा मिल सकता है।
5. **हड्डियों की कमजोरी व टूटनाः** बुढ़ापे में कमर का झुकना, बुढ़ापे की वजह से नहीं बल्कि कमर की हड्डी के टूटने के वजह से होता है। यह बूढ़ी औरतों में ज्यादा जल्दी होता है। बुढ़ापे में थोड़ी चोट से भी कूल्हे व हाथ की हड्डी टूट जाती है। कमर और कूल्हे व हाथ की हड्डी टूटने की वजह हड्डी की कमजोरी है। इसे रोकने के लिए उचित मात्रा में कैल्शियम, विटामिन के साथ रोज पैदल चलना जरूरी है।
6. **दर्दः** उम्र के साथ जोड़ों खासकर घुटनों में, कमर में दर्द काफी कष्ट देता है। जोड़ो पर दर्द निवारक तेल लगाना ठीक है पर मालिश नुकसान कर सकती है। जमीन पर बैठना, पालथी मारना, घुटनों पर जोर–घुटनो का दर्द बढ़ाता है।

7. **बीमारी/ब्लडप्रेशर/डायबिटीजः** बुढ़ापे में दिल की बीमारी ज्यादा होती है। उम्र के साथ नसो {धमनियों} में कड़ापन आता है इसके साथ डायबिटीज, ब्लडप्रेशर, अत्यधिक चर्बी का सेवन, बीड़ी, तम्बाकू या शराब का सेवन दिल की बीमारी बढ़ाता है। ऐसी अवस्था में जल्दी से जल्दी डॉक्टर को दिखायें।

8. **संक्रमणः** शारीरिक क्षमता की कमी के चलते बुढ़ापे में इन्फेक्शन {संक्रमण} जल्दी होते है। पेशाब, फेफड़ा, चमड़ा बूढ़ो में संक्रमण की मुख्य जगह होती है। बुढ़ापे में संक्रमण में बुखार का होना जरूरी नहीं है। वृद्धजन में कार्य क्षमता का ह्रास या भूख का न लगना भी संक्रमण का रूप हो सकता है।

9. **पेशाब लगना/अनियंत्रित पेशाबः** वृद्ध पुरूषों में पेशाब में रूकावट, बार–बार पेशाब जाना, रात में ज्यादा पेशाब पौरूष ग्रन्थि के बढ़ाव के चलते होती है जो डॉक्टरी सलाह से ठीक हो सकती है। रूकावट के साथ पेशाब में इन्फेक्शन का खतरा बढ़ जाता है। वृद्ध स्त्रियों में, ज्यादा बच्चे पैदा करने, अनियमित दिनचर्या से अनियंत्रित पेशाब होती है। चिकित्सा परामर्श इसमें मदद कर सकता है।

10. **असामान्य व्यवहारः** अचानक व्यवहार में बदलाव, ज्यादा नींद या उत्तेजना, बदलता व्यवहार गम्भीर बीमारियों का लक्षण है। इस अवस्था में तुरन्त अच्छे चिकित्सक के पास/अस्पताल में ले जाये।

11. **चक्करः** वृद्धावस्था की आम समस्या है। बुढ़ापे के साथ शारीरिक सन्तुलन में कमी आ जाती है। ऐसी स्थिति में गिरने का खतरा बढ़ जाता है। चक्कर की अवस्था में चिकित्सकीय सलाह लें।

12. **एकाकीपनः** वृद्धावस्था में एकाकीपन सबसे अधिक कष्टप्रद होता है। वह अपने आप को परिवार व समाज से कटा हुआ महसूस करता है। इसलिए वृद्ध व्यक्ति को चाहिए की वह अपने समय व क्षमता के अनुसार कार्यों को चिन्हित कर उनमें अपनी ऊर्जा लगाये।

13. **व्यस्त रहें/मस्त रहेंः** यदि आप अकेले हैं तो उन कार्यों को उसी तरह करना जारी रखें जिसे आप पूर्व में करते रहे हैं। अधिक व्यस्त बने रहने से जीवन में स्फूर्ति बनी रहती है। वृद्धावस्था में अधिक से अधिक सामुदायिक कार्यों में अपने को व्यस्त करें, एक दूसरे की सहायता करें, पलायनवादी न बने, प्रसन्नता के विकल्प ढूढ़े, अच्छे विचारों को संग्रह करें, धार्मिक समारोहों में जायें।

14. **परिस्थितियों से समायोजन करेंः** घर के नित्य क्रिया कलापों अथवा विशेष अवसरों पर समयानुसार व क्षमतानुसार सहभागिता करें। जिन्दगी में हो रहे परिवर्तनों को सहजता से स्वीकार करें। छोटी–छोटी बातों पर जिद्द न करें न ही नाराज हों। परिवार के अन्य सदस्यों के विचारों को सुने व समझे। अपनी राय परिवार पर थोपने का प्रयास न करें, दूसरों की निन्दा करने से बचें।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का चिकित्सा विज्ञान संस्था, विगत कई वर्षों से वृद्धों की स्वास्थ्य समस्याओं के लिए प्रयासरत है। एक दशक से अधिक वृद्ध रोगों के लिए अलग से ओ.पी.डी.– शनिवार के दिन कार्यरत है, वृद्ध रोगों का अलग से प्रभाग है जो वृद्ध रोगों में अनुसंधान व प्रशिक्षण संचालित करता है। वृद्ध रोग मुख्यतः बौद्धिक क्षमता के ह्रास {डिमेन्सिया} व घातक संक्रमण पर भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा प्रदत्त विशेष कार्य योजना इस प्रभाग द्वारा चलायी जाती है। निकट भविष्य में चिकित्सा संस्थान वृद्ध रोगों की चिकित्सा का पूर्वोत्तर भारत में एक अहम् संस्थान होगा।

चिकित्सा संस्थान में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा चिन्हित आठ क्षेत्रीय वृद्ध रोग केन्द्रों में से एक की स्थापना का कार्य चल रहा है तथा इसके अन्तर्गत वृद्ध रोगों के अलग से विभाग की स्थापना, वृद्ध रोगों में प्रशिक्षण, वृद्ध रोगों की प्रतिदिन ओ.पी.डी. एवं 30 बिस्तर के वृद्ध रोग वार्ड की स्थापना होनी है।

रेडियोलॉजिकल निदान के नवीन आयाम

प्रो. ओ. पी. शर्मा

रेडियोडायग्नोसिस एण्ड इमेजिंग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्राचीन काल में भारतवर्ष में रोग निदान के लिये नाड़ी– विज्ञान बहुत ही प्रचलित प्रथा थी। नाड़ी परीक्षण करके रोगों की तह तक पहुँचा जाता था। अंग्रेजो के आने के बाद ऐलोपैथी पद्धति का बड़ी तेजी से समन्वय होने लगा। चिकित्सक नाड़ी {पल्स} देखकर तथा स्टेथोस्कोप {आला} सीने पर रख हृदय तथा फुप्फुस से निकलने वाली आवाज की सहायता से निदान तक पहुँचने की यथा शक्ति प्रयास करते थे। कालान्तर में पैथोलॉजी, माइक्रोबायोलॉजी, बायोकेमिस्ट्री तथा एक्स–रे रोग निदान में महत्वपूर्ण योगदान देने में प्रभावकारी साबित होने लगे हैं।

एक्स–रे का अविष्कार 1895 में विल्हेल्म कान्रेड राजंन द्वारा किया गया जिस पर उसे नोबुल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 1950 के दशक तक शरीर के आंतरिक हिस्सों की जाँच एक्स–रे द्वारा ही की जाती थी। इसके बाद अल्ट्रासाउण्ड, सी.टी. स्कैन, एम.आर.आई., मैमोग्राफी, पाजिट्रान एमिशन टोमोग्राफी {पैट स्कैन}, पाजिट्रान एमिसन ट्रोमोग्राफिक–सीटी स्कैन, न्युक्लियर स्टडी, तथा इन्टरवेन्शन टेक्नालॉजी का इजाद क्रमशः हुआ। रक्त वाहिकाओं का निदान में कलर डाप्लर अल्ट्रासाउण्ड, डिजिटल सब्ट्रैक्सन एंजियोग्राफी सहायक सिद्ध हो रहा हैं।

1. **डिजीटल रेडियोग्राफीः** विगत 50 सालों में साधारण एक्स–रे विधि से होने वाले चित्रण में काफी परिवर्तन आया। डिजीटल रेडियोग्राफी तकनीक से सबसे अधिक फ्रैक्चर का चित्र स्पष्ट दिखाई देता है। पेट में पथरी, आंतो में अवरोध, फुफ्फुस झिल्ली में एकत्र पानी या मवाद एकत्र है जिसे प्लूरल इफूजन या इम्पाइमा कहते है, फुफ्फुस में संक्रमण चाहे साधारण न्यूमोनिया हो या टी.बी. हो, सिस्ट हो या ट्यूमर हो या फिर सिर के अस्थियों में फ्रैक्चर हो, इत्यादि का भली प्रकार निदान हो जाता है।

2. **अल्ट्रासोनोग्राफीः** प्रारम्भ में श्याम/श्वेत अल्ट्रासोनोग्राफी मशीन का अविष्कार हुआ जो ध्वनितरंग के सिद्धांत पर कार्य करता है। इस विधि से तो पित्त की थैली की सभी रोगों का पता 99 प्रतिशत से 100 प्रतिशत मरीजो में संभव हो सका हैं। गुर्दा, मूत्रनलिका, मूत्राशय, गर्भाशय अण्डकोष के रोगों की जानकारी मिल जाती है। कुछ मरीजो में डायग्नोसिस पक्का करने के लिये सी.टी. स्कैन कर लेते हैं। महिलाओं में गर्भाधान के प्रारम्भ से प्रसव तक होने वाले प्रत्येक घटनाओं का बारीकी से अध्ययन किया जाना सम्भव हो सका है। कन्जेनाइटल एबनार्मेलिटी और गर्भपात की आशंकाओ का निवारण भी किया जा सकता है। रंगीन अल्ट्रासाउण्ड की सहायता से कलर डाप्लर अल्ट्रासोनोग्राफी रक्त प्रवाह, धमनी में वसा के जमाव से अवरोध, डीपवेन थ्राम्बोसिस, वेरीकोस वेन की जानकारी संभव हो जाती है। यही नहीं गर्भस्थ शिशु के अन्दर की धमनियों में प्रवाहित रक्त परीक्षण कर इन्ट्रायूटराइन ग्रोथ रिटार्डेशन की जानकारी से स्त्री रोग विशेषज्ञों को प्रसूता का इलाज करने में सहायता पहुँचाती है।

3. **सी.टी. स्कैनः** सी.टी. स्कैन मशीन के कई प्रकार उपलब्ध हैः कन्वेन्शनल सी.टी. की जगह अब स्पाइरल अथवा हेलिकल सी.टी. स्कैन प्रयोग में आ गया है जिनकी सहायता से एक, दो चार, आठ, सोलह, चौसठ, 256 स्लाइस्ड और सब सेकेन्ड सी.टी. तथा डुअल सोर्स सीटी स्कैनर आ चुके है। 64 स्लाइस सीटी स्कैनर, जो बी.एच.यू. में उपलब्ध है, से हृदय की मांसपेशियों को रक्त प्रवाहित करने वाली धमनियों का एंजियोग्राफी जैसा चित्रण सम्भव हो गया है। इस मशीन की सहायता से सीने में दर्द जो हृदयाघात भी हो सकता है या गैसीय दर्द या फिर मसल दर्द हो सकता है इत्यादि का निदान बिना कैथेटर एंजियोग्राफी के किया जा सकता है। सीटी कोरोनरी एंजियोग्राफी की सहायता से कोरोनरी धमनी में

उपस्थित थक्के की सही–सही जानकारी से और यथास्थिति ऐंजियोग्राफिक स्टेंट या बाइपासग्राफर सर्जरी कर हृदयाघात वाले रोगी की प्राण रक्षा संभव है। बी.एच.यू. में अब दोनो प्रकार की तकनीक उपस्थित है। स्टीरियोटैक्टिक बायप्सी असेंबली से मरीज के मस्तिष्क, फेफड़े, पेट में बढ़ रहे ट्यूमर अथवा किसी गाँठ से टुकड़ा निकाल कर रोग का निदान किया जा रहा है। 3क्त तकनीक इस्तेमाल करके चेहरे पर उपस्थित चोट विकार का अध्ययन कर प्लास्टिक सर्जरी की जा सकती हैं। हाई रिजोल्यूशन सीटी से एक मिली मीटर तक स्कैन करके फुफ्फुस की छोटी–छोटी बिमारियों का तथा कन्ट्रास्ट सीटी से ट्यूमर का विस्तृत अध्ययन एवं बायप्सी की जा सकती है।

4. **एम.आर.आई:** यह चुम्बकत्व शक्ति के उपयोग से कार्य करता है। प्रारम्भ में 0.2 टेस्ला की मशीन आई जिससे कुछ निदान होने लगा। इस विधि से मरीज पर पड़ने वाले विकिरण का दुष्प्रभाव नहीं होता। प्रकारान्तर में 1.5, 3.0 एवं 7.0 टेस्ला की मशीने बाजार में उपलब्ध हो चुकी है। बी.एच.यू. में आज 1.5 टेस्ला की मशीन कई वर्षो से उपलब्ध है जिसकी सहायता से मस्तिष्क के किसी भी रोग का सूक्ष्मतम परीक्षण संभव है। मेरूदण्ड की भी तकरीबन सारी समस्याओं का निराकरण संभव हैं। ई.आर.सी.पी. विधि जिसमें रेडियेशन लगता है और गैस्ट्रोइन्ट्रोलाजिस्ट की सहायता की भी जरूरत पड़ती है किन्तु एम.आर.आई. में प्रयुक्त विधि एम.आर.सी.पी. से मात्र 1 घण्टे में ई आर सी पी जैसी ही चित्रण संपन्न हो जाता हैं। महिलाओं के स्तन की बीमारियों का चित्रण सम्भव हो सका है। जोड़, लिगामेंट, टेण्डन, मेनिष्कास इत्यादि का सूक्ष्मतम परीक्षण सम्भव है जिससे बिना फ्रैक्चर वाले मरीज लाभ ले सकते है।

5. **मैमोग्राफी:** एक्स–रे के सहयोग से कार्यरत यह मशीन मूलतः स्तन की बिमारियों के लिये अर्पित है। प्रारम्भिक अवस्था में स्तन कैंसर का पता चल जाये तो कैंसर को निकाल कर स्तन को बचाया जा सकता हे अन्यथा स्तन पूरा का पूरा निकालना पड़ता हैं जो महिलाओं में कास्मेटिक समस्या उत्पन्न करती है। अब अल्ट्रासोनोग्राफी तथा एम आर आई भी स्तन की रोगो को निदान में सहायक हो सकी है। ये सारी विधियाँ बी.एच.यू. में उपलब्ध है।

6. **डिजिटल सब्ट्रैक्शन एंजियोग्राफी:** यह विधि भी एक्स–रे की सहायता से सम्पादित होती है और धमनी तथा शिराओ में उत्पन्न विकृतियों का निदान तथा इलाज भी सम्भव हो सका है सम्प्रति में यह विधि बी.एच.यू. में उपलब्ध नहीं हो सकी है।

7. **इन्टरवेन्शनल रेडियोलॉजी:** रेडियोलॉजी की इस विधि से मरीज के रोग का निदान के साथ साथ उसका इलाज भी सम्भव हो सका है। इस विधि को करने के लिये आपरेशन थियेटर जैसा स्टरलाइज्ड स्थान उपलब्ध कराना पड़ता है। विशेष रूप से प्रशिक्षित रेडियोलॉजिस्ट इसे कर सकते हैं। इस विधि से मस्तिष्क के अन्दर बहत खून का तात्कालिक इलाज का प्रभाव देखने को मिलता है। छोटे–छोटे इंटवेन्शन कार्य बी.एच.यू. में होते रहते है पर अभी बहुत कुछ होना बाकी है।

8. **PAC सिस्टम:** एक आदर्श रेडियोलॉजी विभाग के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसमें कम्प्यूट्र के हार्ड डिस्क और साफ्टवेयर की सहायता से रोगी का सम्पूर्ण रिकार्ड सुरक्षित रखा जा सकता है और समय–समय पर उसका मूल्यांकन किया जा सकता है, तथा विद्यार्थियों को इसकी सहायता से शिक्षा भी दी जा सकती है। बी.एच.यू. में इसकी सुविधा उपलब्ध कराने का प्रयास चल रहा है।

9. **टेली रेडियोलॉजी:** एक अनोखी प्रासंगिक विधि है जिसके द्वारा छोटे–छोटे शहरो और गाँवो में जहाँ एक्स–रे विशेषज्ञ नहीं है लेकिन मशीन पर मरीज का परीक्षण करके टेली रेडियोलॉजी विधि से बड़े शहरो में बैठे परामर्शदाता से राय लेकर रोग का निदान कम से कम समय में किया जा रहा है। यह विधि बी.एच.यू. में अभी उपलब्ध नहीं है।

10. **न्यूक्लियर मेडिसिन:** पाजिट्रान इमिसन टोमोग्राफी, पाजिट्रान इमिसन टोमोग्राफी–सीटी स्कैन, हाई इंटेसिटी फोकस्ड अल्ट्रासाउण्ड तकनीक भी बी.एच.यू. में उपलब्ध नहीं है। ये मशीने बी.एच.यू. में आने पर यहाँ का रेडियोलॉजी विभाग देश का अग्रणी विभागों में सम्मिलित हो जायेगा।

ग्लूकोमा – अंधता से प्रकाश की ओर

डॉ. एम.के. सिंह एवं डॉ. प्रशान्त भूषण

नेत्र विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आमतौर पर नेत्र की बीमारियों को लोग दृष्टि की परेशानियां या लालिमा व कीचड़ आने की शिकायतें ही समझते हैं, इनमें होने वाली सूक्ष्मताओं का उन्हें अनुमान भी नहीं होता। इस वजह से कई बीमारियां जो बिना आहट के नुकसान पहुंचाती हैं, इनसे वे अनभिज्ञ रहते हैं। इसी तरह का एक रोग ग्लूकोमा है, जिसे आमतौर पर काला मोतिया या संबलबाई या काला पानी के नाम से भी जाना जाता है।

हमारी आँखों को पोषण के लिये एक तरल पदार्थ की आवश्यकता होती है, यह पदार्थ निरन्तर आँखों में बनता रहता है। यह आँख के अगले हिस्से को भोजन तो देता ही है, उसे बचाव के लिये प्रोटीन भी पहुंचाता है, साथ–साथ उपयोग में आ चुके निष्क्रिय पदार्थों को आंख से बाहर भी निकालता है। इस तरह से तरल पदार्थ पैदा भी होता रहता है और अपने निकास के रास्ते से निकलता भी रहता है। जब भी इस पदार्थ की निकासी के रास्ते में कोई दिक्कत आती है तो आंखों का दबाव बढ़ जाता है। लगातार आंखों का दबाव बढ़ा रहने से, आँखों की रोशनी कमजोर होने लगती है।

यह बीमारी ज्यादातर दबे पांव ही आती है व रोगी को इसका पता तब ही चलता है जब इससे रोशनी का नुकसान हो चुका होता है। अतः इसके लक्षणों को सावधानी से समझना आवश्यक है। इसी कारण से इसे ''साइलेन्ट साईट स्नैचर'' या चोर की तरह आंखों की रोशनी छीनने वाली बीमारी भी कहा जाता है। इसके कुछ प्रमुख लक्षण हैं, पढ़ने वाले चश्मे का नम्बर बार–बार बदलना, अंधेरे में ठीक से नजर न आना व कभी–कभी रोशनी {जैसे बल्ब} के आस–पास सतरंगी घेरे बनना है। कई बार तो व्यक्ति मान लेता है कि मुझे कम दिखता है, यह मेरी नियति है और वह डॉक्टर के पास नहीं जाता, दुकान से चश्मा लेकर काम चलाता रहता है, जब वह चिकित्सक तक पहुँचता है यह बीमारी लाइलाज हो चुकी होती है। यह आवश्यक है कि जब भी आप अपने चिकित्सक के पास जाये तो आग्रह करें कि आपकी ग्लूकोमा की जाँच भी हो जानी चाहिये।

ज्यादातर लोग यह सोचते हैं कि 40 वर्ष के तत्पश्चात् रोशनी कम होने का मुख्य कारण सफेद मोतियाबिन्द है जिसे हम केटरैक्ट नाम से जानते हैं व इसके पक जाने पर ही नेत्र चिकित्सक के पास जायेंगे, इस भ्रान्ति में वे ग्लूकोमा पाले बैठे रह सकते हैं, जो कि तुरन्त इलाज से ठीक किया जा सकता है व रोशनी बचाई जा सकती है।

इसके इलाज में दवाईयों का व ऑपरेशन का लगभग बराबर का असर है। यदि किसी ग्लूकोमा के रोगी को ऑपरेशन से भय लगता हो पर वह जीवनपर्यन्त आंखों में दवा डालने को तैयार है तो भी उसकी नेत्र ज्योति को नुकसान नहीं होगा। आवश्यक है अपने चिकित्सकों के निरन्तर सम्पर्क में रहना व उनकी सलाह मानना।

ग्लूकोमा के बारे में कुछ महत्वपूर्ण बातें बिन्दुवार बताने की यहाँ चेष्टा की गई है।

आंखों में कोई भी परेशानी होने पर दवा चिकित्सक से परामर्श के पश्चात ही डालें ये स्टीराइड ड्राप भी हो सकती है जो ग्लूकोमा की कारक भी है।

40 वर्ष की उम्र के पश्चात् ग्लूकोमा होने की सम्भावना अधिक होती है। अतः नियमित रूप से ऑख जांच कराना आवश्यक हो जाता है। वैसे यह रोग बच्चों व युवाओं में भी मिल सकता है।

ग्लूकोमा एक अनुवांशिक बीमारी भी है। अतः यदि किसी को यह बीमारी है तो उसे अपने बच्चे व सगे भाई बहनों की भी आँख जाँच करवानी चाहिये।

यदि किसी मरीज को सांस या जोड़ों की बीमारी के लिये लम्बे समय से स्टीराइड दवा चल रही हो तो,

उन्हें अपनी आंख जांच करानी चाहिये व स्टीराइड दवा के लम्बे प्रयोग से बचने का प्रयास करना चाहिए।

खेलते समय आंख में चोट लगने से भी ग्लूकोमा हो जाता है, ऐसा प्रायः क्रिकेट की गेंद, बैडमिंटन की शटल कॉक व गुल्ली डंडे की चोट में पाया गया है।

यदि किसी रोगी की आंख के पर्दे {रेटिना} का आपरेशन हुआ हो तो भी ग्लूकोमा होने की सम्भावना होती है।

जब भी नेत्र चिकित्सक के पास जायें आंखों की जांच व परदे की जांच का आग्रह अवश्य करें।

यदि आपको चिकित्सक ने ग्लूकोमा की बीमारी बता दी है तो आप अपनी हर विजिट पर आंखों की रोशनी, आंखों का दबाव व गोनियोस्कोपी जांच का आग्रह करें, व साल में 2 बार या इससे अधिक भी पेरीमीटरी जांच अवश्य करवायें।

आंखों में दर्द, सिर व पेट में दर्द को नजरअंदाज न करें व तुरन्त आंख जांच करवायें।

आंखों को पोषण देने वाले कुछ भोजन पदार्थ इस प्रकार से हैं – बादाम, दूध, हरी साग व सब्जियां, सोयाबीन, दूध, नींबू, सन्तरा व गाजर, अंडा व मछली।

ग्लूकोमा से घबरायें नहीं, सिर्फ सावधान रहने की आवश्यकता है।

बी.एच.यू. का नेत्र विभाग हर शुक्रवार को ग्लूकोमा क्लीनिक चलाता है जहां वैज्ञानिक ढंग से सभी जांच व उपचार किये जाते हैं।

मार्च माह के पहले सप्ताह को 'वर्ल्ड ग्लूकोमा सप्ताह' के रूप में मनाया जाता है ताकि इस रोग के बारे में जागरूकता बढ़े।

ग्लूकोमा – अंधता से प्रकाश की ओर

डॉ. एम.के. सिंह एवं डॉ. प्रशान्त भूषण

नेत्र विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आमतौर पर नेत्र की बीमारियों को लोग दृष्टि की परेशानियां या लालिमा व कीचड़ आने की शिकायतें ही समझते हैं, इनमें होने वाली सूक्ष्मताओं का उन्हें अनुमान भी नहीं होता। इस वजह से कई बीमारियां जो बिना आहट के नुकसान पहुंचाती हैं, इनसे वे अनभिज्ञ रहते हैं। इसी तरह का एक रोग ग्लूकोमा है, जिसे आमतौर पर काला मोतिया या संबलबाई या काला पानी के नाम से भी जाना जाता है।

हमारी आँखों को पोषण के लिये एक तरल पदार्थ की आवश्यकता होती है, यह पदार्थ निरन्तर आँखों में बनता रहता है। यह आँख के अगले हिस्से को भोजन तो देता ही है, उसे बचाव के लिये प्रोटीन भी पहुंचाता है, साथ–साथ उपयोग में आ चुके निष्क्रिय पदार्थों को आंख से बाहर भी निकालता है। इस तरह से तरल पदार्थ पैदा भी होता रहता है और अपने निकास के रास्ते से निकलता भी रहता है। जब भी इस पदार्थ की निकासी के रास्ते में कोई दिक्कत आती है तो आंखों का दबाव बढ़ जाता है। लगातार आंखों का दबाव बढ़ा रहने से, आँखों की रोशनी कमजोर होने लगती है।

यह बीमारी ज्यादातर दबे पांव ही आती है व रोगी को इसका पता तब ही चलता है जब इससे रोशनी का नुकसान हो चुका होता है। अतः इसके लक्षणों को सावधानी से समझना आवश्यक है। इसी कारण से इसे ''साइलेन्ट साईट स्नैचर'' या चोर की तरह आंखों की रोशनी छीनने वाली बीमारी भी कहा जाता है। इसके कुछ प्रमुख लक्षण हैं, पढ़ने वाले चश्मे का नम्बर बार–बार बदलना, अंधेरे में ठीक से नजर न आना व कभी–कभी रोशनी {जैसे बल्ब} के आस–पास सतरंगी घेरे बनना है। कई बार तो व्यक्ति मान लेता है कि मुझे कम दिखता है, यह मेरी नियति है और वह डॉक्टर के पास नहीं जाता, दुकान से चश्मा लेकर काम चलाता रहता है, जब वह चिकित्सक तक पहुँचता है यह बीमारी लाइलाज हो चुकी होती है। यह आवश्यक है कि जब भी आप अपने चिकित्सक के पास जाये तो आग्रह करें कि आपकी ग्लूकोमा की जाँच भी हो जानी चाहिये।

ज्यादातर लोग यह सोचते हैं कि 40 वर्ष के तत्पश्चात् रोशनी कम होने का मुख्य कारण सफेद मोतियाबिन्द है जिसे हम केटरैक्ट नाम से जानते हैं व इसके पक जाने पर ही नेत्र चिकित्सक के पास जायेंगे, इस भ्रान्ति में वे ग्लूकोमा पाले बैठे रह सकते हैं, जो कि तुरन्त इलाज से ठीक किया जा सकता है व रोशनी बचाई जा सकती है।

इसके इलाज में दवाईयों का व ऑपरेशन का लगभग बराबर का असर है। यदि किसी ग्लूकोमा के रोगी को ऑपरेशन से भय लगता हो पर वह जीवनपर्यन्त आंखों में दवा डालने को तैयार है तो भी उसकी नेत्र ज्योति को नुकसान नहीं होगा। आवश्यक है अपने चिकित्सकों के निरन्तर सम्पर्क में रहना व उनकी सलाह मानना।

ग्लूकोमा के बारे में कुछ महत्वपूर्ण बातें बिन्दुवार बताने की यहाँ चेष्टा की गई है।

आंखों में कोई भी परेशानी होने पर दवा चिकित्सक से परामर्श के पश्चात ही डालें ये स्टीराइड ड्राप भी हो सकती है जो ग्लूकोमा की कारक भी है।

40 वर्ष की उम्र के पश्चात् ग्लूकोमा होने की सम्भावना अधिक होती है। अतः नियमित रूप से ऑख जांच कराना आवश्यक हो जाता है। वैसे यह रोग बच्चों व युवाओं में भी मिल सकता है।

ग्लूकोमा एक अनुवांशिक बीमारी भी है। अतः यदि किसी को यह बीमारी है तो उसे अपने बच्चे व सगे भाई बहनों की भी आँख जाँच करवानी चाहिये।

यदि किसी मरीज को सांस या जोड़ों की बीमारी के लिये लम्बे समय से स्टीराइड दवा चल रही हो तो,

उन्हें अपनी आंख जांच करानी चाहिये व स्टीराइड दवा के लम्बे प्रयोग से बचने का प्रयास करना चाहिए।

खेलते समय आंख में चोट लगने से भी ग्लूकोमा हो जाता है, ऐसा प्रायः क्रिकेट की गेंद, बैडमिंटन की शटल कॉक व गुल्ली डंडे की चोट में पाया गया है।

यदि किसी रोगी की आंख के पर्दे {रेटिना} का आपरेशन हुआ हो तो भी ग्लूकोमा होने की सम्भावना होती है।

जब भी नेत्र चिकित्सक के पास जायें आंखों की जांच व परदे की जांच का आग्रह अवश्य करें।

यदि आपको चिकित्सक ने ग्लूकोमा की बीमारी बता दी है तो आप अपनी हर विजिट पर आंखों की रोशनी, आंखों का दबाव व गोनियोस्कोपी जांच का आग्रह करें, व साल में 2 बार या इससे अधिक भी पेरीमीटरी जांच अवश्य करवायें।

आंखों में दर्द, सिर व पेट में दर्द को नजरअंदाज न करें व तुरन्त आंख जांच करवायें।

आंखों को पोषण देने वाले कुछ भोजन पदार्थ इस प्रकार से हैं – बादाम, दूध, हरी साग व सब्जियां, सोयाबीन, दूध, नींबू, सन्तरा व गाजर, अंडा व मछली।

ग्लूकोमा से घबरायें नहीं, सिर्फ सावधान रहने की आवश्यकता है।

बी.एच.यू. का नेत्र विभाग हर शुक्रवार को ग्लूकोमा क्लीनिक चलाता है जहां वैज्ञानिक ढंग से सभी जांच व उपचार किये जाते हैं।

मार्च माह के पहले सप्ताह को 'वर्ल्ड ग्लूकोमा सप्ताह' के रूप में मनाया जाता है ताकि इस रोग के बारे में जागरूकता बढ़े।

नेत्रदान, नेत्रबैंक एवं हमारी नैतिक जिम्मेदारी

डॉ. दीक्षा प्रकाश, डॉ. अभिषेक चंद्रा एवं डॉ. ओ.पी.एस. मौर्य

नेत्र विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

हमारी नेत्रों में एक भाग कॉर्निया {स्वच्छ मंडल} का होता है, जो चोट या संक्रमण की वजह से खराब हो जाता है एवं अपनी पादर्शिता को खो देता है जिसकी वजह से इन्सान ठीक से देख नहीं पाता है। कॉर्निया खराब होने के मुख्य कारण : चोट, संक्रमण, विटामिन ए की कमी {कुपोषण} व ऑपरेशन की जटिलताओं की वजह भी हो सकता है।

हमारे देश में लगभग 50 लाख लोग कॉर्नियल अन्धता के शिकार हैं एवं इसमें भी ज्यादातर बच्चे और युवा हैं। सौभाग्य से विज्ञान ने ऐसी प्रगति की है कि मृत व्यक्ति के शरीर से प्राप्त कॉर्निया को जीवित व्यक्ति के खराब कॉर्निया के जगह पर लगा दिया जाय तो जीवित व्यक्ति की रोशनी वापस आ जाती है।

नेत्रबैंक

दान में प्राप्त कॉर्निया के संग्रह, भंडारण, प्रसंस्करण एवं वितरण हेतु नेत्रबैंक की आवश्यकता को जन्म दिया। अपना देश विश्व में प्रथम देश है जहाँ पर राष्ट्रीय अन्धता निवारण कार्यक्रम चलाया जाता है। सरकार एवं स्वयं सेवी संगठन नेत्रबैंक स्थापित करते हैं। नेत्रबैंक अलाभकारी संस्था के रूप में मदद करती है।

नेत्रबैंक कॉर्निया प्रत्यारोपण हेतु उच्च स्तर की कॉर्निया उपलब्ध कराती है एवं अनुसन्धान व शिक्षा हेतु भी कॉर्निया उपलब्ध कराती है। वर्तमान में अपने देश में लगभग चालीस हजार नेत्र प्रतिवर्ष प्राप्त हो रहे हैं जबकि हमें लगभग 2 लाख प्रतिवर्ष कॉर्निया की जरूरत है।

नेत्रबैंक का इतिहास

एडवर्ड कोनार्ड जेर्म ने 1906 में पहला सफल नेत्र प्रत्यारोपण किया।

फिलारोव ने 1937 में यह दिखाया की मृत व्यक्ति के कॉर्निया को 4 डिग्री सेंटीग्रेड पर रख कर प्रयोग में लाया जा सकता है। इसी समय से कॉर्निया के संग्रह एवं भंडारण के लिए नेत्रबैंक की स्थापना की गई।

प्रथम नेत्रबैंक न्यूयार्क, अमेरिका में आर टी पैटन द्वारा स्थापित किया गया था।

भारत में प्रथम नेत्रबैंक 1945 में चेन्नई में स्थापित किया गया।

नेत्रबैंक के उद्देश्य

कॉर्निया का संग्रह, प्रसंस्करण, भण्डारण एवं उच्चतम प्राथमिकता वाले नेत्रहीनों को वितरण।

मरणोपरांत नेत्रदान हेतु परिवार वालों को प्रोत्साहित करना एवं जानकारी प्रदान करना।

नेत्रदान सम्बन्धित गतिविधियों को बढ़ावा देना– अनुसन्धान एवं शिक्षण कार्य हेतु कॉर्निया ऊतक उपलब्ध कराना।

नेत्रदान हेतु समाज में प्रचार प्रसार करना।

नेत्रदान हेतु आवश्यक जानकारी

किसी भी उम्र के लोग संकल्प पत्र भर कर मरणोपरांत अपने नेत्रों के दान हेतु संकल्प ले सकते हैं।

जो लोग चश्मा लगाते हैं, मोतियाबिन्द या समलबाई से पीड़ित हैं, वे भी नेत्रदान कर सकते हैं।

मृत्यु के 6 घण्टे के अन्दर कॉर्निया निकाल लेना चाहिए, अतः मृत्यु के तुरन्त बाद नजदीक के नेत्रबैंक को सूचित करना चाहिए अथवा आई.एम.ए. आई. बैंक को 9454212121, 95547171717 पर सूचित करें।

कॉर्निया निकालने में मात्र 10–15 मिनट लगते हैं एवं चेहरे पर कोई विकृति नहीं आती है।

बिना संकल्प पत्र भरे भी परिजनों की स्वीकृति पर नेत्रदान कराया जा सकता है।

नेत्रदान प्राप्तकर्ता एवं नेत्रदाता को एक दूसरे के बारे में जानकारी नहीं दी जाती है।

नेत्रदान को हर धर्म/समुदाय के लोगों का समर्थन प्राप्त है क्योंकि यह एक उच्च स्तर का मानवीय कृत्य है।

नेत्रदान हेतु न कोई पैसा लिया जाता है न ही नेत्र लगाने वाले से कोई पैसा लिया जाता है।

नेत्रदान की प्रक्रिया

नेत्रदान की इच्छा रखने वाले लोगों को चाहिए कि अपने नजदीकी सम्बन्धियों एवं अपने पारीवारिक चिकित्सक को अपनी इच्छा के बारे में बतावें।

मृतक परिवार की जिम्मेदारी है कि मृतक की इच्छा का सम्मान करते हुए नेत्रदान हेतु नेत्रबैंक को सूचित करें।

मृतक शरीर को ठण्डे स्थान पर रखे एवं आंखों की पलक पर गीली रूई या बर्फ रखें।

नेत्रबैंक कर्मी नेत्रदाता परिवार की समुचित लिखित सहमति के बाद राष्ट्रीय अन्धता निवारण कार्यक्रम एवं आई बैंक एसोसिएशन ऑफ इण्डिया के मानक के अनुसार कॉर्निया निकाल कर उसे सुरक्षित एम. के. मीडियम या ओप्टिसोल मीडियम में रखते हैं।

नेत्रदाता के रक्त का नमूना एच.आई.वी., हेपेटाइटिस–बी एवं सी तथा सिफिलिस के जाच हेतु लेते हैं।

नेत्रदान प्राप्ति हेतु प्रतीक्षा सूची का पैमाना

सर्वोच्च प्राथमिकता– दोनों आंखों से अंधा, 30 वर्ष से कम, नेत्रदाता परिवार का सदस्य, अनुसन्धान, शिक्षा या नयी सर्जरी विधि के विकास के लिए।

द्वितीय प्राथमिकता– दोनों आंखों से अंधापन, 30 वर्ष से कम एवं एक आंख से दृष्टिहीन, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी अथवा भारत सरकार द्वारा अनुमोदित।

सामान्य प्राथमिकता– 30 वर्ष से अधिक उम्र एवं एक आंख से अंधापन।

आपातकालीन प्रत्यारोपण– कॉर्निया में घाव के लिए चिकित्सकीय कॉर्निया प्रत्यारोपण, कॉर्निया में सूजन।

कॉर्निया की गुणवत्ता

इसे एक फार्म पर विस्तार से दर्ज करते हैं।

कॉर्निया ऊतक को चार ग्रेडिंग–उत्कृष्ट, बहुत अच्छा, अच्छा एवं सामान्य में विभाजित करते हैं।

अधिक कॉर्निया के प्राप्त होने पर दूसरे नेत्रबैंक को स्थान्तरित करते हैं।

कॉर्निया को वायु या रेल मार्ग द्वारा निःशुल्क पहुँचाया जाता है।

हमारी जिम्मेदारी

हम अपने सुख दुःख हेतु स्वतः जिम्मेदार हैं। हमारे समाज में अच्छा या बुरा हो रहा है, उसके लिये भी हम जिम्मेदार हैं। अगर समाज में कोई व्यक्ति अंधा है तो उसके अंधेपन के लिए भी हम जिम्मेदार हैं। अगर हम अपनी जरा सी जिम्मेदारी निभायें तो– अपने किसी भी नजदीकी का निधन होने पर उसके कॉर्निया का दान दिलवाने हेतु परिवार को प्रेरित कर सकते हैं। अगर हमें मृतक के परिवार को प्रेरित करने में असुविधा हो रही है तो आप आई.एम.ए. आई बैंक को फोन– 9494212121, 9554717171 पर मृतक के नजदीकी का फोन नंबर दे सकते हैं। जिससे आई.एम.ए. आई बैंक के सोशल मोबिलाइजर या ग्रीफ काउंसलर मृतक के सम्बन्धियों से बात कर परिवार को नेत्रदान हेतु प्रेरित करने में सफल हो सकते हैं। नेत्रदान में सफल होने पर प्रेरक को असली दान के आनंद की प्राप्ति होती है। नेत्रदान निःस्वार्थ कार्य है क्योंकि हमें इस बात का इल्म नहीं रहता है कि यह कॉर्निया किस देश, जाति, धर्म या समुदाय के व्यक्ति को लगाई जाएगी। ''ये आंखें ऐसी ही होती है– जो किसी–किसी को लग जाती हैं देश जाति धर्म के बंधन से ऊपर उठ जाती है'' अतः दोस्तों आप से निवेदन है कि नेत्रदान महादान का महामन्त्र प्रयोग करें एवं इसे हम अपनी नैतिक जिम्मेदारी माने एवं महाकल्याण में भागी बनें।

कान का बहनाः कारण एवं निवारण

डॉ. राजेश कुमार

नाक, कान एवं गला विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

कान बहना कान की एक प्रमुख बीमारी है, जिसमें मरीज को लम्बी अवधि से कान बहने की समस्या रहती है तथा कान के परदे में छिद्र हो जाता है, जिसके कारण वह बहरेपन का भी शिकार हो जाता है।

यह बीमारी सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि सभी अविकसित तथा विकासशील देश की प्रमुख समस्या है। एक अध्ययन के अनुसार भारतवर्ष में ग्रामीण क्षेत्र में प्रति 1000 में 46 लोग और शहरी क्षेत्र में प्रति 1000 में 16 लोग इस बीमारी से पीड़ित हैं, परन्तु दुःख की बात यह है कि हममें से अधिकांश लोग इस समस्या हो अनदेखा कर देते हैं और जब ये बीमारी विकराल स्वरूप धारण कर लेती है तब वे इस पर ध्यान देना शुरू करते हैं।

बीमारी का कारण

ज्यादातर मामलों में यह बीमारी जीवण्विक, विषाणु या कावकीय रोगाणुओं के संक्रमण से शुरू होती है।

यूस्टेचियन ट्यूब {नलिका जो कि गले को कान से जोड़ती है} में दोष होना भी एक प्रमुख कारण है, जिसमें मध्य कान से जीवाणु का निकलना अप्रभावी हो जाता है।

हमारी नाक, टॉन्सिल, एडिनॉयड या सॉयनस में भी संक्रमण होने की स्थिति में यह संक्रमण यूस्टेचियन ट्यूब के द्वारा मध्य कान में जा सकता है।

कभी–कभी मरीज को एलर्जी की परेशानी होती है, जिसके कारण भी कान बहने की स्थिति मरीज को झेलनी पड़ती है।

मरीज द्वारा शरीर की साफ–सफाई पर विशेष ध्यान न देने से, अति संकुलता, खराब पोषण से, निष्क्रिय धूम्रपान, बच्चों को अपर्याप्त स्तनपान कराने से इस बीमारी का खतरा बढ़ जाता है। यही वजह है कि भारत सहित अधिकांश अविकसित तथा विकासशील देशों में इस बीमारी के अधिकतर मरीज मिलते हैं।

बच्चों में यूस्टेचियन ट्यूब वयस्कों की तुलना में छोटी और क्षैतिज होती है तथा उनकी जीवाणुओं, विषाणुओं से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता भी कम होती है, इस वजह से बच्चों में यह समस्या ज्यादा विकराल है।

बीमारी के लक्षण

यह बीमारी यूस्टेचियन ट्यूब नामक नलिका के साथ–साथ कान के परदे तथा भीतरी कान के बीच के हिस्से से होती है। इस बीमारी में मरीज को निम्नलिखित लक्षण मिल सकते हैं–

1. **कान बहनाः** कान के बहने का यह सबसे प्रमुख कारण है। इस बीमारी में मध्य कान में कुछ सप्ताहों या उससे ज्यादा में कान के पर्दे में एक छिद्र और सक्रिय जीवाणु संक्रमण हो जाता है, इसकी वजह से कान में मवाद {पस} बनता है, जो इतना ज्यादा होता है कि वह कान के बाहर बहने लगता है, जिसे हम ओटोरिया कहते हैं अथवा इतना कम हो सकता है जिसे जाँच के दौरान सिर्फ माइक्रोस्कोप से ही देखा जा सकता है। यह बदबू के साथ या बिना बदबू के भी आ सकता है।

   यह आवश्यक नहीं है कि मवाद आना ही बीमारी का सूचक है, कान से पानी जैसा तरल पदार्थ {पन्छा देना} भी बीमारी का सूचक है।

   कभी–कभी कान का बहना स्वतः ही अस्थायी रूप से ठीक हो जाता है परन्तु सर्दी–जुकाम होने पर या अस्वच्छ पानी में नहाने पर यह बीमारी फिर सक्रिय हो जाती है, तो हमें इसके स्थायी निदान के लिए सोचना चाहिए।

2. **कम सुनाई देना:** बच्चों में यह कम सुनाई देने का सबसे प्रमुख कारण है। बचपन में ध्यान न देने पर वयस्क भी इस समस्या से पीड़ित हो जाते हैं। कान से ठीक सुनाई देने के लिए कान के परदे का, हड्डियों का तथा भीतरी कान की तंत्रिकाओं का सही होना अति आवश्यक है, इस प्रणाली में कहीं भी समस्या होने पर सुनाई देना प्रभावित होता है।

   इस बीमारी में कान के परदे में छिद्र होने के कारण और उसमें संक्रमण होने के कारण बीमारी कान के पीछे की हड्डियों को भी अपनी चपेट में लेती है जिससे हड्डियों में सड़न होने लगती है और मरीज स्थायी रूप से बहरा हो सकता है। बचपन से कम सुनने के कारण बच्चों का मानसिक विकास भी अवरूद्ध होता है जिससे उन्हें बोलने में और बातें समझने में भी तकलीफ हो सकती है।

3. **कान में दर्द:** यह बीमारी अक्सर पीड़ा रहित होती है परन्तु मरीज के कान में सूजन होने पर कभी–कभी पीड़ा के साथ भी हो सकती है।

4. **अन्य लक्षण:**

   क. चक्कर आना

   ख. कान में आवाज आना, सनसनाहट होना या घंटी की आवाज आना {टिनाईटस}

   ग. सरदर्द

क्रोनिक सुप्युरेटिव ओटाइटिस मीडिया की जटिलताएँ:

उपेक्षित अवस्था में यह बीमारी कान के दायरे से निकलकर आगे की ओर बढ़ती है जिसमें मरीज को निम्न परेशानी का सामना करना पड़ सकता है:

1. मुँह का टेढ़ापन {फेशियल पैरालिसिस}
2. हड्डियों की सड़न एवं सूजन {मैस्टॉयडायटिस, पेट्रोसाईटिस, लैबिरिन्टिथआईटिस}
3. दिमाग में मवाद बनना {ब्रेन एब्सेस, एक्स्ट्राड्यूरल एब्सेस, सब ड्यूरल एब्सेस}
4. मेनिन्जाईटिस
5. स्थायी बहरापन

जाँच: इस बीमारी में कान की जाँच के लिए कई उपकरण आज के समय में उपलब्ध हैं, जैसे कि:

क. ओटोस्कोप

ख. ओटोमाइक्रोस्कोप

ग. ओटोइन्डोस्कोप

इन सभी उपकरणों से मरीज के कान के परदे तक की स्थिति ज्ञात हो सकती है।

अगर बीमारी जटिल स्थिति में पहुंचकर कान की हड्डियों को भी चपेट में ले लेती है या बीमारी का विस्तार दिमाग में या कान के पीछे की हड्डियों में भी हो जाता है तो उसके विस्तार को ज्ञात करने के लिए एक्स–रे या सी.टी. स्कैन का सहारा लेना पड़ता है।

सुनने की जाँच करने के लिए स्वरित्र जांच के अलावा आवश्यकता अनुसार प्योर टोन ऑडियोमीटरी {पी.टी.एफ.} तथा ईम्पीडेन्स ऑडियोमीटरी की जाँच की जाती है।

छोटे बच्चों एवं नवजात शिशुओं में सुनने की जाँच बी.एच.यू. के सर सुन्दरल लाल चिकित्सालय के नाक, कान, गला विभाग में उपलब्ध है।

बचाव एवं निवारण

क. इस बीमारी से बचाव के लिए हमें शरीर की विशेषतः नाक एवं कान की साफ–सफाई पर ध्यान देना चाहिए।

ख. बच्चों को समुचित स्तनपान कराना चाहिए ताकि उनकी प्रतिरोधक क्षमता पर्याप्त रहे।

ग. अतिसंकुलता से बचना चाहिए।

घ. अस्वच्छ पानी से स्नान नहीं करना चाहिए।

ड. बीमारी के होने पर मरीज को तुरन्त किसी कुशल नाक, कान, गला चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए और बिना चिकित्सकीय परामर्श के किसी भी दवाई का उपयोग न करें।

शुरूआत में दवाईयों द्वारा इसका इलाज किया जाता है ताकि कान सूखा रहे और मरीज को हिदायत भी दी जाती है कि कान सूखा रखें। दवाईयों में एन्टीबॉयटिक, एन्टीएलर्जिक तथा दर्दनिवारक दवाइयां आवश्यकतानुसार दी जाती हैं।

कभी–कभी कान का छिद्र स्वतः ही सही समय पर इलाज करने पर भर जाता है, परन्तु जिनमें यह बीमारी कई बार होती है या छिद्र स्वतः नहीं भरता या मरीज बीमारी की जटिलताओं के साथ प्रस्तुत होता है जैसे कि कान के पीछे फोड़ा बन जाना जिसमें चीरा लगा के मवाद निकालना पड़ता है। ऐसे में हमें बीमारी के स्थायी इलाज के बारे में सोचना चाहिए।

इस बीमारी का स्थायी इलाज ऑपरेशन द्वारा होता है। इस बीमारी में निम्न ऑपरेशन होते हैं :

1. **टिम्पैनोप्लास्टीः** इसमें हम खराब कान के परदे की जगह नया ग्राफ्ट या परदा लगाते हैं तथा कान की हड्डियों का पुनर्निर्माण भी आवश्यकतानुसार करते हैं।
2. **मैस्टॉयड सर्जरीः** जब बीमारी मध्य कान की सीमा के दायरे से निकलकर कान के पीछे की मैस्टॉयड हड्डी को भी अपने चपेट में ले लेती है, तो हमें मैस्टॉयड सर्जरी करनी पड़ती है। इस सर्जरी का प्रमुख मकसद बीमारी की जड़ तक पहुंचकर उसे खत्म करना है, सुनाई देने में सुधार होना चाहिए यही प्रधान मकसद होता है।

प्रमुखतः यह दो तरह की होती हैः

क. कैनाल वॉल अप ख. कैनाल वॉल डाउन

कैनाल वॉल डाउन सर्जरी, कैनाल वॉल अप की तुलना में ज्यादा अच्छी मानी जाती है क्योंकि इसमें बीमारी का विस्तार ढूंढ़ना अच्छे से होता है।

इस प्रकार से इस बीमारी का निवारण किया जाता है। इन सभी विधियों को सर सुन्दरलाल चिकित्सालय के कान, नाक, गला विभाग में बहुतायत से प्रयोग में लाया जाता है।

सर सुन्दर लाल चिकित्सालय में प्रतिदिन नाक, कान, गला के बहिरंग विभाग में लगभग सौ से ज्यादा मरीज इसी बीमारी को लेकर आते हैं और हर वर्ष हजारों मरीज इस बीमारी से सफलतापूर्वक निदान प्राप्त करके जाते हैं।

उच्च रक्तचाप

डॉ. आशुतोष बाजपेयी एवं डॉ. रागिनी श्रीवास्तव

बॉयोकेमिस्ट्री विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

उच्च रक्तचाप की बीमारी बहुत व्यापक है और पूरे संसार में हर साल लगभग 76 लाख लोग उच्च रक्तचाप के प्रत्यक्ष या परोक्ष कारणों की वजह से मृत्यु की गोद में समा जाते हैं। यह बीमारी इतनी बृहत्तर है कि इस बात की 90 प्रतिशत संभावना है कि कोई भी इन्सान इस बीमारी से ग्रसित हो सकता है।

क्या है ये उच्च रक्तचाप

हमारे शरीर में रक्त का प्रवाह हमारे हृदय द्वारा किया जाता है। हृदय रक्त को धमनियों में प्रवाहित करता है जिससे धमनियों में एक दबाव उत्पन्न होता है जिसे रक्तचाप कहते हैं। यह रक्तचाप दो अवस्थाओं में लिया जाता है पहला हृदय की संकुचन की अवस्था में जिसे सिस्टोलिक ब्लड प्रेशर कहते हैं और दूसरा जब हृदय धड़कनों के बीच में तनावमुक्तता की स्थिति में होता है जिसे डायस्टोलिक ब्लड प्रेशर कहते हैं। सामान्य अवस्था में हमारा सिस्टोलिक रक्तचाप 120 मिलीमीटर पारे के दबाव के बराबर तथा डायस्टोलिक रक्तचाप 80 मिलीमीटर पारे के दबाव के बराबर होता है। अगर सिस्टोलिक रक्तचाप 140 मिमी के उपर अथवा डायस्टोलिक रक्तचाप 90 मिमी के उपर अथवा दोनों ही रक्तचाप 140/90 मिमी के उपर लगातार बने रहें तो इसे उच्च रक्तचाप कहते हैं।

उच्च रक्तचाप के प्रकार

उच्च रक्तचाप मुख्यतया दो प्रकार का होता है –

1. प्राथमिक उच्च रक्तचाप 2. द्वितीयक उच्च रक्तचाप

प्राथमिक उच्च रक्तचाप

प्राथमिक उच्च रक्तचाप 80–95 प्रतिशत रोगियों में पाया जाता है। यह उच्च रक्तचाप का ऐसा प्रकार है जिसमें शरीर के अन्दर कोई मुख्य रोग उत्तरदायी नहीं होता अर्थात इसका कोई स्पष्ट कारण पता नहीं है। लेकिन लम्बे समय तक खान पान में अधिक नमक लेने वाले लोगों में प्राथमिक उच्च रक्तचाप ज्यादा पाया गया है।

द्वितीयक उच्च रक्तचाप

अधिकांशतया वृक्क {किडनी} सम्बन्धित रोग जैसे इन्टरस्टीशियल नेफ्राइटिस एवं नेफ्रोस्क्लेरोसिस द्वितीयक उच्च रक्तचाप के प्रमुख कारण है। वृक्क {किडनी} के अलावा भी अन्य अंगों जैसे कि कुछ अन्तःस्रावी ग्रंथियों {एड्रीनल, थायरॉयड} के रोग जैसे कि हाइपर–एल्डोस्टेरोनिस्म, हाइपरथायरॉयडिस्म इत्यादि महत्वपूर्ण कारक हैं।

उच्च रक्तचाप के दुष्परिणाम

शरीर के रक्त में सोडियम और पोटैशियम का अनुपात रक्तचाप को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, हमारे खाने में सोडियम हमें मुख्यतया नमक के रूप में मिलता है।

मोटापा भी हमारा रक्तचाप बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। जब हमारे शरीर में वसा की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाती है तो यह वसा शरीर की रक्त वाहिकाओं में जमा होकर थक्का बनाने में और संकुचनशीलता कम करने में सक्रिय भूमिका निभाती है जिससे शरीर की रक्त वाहिकाओं का कुल प्रतिरोध बढ़ जाता है। परिणामतः हृदय को रक्त संचार बनाये रखने के लिए और जोर लगाना पड़ता है। थक्का बन जाने से उस अंग विशेष का रक्त संचार रूक भी सकता है और इस स्थिति में वह अंग पूर्णतः या आंशिक रूप से बेकार भी हो सकता है। अगर हृदय की पतली वाहिकाओं में थक्का जम जाए तो व्यक्ति को हृदयाघात हो जाता है इस स्थिति में अक्सर व्यक्ति की मृत्यु भी हो जाती है।

अगर मस्तिष्क की किसी रक्तधमनी में थक्का जम जाए या उच्च दबाव के कारण धमनी फट जाए तो

मस्तिष्क के उस हिस्से में रक्त संचार ठप हो जाता है और वह विशेष हिस्सा काम करना बन्द कर देता है इस स्थिति को स्ट्रोक कहते है परिणामस्वरूप व्यक्ति के स्नायुतंत्र में कमी आ सकती है व्यक्ति कोमा में जा सकता है तथा मृत्यु भी हो सकती है।

इसी तरह से हमारी आँख भी उच्च रक्तचाप से प्रमुखता से प्रभावित हो सकती है। यहाँ तक कि उच्च रक्तचाप का शक होने पर चिकित्सक फण्डस {आँख के रेटीना का एक भाग} की जाँच करते हैं क्योंकि उच्च रक्तचाप के प्राथमिक लक्षण फण्डस पर ही दृष्टिगोचर होते हैं। उच्च रक्तचाप की अवस्था में आँख से धुंधला दिखायी देने से लेकर आँख की रोशनी तक जा सकने की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

उच्च रक्तचाप से किडनी भी खराब हो सकती है वृक्क {किडनी} हमारे शरीर से विषाक्त पदार्थों को मूत्र के रास्ते उत्सर्जित करती है, लेकिन उच्च रक्तचाप की स्थिति में किडनी की इस क्षमता पर गहरा असर पड़ता है और किडनी आवश्यकतानुसार मूत्र निर्माण नहीं कर पाती साथ ही साथ अगर लम्बे समय तक उच्च रक्तचाप किसी व्यक्ति को रहे तो उसके मूत्र निर्माण की क्षमता बेहद कम हो जाती है और अन्त में किडनी कार्य करना बन्द कर देती है।

बचाव के उपाय

वजन कम करनाः हमारे शरीर का वजन कितना होना चाहिए इसके लिए एक सूचकांक बनाया गया है जिसे बी.एम.आई. कहते हैं। बी.एम.आई. ज्ञात करना बहुत आसान है। अगर आपको अपना वजन कि.ग्रा. में और लम्बाई मी. में पता है तो आप अपने वजन को लम्बाई के वर्ग से विभाजित करके अपना बी.एम.आई. जान सकते हैं।

बी.एम.आई. = वजन {कि.ग्रा.} / लम्बाई^2 {मी.}

एक व्यक्ति का बी.एम.आई. 25 से कम होना चाहिए अगर आपका बी.एम.आई. 30 से अधिक है तो यह खतरे का द्योतक है और यथासंभव आपको अपना वजन कम करने का प्रयास करना होगा।

वजन कम करने के लिए खानपान में वसा की मात्रा कम करनी चाहिए इसके लिए घी, तेल, मक्खन इत्यादि का उपयोग कम से कम होना चाहिए, साथ ही तली भुनी चीजों का सेवन करने से बचना चाहिए, फल एवं सब्जियों का उपयोग करना अत्यंत लाभकारी है।

नमक की मात्रा को कम करनाः हमें भोजन में नमक का उपयोग कम से कम करना चाहिए एवं हमारा प्रयास रहना चाहिए कि हम एक दिन में 6 ग्राम नमक {एक छोटी चम्मच} से ज्यादा न लें। नमक में ही सोडियम मौजूद होता है जो हमारा रक्तचाप बढ़ाता है।

शारीरिक सक्रियताः हमें नियमित व्यायाम करना चाहिए, व्यायाम करने से वजन घटता है, रक्त संचरण में सुधार आता है एवं हृदय की क्षमताओं में भी वृद्धि होती है। यदि आपके पास नियमित व्यायाम करने का समय नहीं है तो कम से कम आधे घण्टे तो आपको टहलना ही चाहिए जिससे उच्च रक्तचाप एवं उसके दुष्परिणामों की रोकथाम हो सकती है।

नियमित जाँच करानाः उच्च रक्तचाप से बचने हेतु हमें समय–समय पर अपने रक्तचाप की जाँच करानी चाहिए साथ ही साथ हमें अपने रक्त में शर्करा की {ब्लड ग्लूकोज} एवं वसा के विभिन्न अवयवों की {लिपिड प्रोफाइल} जाँच कराते रहना चाहिए ताकि हम समय पर सावधान होकर चिकित्सक से परामर्श ले सकें।

रहस्यमयी रक्त कणिका – ''प्लेटलेट''

डॉ. प्रतिभा गवेल एवं डॉ. डी. दास

जीवरसायन विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्लेटलेट या थ्रॉम्बोसाइट या बिम्बाणु सभी स्तनधारियों के रक्त में उपस्थित अनियमित आकार की अनाभिकीय कोशिका है। देखने में ये नुकीले एवं अंडाकार होते हैं। इनका आकार इंच का चार सौ हजारवां हिस्सा होता है। इन्हें सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकता है।

कैसे बनते हैं प्लेटलेट्स ?

प्लेटलेट्स बोन मैरो {अस्थि मज्जा} में मौजूद कोशिका के काफी छोटे कण होते हैं जिन्हें तकनीकी भाषा में मेगाकैरियोसाइट्स कहा जाता है ये थ्रोम्बोप्लास्टिन हारमोन की वजह से विभाजित होकर रक्त में समाहित हो जाते हैं और सिर्फ 5–9 दिन तक रक्त में संचारित होने के बाद स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। शरीर में प्लेटलेट्स की सामान्य संख्या बनाने का कार्य थ्रोम्बोप्लास्टिन हारमोन करता है।

क्या करते हैं प्लेटलेट्स ?

स्तनधारियों के शरीर में प्लेटलेट्स को मुख्यतः रक्त का थक्का जमाने के लिए ही जाना जाता है। जब शरीर की धमनियों में कोई क्षति होती है तो ये निष्क्रिय से सक्रिय अवस्था में आ जाते हैं और रक्तवाहिकाओं से स्रावित कोलाजन के साथ मिलकर एक अस्थायी दीवार का निर्माण कर देते हैं। इसे ही हम सामान्य भाषा में 'रक्त का थक्का' कहते हैं। इस तरह से ये रक्त वाहिकाओं में होने वाली क्षति को रोक लेते हैं। इनकी कमी होने से रक्तस्राव की आशंका बढ़ जाती है।

इसके अलावा आधुनिक शोधों से पता चला है कि प्लेटलेट्स सम्पूर्ण विकसित प्रतिरक्षा प्रणाली तैयार करने में भी अहम भूमिका अदा करते हैं। जर्मनी के म्यूनिख यूनिवर्सिटी में प्लेटलेट्स पर शोध करने वाली टीम ने बताया कि वे शरीर में प्रवेश करने वाले बैक्टीरिया को अपने में लोपित कर लेते हैं। यहाँ से वे उन्हें तिल्ली में लेकर चले जाते हैं। जहाँ उनका भक्षक कोशिकाओं के द्वारा भक्षण कर लिया जाता है।

क्या आप जानते हैं ?

मानव शरीर में करीब पांच लीटर रक्त होता है। इसमे तरल हिस्सा {प्लाज्मा} 54.3 प्रतिशत होता है और कणों के रूप में इसमें लाल रक्त कणिकाएँ 45 प्रतिशत एवं शेष हिस्सा श्वेतरक्त कणिकाओं एवं प्लेटलेट्स का होता है।

मनुष्य के शरीर में सामान्यतः एक लाख पचास हजार से लेकर चार लाख प्रतिघन मिलीलीटर प्लेटलेट्स होते हैं।

एक प्लेटलेट कोशिका का औसत जीवन काल 5–9 दिन का होता है।

प्लेटलेट्स का निर्माण स्तनधारियों के अस्थिमज्जा में होता है।

मानव शरीर प्रतिदिन करीब 2×10^6 प्लेटलेट्स का निर्माण करता है।

शरीर में प्लेटलेट्स के कम होने की स्थिति को ही ''थ्राम्बोसाइटोपीनिया'' कहा जाता है।

प्लेटलेट्स रक्षक या विध्वंसक

शरीर में जहाँ प्लेटलेट्स कुछ अहम कार्य करते हैं वहीं उनकी संख्या का सामान्य से कम या ज्यादा होना भी कई तरह के गंभीर खतरे उत्पन्न करता है। इनकी कमी होने से शरीर में रक्तस्राव की आशंका बढ़ जाती है। अगर इनकी संख्या सामान्य से ज्यादा हो जाए तो शरीर में असामान्य जगहों पर रक्त का थक्का बनना शुरू हो जाता है जिससे हृदय के दौरे की आशंका बढ़ जाती है एवं ब्रेन स्ट्रोक भी हो सकता है।

कब घट जाते हैं प्लेटलेट्स

शरीर में प्लेटलेट्स कम होने को विज्ञान की भाषा में थ्राम्बोसाइटोपीनिया कहा जाता है। हर प्लेटलेट का

जीवन 5–9 दिन होता है और लगातार अस्थि मज्जा में इनका निर्माण होता रहता है। बावजूद इसके कई कारणों से इनकी तादाद कम हो सकती है। प्रमुख कारण निम्न हैं:

किसी खास बीमारी या आनुवांशिक गड़बड़ी की वजह से प्लेटलेट्स सामान्य से भी कम हो जाते हैं।

संक्रमण, जैसे मलेरिया, डेंगू, वॉयरल बुखार, मस्तिष्क ज्वर, डेंगू एवं मलेरिया दोनों एक साथ होने पर प्लेटलेट्स तेजी से कम होने लगते हैं।

शल्यक्रिया, जैसे दिल की सर्जरी, मैरो ट्रॉसप्लांट, अंग प्रत्यारोपण।

दवाएँ, हिपैरिन, कुनैन, कैंसर कीमोथैरेपी लेने वालों में भी थ्राम्बोसाइटोपीनिया हो सकता है।

प्रेग्नेंसी– कई बार प्रेग्नेंसी के दौरान भी थ्राम्बोसाइटोपीनिया हो सकता है।

कैंसर, ब्लड कैंसर {ल्यूकीमिया} के शुरूआती दौर में भी प्लेटलेट्स की संख्या सामान्य से कम हो जाती है।

इनके अलावा अल्कोहल {शराब} लेने वाले, एच. आइ.वी. संक्रमित आर्थिराइटिस, एप्लास्टिक अनीमिया एवं झुलसे हुए मरीजों में भी थ्राम्बोसाइटोपीनिया देखा जा सकता है।

क्या है लक्षण ?

शरीर में प्लेटलेट्स का कार्य मुख्यतः बहते खून का थक्का जमाना है जिससे चोट लगने पर ज्यादा खून न बहे। अगर रक्त में इनकी संख्या तीस हजार प्रति मिली लीटर से कम हो जाए तो शरीर के अंदर ही अंदर रक्तस्राव शुरू हो जाता है। इससे नाक, कान, मूत्र, मल वगैरह में भी रक्त आ सकता है। कई बार यह स्थिति जानलेवा भी हो सकती है। अगर नीचे बताए गए लक्षणों में से कोई एक भी दिखे तो डॉक्टर को दिखाने में देर न करें:

शरीर पर अपने आप या आसानी से खरोंच के निशान बनना।

शरीर के किसी भी हिस्से पर छोटे या बड़े लाल–बैंगनी रंग के धब्बों का दिखना, खासकर पैर के निचले हिस्से पर।

मसूड़ों या नाक से बार–बार खून आना।

महिलाओं में मासिक के दौरान ज्यादा रक्तस्राव होना।

मूत्र या मल में खून आना।

नवजात में नाल काटने के बाद खून न रूकना।

चोट लगने के बाद लगातार रक्तस्राव होते रहना।

क्या है इलाज ?

अगर समय रहते ही प्लेटलेट्स के कम होने की वजह का पता चल जाए तो एक हद तक इसका इलाज संभव है। अगर प्लेटलेट्स की संख्या कम होने लगे विशेषकर 30,000 से नीचे की अवस्था में पहुंचे तो जल्द से जल्द मरीज को अस्पताल में भर्ती कराने के साथ उचित इलाज आवश्यक है, जिसमें बाहर से प्लेटलेट्स चढ़ाना भी शामिल है। अगर प्लेटलेट्स की कमी किसी आनुवांशिक कारण से है तो इसका पता जन्म के पहले ही डी.एन.ए. की जाँच से किया जा सकता है।

आहार एवं पोषक तत्वों की भूमिका

हालाँकि प्लेटलेट्स को बढ़ाने की कोई दवा या तरीका नहीं है लेकिन इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि आहार में उचित मात्रा में पोषक तत्वों के होने से प्लेटलेट्स कम नहीं होते।

मुख कैंसर की पूर्वावस्था के रोगः एक दृष्टि में

डा. अखिलेश चन्द्र, डा. राहुल अग्रवाल, डा. अदित, डा. अजीत परिहार एवं डा. अर्चना अग्निहोत्री

दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

भारतीय उपमहाद्वीप में मुख का कैंसर पुरुषों में, अन्य प्रकार के कैंसर की तुलना में सर्वाधिक होता है जबकि विश्व स्तर पर यह छठे स्थान पर आता है।

शोधकर्ताओं ने यह भी पता लगाया है कि निश्चित कैंसर बनने की अवस्था के पूर्व मुख के अन्दर सफेद एवं लाल रंग के धब्बे, चकत्ते तथा छाले आदि मौजूद हो सकते हैं। यदि इस अवस्था में ही रोगी की जाँच सही ढंग से की जाय तो कैंसर की स्थिति में आने से पूर्व ही उसे रोका जा सकता है।

इसके अतिरिक्त जनमानस में भी कैंसर की पूर्व अवस्था के लक्षणों की जानकारी के अभाव के कारण, वे चिकित्सक के पास देर से पहुँचते हैं जिस कारण इनकी मृत्युदर अधिक है।

मुख कैंसर के कारण

1. विभिन्न प्रकार से तम्बाकू का सेवन तथा धूम्रपान करना– अधिक मात्रा में तम्बाकू सेवन कैंसर की संभावना बढ़ा देता है।
2. मद्यपान करना– यदि धूम्रपान के साथ–साथ अत्यधिक मद्यपान किया जाय तो मुख कैंसर की संभावना 6–15 गुना बढ़ जाती है।
3. विषाणुओं का संक्रमण– एच.पी.वी.–16 – 18, ई. बी.वी. आदि।
4. सूर्य की पराबैंगनी किरणें– होठों तथा मुख के किनारों पर कैंसर कर सकती हैं।

मुख कैंसर की पूर्वावस्था के प्रमुख रोग

1. ल्यूकोप्लाकिया (मुख में सफेद चकत्ते एवं दाग)

मुख के अन्दर यदि सफेद रंग के धब्बे तथा चकत्ते दिखाई दें और यदि उसका कोई भी अन्य कारण सुनिश्चित न किया जा सके, तो इस अवस्था को ल्यूकोप्लाकिया कहा जाता है।

इस रोग में मरीज को कोई तकलीफ या दर्द नहीं होता है तथा इस रोग के कैंसर में परिवर्तन की दर 0.3–0.5 प्रतिशत हो सकती है।

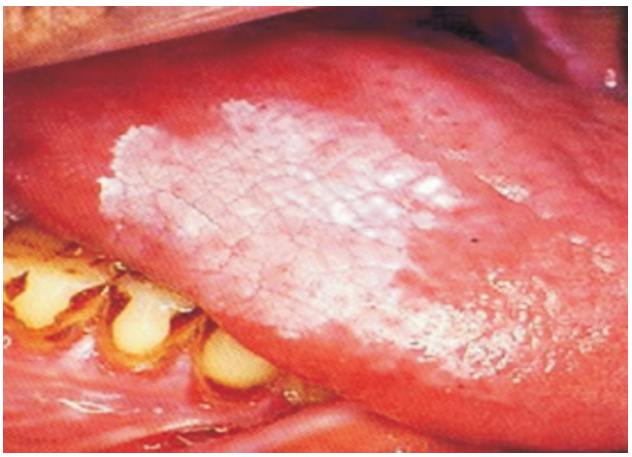

होमोजीनस ल्यकोप्लाकिया के लक्षण

नान–होमोजीनस ल्यूकोप्लाकिया के लक्षण

ल्यूकोप्लाकिया कई प्रकार का हो सकता हैः

अ. **होमोजीनस ल्यूकोप्लाकियाः** इस अवस्था में केवल सफेद रंग के चकत्ते मुँह के कई स्थानों पर

समान रूप से पाए जा सकते हैं। इन चकत्तों को किसी भी वस्तु की सहायता से हटाया नहीं जा सकता है।

ब. **नान–होमोजीनस ल्यूकोप्लाकिया**–इस अवस्था में सफेद धब्बों के साथ–साथ लाल रंग के धब्बे एवं चकत्ते भी पाए जा सकते हैं। कुछ चकत्ते उभरे हुए भी हो सकते हैं।

2. इरिथ्रोप्लाकिया (मुँह में लाल रंग के धब्बे, चकत्ते एवं छाले)

मुख के अन्दर यदि लाल रंग के चकत्ते, छाले या घाव दिखाई दें तथा उनका कोई कारण स्पष्ट न हो तो यह रोग इरिथ्रोप्लाकिया की श्रेणी में आता है। इस अवस्था में छाले या चकत्ते के स्थान पर दर्द हो सकता है। यह अवस्था अन्य रोगों की तुलना में अधिक खतरनाक है क्योंकि इस रोग के कैंसर में परिवर्तित होने की संभावनाएं काफी ज्यादा (14–50 प्रतिशत) होती हैं।

यदि प्रभावित स्थान से ऊतक को काटकर प्रयोगशाला में जाँच की जाय, तो कोशिकाओं तथा केन्द्रकों की बनावट तथा आकार में काफी असमानता पाई जाती है। यह स्थिति ऊतक के कैंसर में परिवर्तन को इंगित करती है।

3. ओरल सबम्यूकस फाइब्रोसिस

कैंसर की इस पूर्वावस्था में धीरे–धीरे मुँह की जकड़न बढ़ती जाती है तथा मुँह खोलने में कठिनाई होती है। मुँह कम खुलने लगता है।

यह रोग दक्षिणपूर्व एशिया तथा भारतीय उपमहाद्वीप में मुख्य रूप से पाया जाता है।

मुँह की जकड़न

यह धीरे–धीरे होने वाला रोग है जो मुख्य रूप से पान में डाली जाने वाली सुपाड़ी तथा तम्बाकू के सेवन से होता है। यह अवस्था शनैः शनैः मुँह के सभी भागों को प्रभावित करती है। इस अवस्था के कैंसर में परिवर्तन की दर 7–13 प्रतिशत है।

इस अवस्था के प्रमुख लक्षण निम्न हैं:

मुँह की जकड़न।

मुँह का कम/न खुलना

मुँह में जलन, मुख्यतया मिर्च–मसालेदार भोजन के सेवन के कारण।

मुँह के पीछे के हिस्से में छाले तथा छोटे–छोटे घाव होना।

मुँह के भीतर की त्वचा (श्लेष्मिका) का गुलाबी के स्थान पर सफेद दिखना।

स्वाद परिवर्तन, भूख न लगना।

जबड़ों की जकड़न की वजह से सामान्य कार्य जैसे भोजन चबाने, सीटी बजाने, हवा फूँकने, चूसने आदि में कठिनाई होना।

तालू में जकड़न की वजह से बोलते समय नाक से आवाज आना (Nasal tone)

गालों को अन्दर से छूने पर कड़ापन तथा चमड़े जैसा अनुभव होना; सामान्य रूप से ये मुलायम होती है)

कभी–कभी लार का कम बनना।

4. ओरल लाइकेन प्लेनस

यह रोग शरीर के प्रतिरोधक तंत्र की वजह से होता है तथा मुख की त्वचा के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों की त्वचा को भी प्रभावित करता है।

मुख के अन्दर अत्यन्त छोटे–छोटे मोती–जैसे चपटे, गुलाबी/बैंगनी दाने उभर आते हैं जिसमें खुजली भी हो सकती है। ये दाने एक जाल की तरह सफेद दानों से घिरे रहते हैं जो कभी–कभी एक सीधी रेखा में भी हो सकते हैं। इन्हें 'विकहेम्स स्ट्राइ' कहा जाता है।

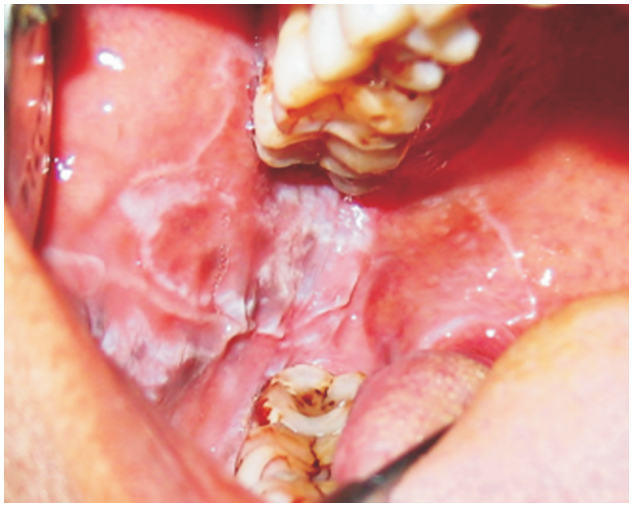

ओरल लाइकेन प्लेनस के लक्षण

ज्यादातर ये दाने मुँह के दोनों तरफ पाए जाते हैं तथा इसमें कवक का संक्रमण भी हो सकता है। ओरल लाइकेन प्लेनस कई प्रकार का हो सकता है–

अ. **रेटिकुलर लाइकेन प्लेनसः** इसमें दाने एक जाल के रूप में पाए जाते हैं।

ब. **प्लाक–लाइक लाइकेन प्लेनसः** इस अवस्था में दाने आपस में जुड़कर एक बड़ा सा चकत्ता बना लेते हैं।

स. **इरोसिव लाइकेन प्लेनसः** इस अवस्था में दानों के स्थान पर छोटे–छोटे घाव बन जाते हैं।

द. **बुल्लस लाइकेन प्लेनसः** इस स्थिति में दानों के स्थान पर बड़े आकार के छाले बन जाते हैं जो बाद में घाव में बदल सकते हैं।

उपरोक्त अवस्थाओं में से इरोसिव तथा बुल्लस लाइकेन प्लेनस के कैंसर में परिवर्तन की दर अधिक (0.4–3.7 प्रतिशत) होती है।

ओरल लाइकेन प्लेनस मुख्य रूप से तनाव ग्रस्त व्यक्तियों में, महिलाओं में, समाज के उच्च वर्ग के लोगों में, उच्च रक्तचाप तथा मधुमेह के रोगियों में तथा कुछ विशिष्ट प्रकार की दवाओं के प्रयोग से हो सकता है।

उपसंहार

कैंसर की पहचान तथा रोकथाम उसके इलाज से अधिक महत्वपूर्ण है। यदि समय रहते व्यक्ति सावधान हो जाए तो कैंसर होने से रोका जा सकता है। इस दृष्टि से कैंसर की पूर्वावस्था के रोग तथा उनके लक्षणों की जानकारी होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मुँह के अन्दर का कोई भी रोग (चकत्ते, छाले, धब्बे तथा घाव इत्यादि) यदि 2 सप्ताह से अधिक रहे तथा अपने आप या किसी भी दवा से ठीक न हो रहा हो तो उसकी प्रयोगशाला में जाँच अवश्य करा लेनी चाहिये, ताकि समय रहते उस रोग का और बेहतर तरीके से उपचार किया जा सके और वह कैंसर में परिवर्तित न होने पाए।

हृदय रोग का उपचार और आधुनिक तकनीक

डॉ. धर्मेन्द्र जैन

कार्डियोलॉजी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

कॉर्डियोलॉजी हाल के वर्षों में सबसे उन्नत चिकित्सकीय शाखाओं में से एक होकर उभरा है। दिल की बीमारियों के निदान और उपचार के लिए नई प्रौद्योगिकियों का सतत् विकास हो रहा है। दिल की बीमारियाँ समाज में काफी गति से बढ़ रही हैं।

दिल की सबसे खतरनाक बीमारियों में से एक दिल का दौरा है। यह कोरोनरी धमनियों में रूकावट की वजह से होता है। इस रोग के इलाज के लिए विभिन्न तकनीकों का विकास हुआ है जिससे अवरूद्ध धमनियों को एंजियोप्लास्टी गुब्बारा, कैथेटर और स्टेंट से खोला जा सके।

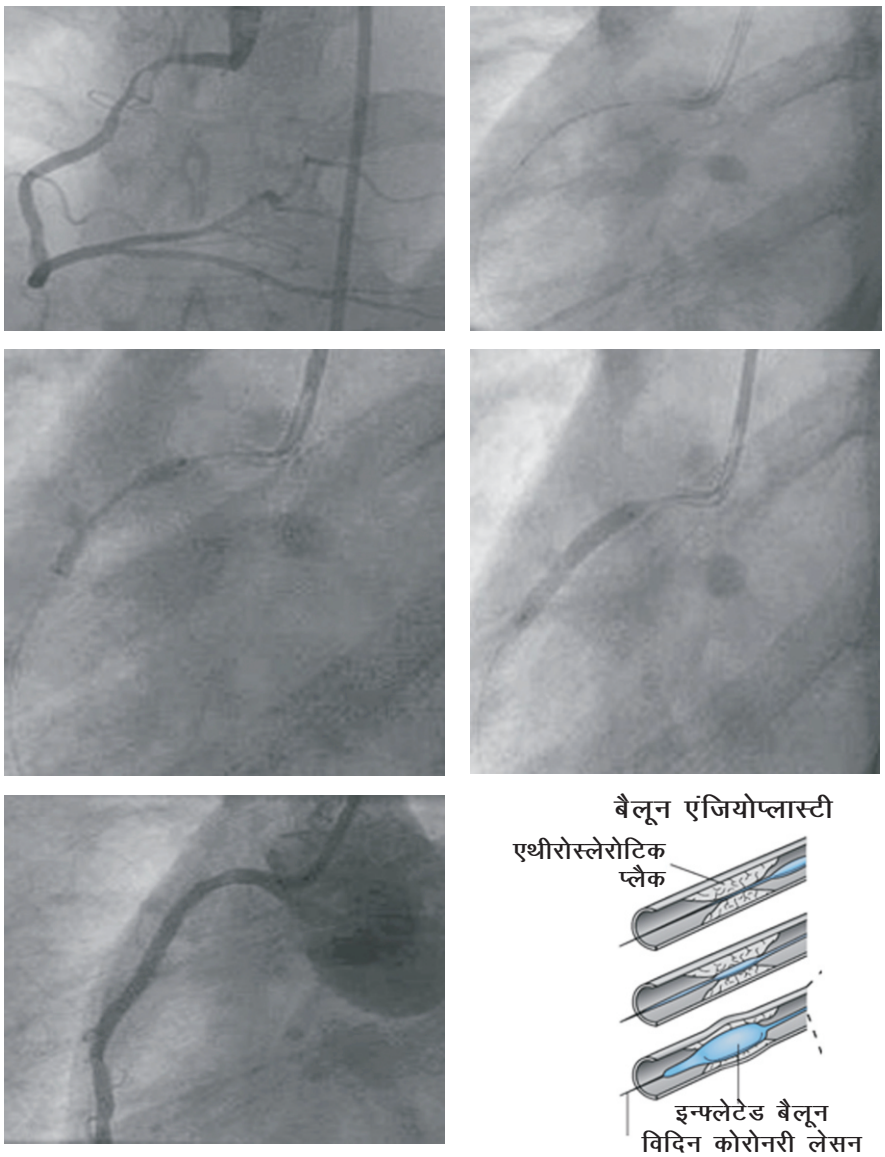

कोरोनरी एंजियोग्राफी एवं एंजियोप्लास्टी

अचानक हृदय मौत के क्षेत्र में भी हाल–फिलहाल में नई तकनीकों एवं कुशल उपकरणों का विकास किया गया है जो घातक arrtythmias की जांच करके, उसे सामान्य स्थिति में बदल देते हैं। ये यंत्र बिजली के झटके के उत्सर्जन से इलाज करते हैं। इन स्वचालित उपकरणों का उपयोग उन मरीजों में किया जाता है जिनमें अचानक हृदय मौत का ज्यादा जोखिम होता है।

इसी तरह की एक नई तकनीक है रिसिन्क्रो–नाइजेशन थेरैपी। इस तकनीक का उपयोग दिल के उन मरीजों में किया जाता है जिनमें दिल की अक्षमता के कारण पंपिंग क्षमता कम हो जाती है। इस तकनीक के द्वारा दिल की सभी दीवारों को एक बहुत ही कुशल दिल की धड़कन के साथ तालमेल से सक्रिय किया जाता है।

आगे के भाग में कुछ चिकित्सकीय विधियों का संक्षिप्त विवरण है जो पिछले दो सालों से कॉर्डियोलॉजी विभाग में शुरू की गयी हैं।

कोरोनरी एंजियोग्राफी एक विशेष प्रकार का परीक्षण है जिसमें मरीज के कोरोनरी धमनियों के अन्दर दिखाने के लिए डाई और विशेष एक्सरे का उपयोग किया जाता है। कोरोनरी धमनियों में रूकावट के कारण एन्जाइना और मायोकार्डियल इन्फ्रार्क्शन जैसे रोग हो सकते हैं। यह परीक्षण डॉक्टरों को धमनियों में रूकावटों को देखने में मदद करते हैं।

इस प्रक्रिया के लिए एक पतली लचीली ट्यूब, कैथेटर, रक्त वाहिनियों में डाल दिया जाता है जिसके माध्यम से कोरोनरी धमनियों में डाई डाला जाता है और एक्स–रे भी लिया जाता है।

इस प्रक्रिया के द्वारा मरीज के सीने में दर्द के कारण का पता लगाया जा सकता है।

इसी तरह कोरोनरी एंजियोप्लास्टी के द्वारा संकुचित धमनियों का इलाज किया जाता है। इस प्रक्रिया में एक गुब्बारे के द्वारा पहले संकुचित धमनियों को फुलाया जाता है। इसके उपरान्त उस जगह पर स्टेण्ट रखा जाता है ताकि उन धमनियों में दुबारा रूकावट न हो।

एंजियोप्लास्टी के उपरान्त अधिकांश रोगियों को एक या दो दिन बाद अवकाश मिल जाता है। इस इलाज की प्रक्रिया के बाद मरीज को कुछ दवाओं का उपयोग चिकित्सक की सलाह के अनुसार करना पड़ता है।

यह चिकित्सकीय प्रक्रिया कुछ चयनित मरीजों में बाइपास सर्जरी का एक बेहतरीन विकल्प है। इस पद्धति में नित विकास होने से यह प्रक्रिया पहले की अपेक्षा ज्यादा सफल और सरल हो गई है। औषधि लेपित स्टेंट धमनियों को जल्दी अवरूद्ध होने से रोकने के लिए निश्चित अवधि में दवा को छोड़ती रहती है। नवीनतम अनुसंधान बोयोडिग्रेडेबल स्टेंटस पर किया जा रहा है। एक बार वे अपने कार्य को पूरा कर धमनियों में अवशोषित कर लिए जाते हैं।

बी एम वी

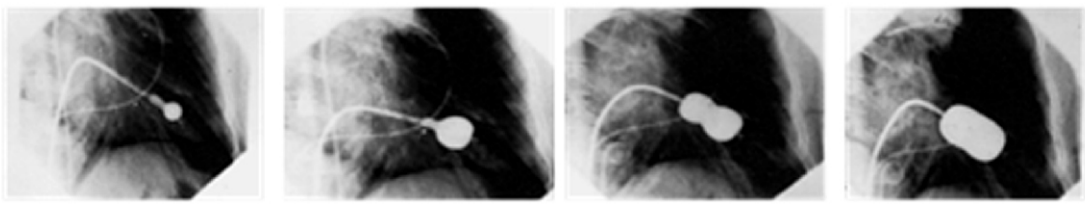

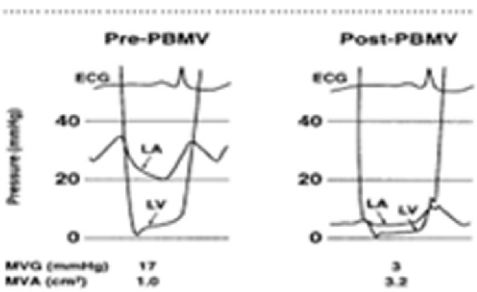

इलैक्ट्रोफिजियोलॉजी अध्ययन एक न्यूनतम इनवेसिव प्रक्रिया है, जो दिल की विद्युत चालन प्रणाली, बिजली की गतिविधि और चालन के रास्ते का अध्ययन करती है। इस परीक्षण से दिल की तेज अथवा धीमी गति का कारण और उनके उत्पत्ति के स्थान के बारे में पता लगाया जा सकता है। इसके अलावा ई.पी. अध्ययन के दौरान चिकित्सक असामान्य विद्युतीय गतिविधि का स्त्रोत पता करके उसे नष्ट भी करते हैं। इसमें कोशिकाओं को नष्ट करने के लिए उच्च ऊर्जा का उपयोग किया जाता है।

इस नवीन चिकित्सा पद्धति की शुरूआत एक कार्यशाला के माध्यम से कॉर्डियोलॉजी विभाग में पिछले वर्ष शुरू की गई थी।

कॉर्डियोलॉजी विभाग में प्रगति

वर्ष 2012 तक

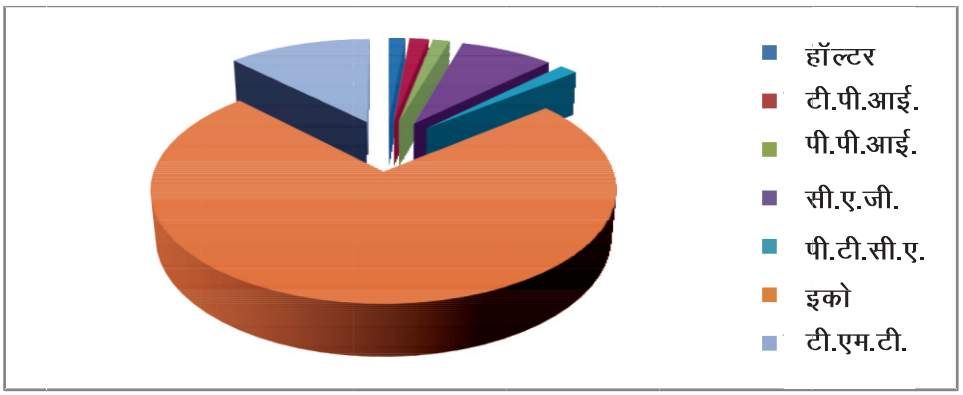

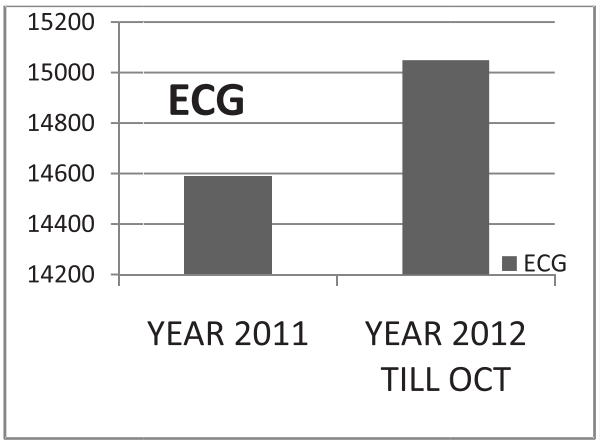

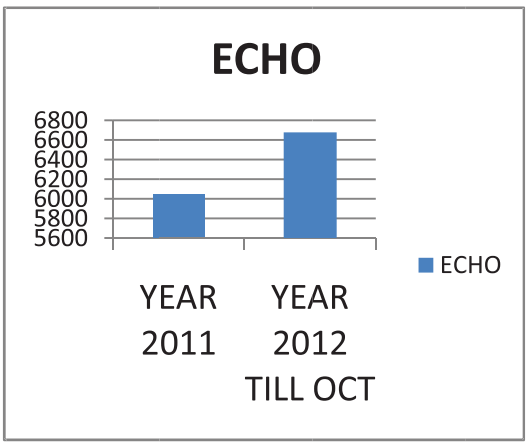

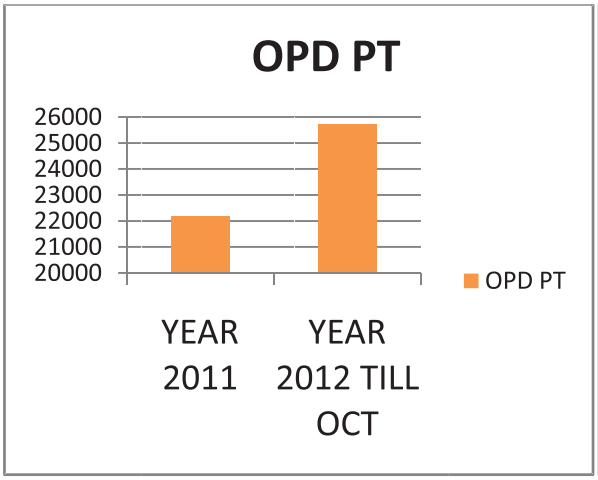

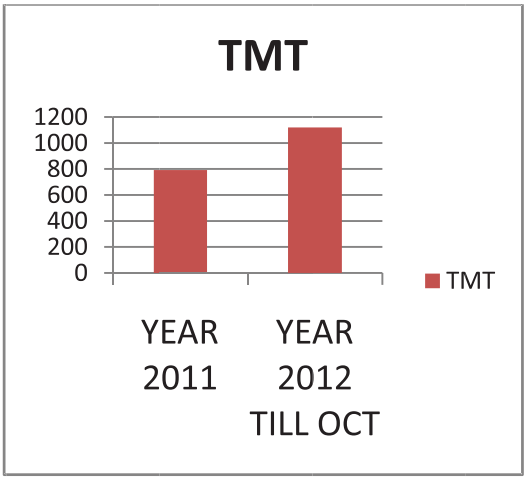

Mitral Stenosis: एक प्रकार का वाल्वुलर हृदय रोग है जिसमें Mitral Valve सिकुड़ जाता है जिसके कारण सांस फूलने, कमजोरी महसूस होने एवं हृदय धड़कने जैसी तकलीफें हो सकती हैं। इसके उपचार के लिए शल्य क्रिया, दवाइयों के अलावा एक नवीन चिकित्सकीय विकल्प है।

Mitral Valvuloplasty: एक गुब्बारे का उपयोग कर Mitral Stenosis रोग को दूर करने के लिए एक न्यूनतम इनवेसिव चिकित्सकीय प्रक्रिया है। इसमें एक विशेष गुब्बारे को एक कैथेटर के साथ दिल में पहुंचाया जाता है। गुब्बारे को वाल्व के स्थान पर स्थित करके उसे फुलाया जाता है। इससे वाल्व की सिकुड़न खुल जाती है और मरीज को आराम मिलता है।

उचित रोगी चयन के साथ Percutaneous Mitral Valvuloplasty (PBMV) अच्छी सफलता दर और जटिलताओं की कम दर के साथ जुड़ा हुआ है। अब तक की सबसे गम्भीर प्रतिकूल घटना तीव्र गम्भीर Mitral Regurgitation है। इसके होने पर रक्तचाप में कमी और फेफड़ो में सूजन हो सकती है। इसके उचार के लिए शल्य क्रिया द्वारा Mitral Valve को बदलना पड़ सकता है। पी.बी.एम.वी. के साथ अन्य गम्भीर जटिलताएं आम तौर पर ट्रांस सेप्टल पंक्चर के साथ जुड़ी हुई हैं।

PBMV के तत्काल परिणाम अक्सर काफी संतुष्टिदायक हैं। यह प्रक्रिया Mitral Stenosis से स्थायी राहत प्रदान नहीं करती है। दुबारा सिकुड़न का पता लगाने के लिए नियमित चिकित्सक की देखरेख में रहना आवश्यक है।

विगत दो वर्षों में का.हि.वि.वि. के कॉर्डियोलॉजी विभाग ने भी काफी प्रगति की है। इसमें कॉर्डियोलॉजी के क्षेत्र में हो रही नई तकनीकों के विकास का प्रयोग सम्मिलित है। इन नई तकनीकों के विश्वविद्यालय में आने से पूर्वांचल और आस–पास के क्षेत्र के लोगों को काफी आराम मिला है।

इन तकनीकों के अलावा हाल के वर्षों से नई चिकित्सकीय परीक्षण की विधियों में भी काफी उन्नति हुई है। इनमें उल्लेखनीय है– तीन आयामी इको कॉर्डियोग्राफी, परमाणु चुम्बकीय अनुनाद इमेजिंग (MRI) और मल्टी स्लाइस सीटी स्कैन। इन तकनीकों से काफी कम समय में हृदय के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध हो जाती है।

कार्डियोलॉजी के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी का लगातार विस्तार हो रहा है और नई प्रगति से हमें रोगों का निदान और उपचार करने में काफी मदद मिल रही है।

ओपेन हार्ट सर्जरी

डॉ. सिद्धार्थ लखोटिया

कार्डियोथोरैसिक विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

ओपेन हार्ट सर्जरी कार्डियक सर्जरी या दिल की शल्य चिकित्सा का जिक्र होने पर हम सबके मन में एक भय एवं 'अब क्या होगा' का ख्याल आता है। अपने इस लेख में मैं आपके साथ ओपेन हार्ट सर्जरी से सम्बन्धित कुछ पहलुओं पर चर्चा करूंगा एवं उनके बारे में व्याप्त भ्रांतियों को दूर करने की चेष्टा करूँगा।

इतिहास

कार्डियक यानि दिल की शल्य चिकित्सा का इतिहास अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम लुडविग रेन ने फ्रैंकफर्ट (जर्मनी) में 1896 में दिल के उपर लगे चाकू के घाव का सफलता पूर्वक इलाज किया। तत्पश्चात् पहली ओपेन हार्ट सर्जरी 1953 में जॉन गिब्बन ने बोस्टन (अमेरिका) में की। सर्वप्रथम कोरोनेरी आर्टरी बाईपास सर्जरी 1964 में (यूस्टन) अमेरिका में माइकल डिबेकी ने की थी। 1967 में पहली बार दिल का प्रत्यारोपण {हार्ट ट्रांसप्लान्ट} डॉ. क्रिस्टन बर्नाड के द्वारा केपटाउन (दक्षिण अफ्रीका) में किया गया।

ओपेन हार्ट सर्जरी क्या है ?

ओपेन हार्ट सर्जरी उस शल्य चिकित्सा को कहते हैं जिसमें सर्जन के द्वारा मरीज के सीने को खोल कर हृदय के उपर या अन्दर शल्य चिकित्सा की जाती है। सामान्यतः इस विधि के द्वारा हृदय में होने वाले पैदाइशी बीमारियां, कोरोनरी आर्टरी के रूकावट की बाईपास सर्जरी एवं हृदय के वाल्व की बीमारियों का इलाज होता है।

ओपेन हार्ट सर्जरी दो प्रकार से होती हैः

1. **आन पम्प {कार्डियो पल्मनरी बाईपास के सहयोग से}**: इस विधि के दौरान दिल की धड़कन को रोक दिया जाता है, एवं हार्ट लंग मशीन की सहायता से मरीज के शरीर में ऑक्सीजनयुक्त रक्त का संचार किया जाता है। इस विधि में शल्य चिकित्सा के दौरान पूरे शरीर से लौटने वाला गन्दा खून मरीज के बाहर हार्ट लंग मशीन में लिया जाता है। तत्पश्चात् उसे हार्ट लंग मशीन में लगे आक्सीजनेटर एवं पम्प की सहायता से ऑक्सीजनयुक्त करके शरीर के अन्दर वापस भेज दिया जाता है। इस विधि को कार्डियोपल्मोनरी बाईपास कहते हैं। हृदय में होने वाले पैदाइशी बीमारियां एवं हृदय के वाल्व की बीमारियों का इलाज इस विधि के द्वारा होता है।
2. **आफ पम्प {बीटिंग हार्ट सर्जरी}**: इस विधि के दौरान दिल की धड़कन को रोका नहीं जाता है। आजकल लगभग 90 प्रतिशत कोरोनरी आर्टरी बाईपास ग्राफ्टिंग इसी विधि के द्वारा होती है। दिल की धमनियां दिल के सतह पर होती हैं अतः इनमें रूकावट आने पर शरीर की दूसरी धमनियों का प्रयोग करके, रूकावट वाले हिस्से को बाईपास कर दिया जाता है। इस सर्जरी में हार्ट को अन्दर से खोलने की जरूरत नहीं पड़ती है।

ओपेन हार्ट सर्जरी क्यों करते हैं?

1. **हृदय की पैदाइशी बीमारियां,** जैसे की हृदय के अन्दर छेद, धमनियों में सिकुड़न, धमनियों का उल्टा जुड़ा होना, हृदय के कुछ हिस्सों का विकास न होना इत्यादि बीमारियों के इलाज में ओपेन हार्ट सर्जरी की आवश्यकता पड़ सकती है।
2. **कोरोनरी आर्टरी में रूकावट,** जिसकी वजह से सीने में दर्द एवं दिल का दौरा होता है। इस तरह की रूकावटों का इलाज कार्डियोलाजिस्ट के द्वारा एंजियोप्लास्टी की विधि से या कार्डियक सर्जन के द्वारा कोरोनरी आर्टरी बाईपास ग्राफ्टिंग विधि से किया जाता है।

3. **दिल के वाल्व की सर्जरी,** दिल के अन्दर चार वाल्व होते हैं। दो दाहिने व दो बायें तरफ। इन वाल्वों में सिकुड़न या रिसने की समरूप कई बीमारियों की वजह से पैदा हो सकती है। इसका मुख्य कारण बच्चों में होने वाले रूह्यूमैटिक बुखार है। जिसकी वजह से बाद में हार्ट के वाल्व खराब हो जाते हैं। शारीरिक रूप से कमजोर बच्चों में जिनमें खान–पान की कमी रहती है एवं जिनका पालन पोषण साफ–सफाई से नहीं होता है, इस बीमारी के होने की सम्भावना ज्यादा है।

बॉयोप्रोस्थेटिक वाल्व

मैकेनिकल वाल्व

हार्ट लंग मशीन

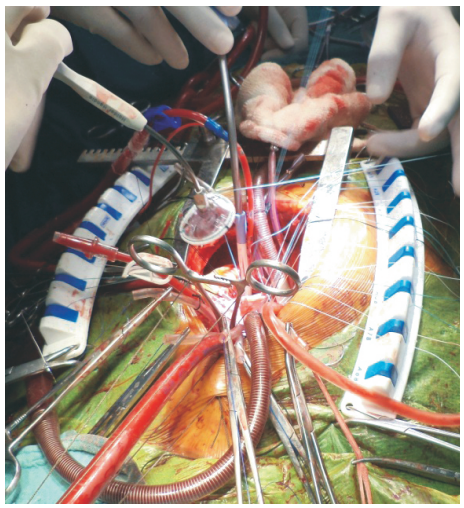

हार्ट वाल्व प्रत्यारोपण

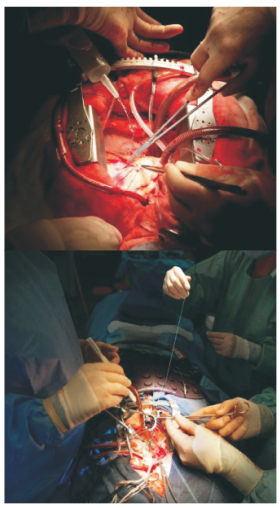

हार्ट सर्जरी इन प्रोग्रेस

कार्डियक सर्जरी, आई.सी.यू.

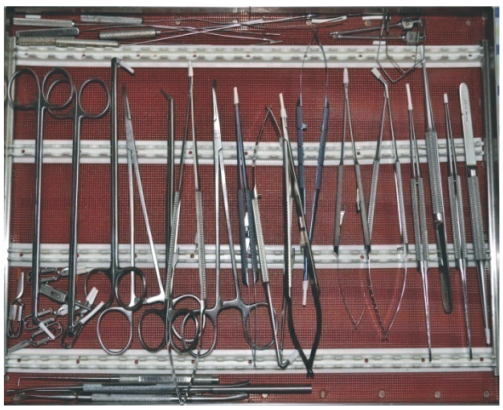

ओपेन हार्ट सर्जरी में प्रयुक्त औजार

ओपेन हार्ट सर्जरी कैसे करते हैं

ओपेन हार्ट सर्जरी कार्डियक सर्जन के नेतृत्व में एक टीम के द्वारा की जाती है। इस टीम में कार्डियक सर्जन के अलावा कार्डियक ऐनेस्थेटिक {बेहोशी के विशेषज्ञ}, परफ्यूशनिष्ट {हार्ट लंग मशीन को चलाने वाले विशेषज्ञ} एवं नर्सिंग स्टाफ विशेष रूप से होते हैं। सामान्यतः सर्जरी की अवधि 3 से 6 घण्टे की होती है। सर्जरी के एक या दो दिन पहले मरीज को भर्ती किया जाता है तथा सर्जरी के पश्चात दो से तीन दिन सघन चिकित्सा कक्ष, एवं 3 से 4 दिन वार्ड में रखने की जरूरत पड़ती है। सर्जरी में ज्यादातर ओपन हार्ट सर्जरी सीने के बीच में चीरा लगाकर होती है। कुछ विधियां दूरबीन की मदद के द्वारा भी संभव होती हैं। सर्जरी के दौरान जनरल एनेस्थिसीया दिया जाता है जिससे दर्द का एहसास नहीं होता है।

सर्जरी के पहले कुछ जरूरी जांचें जिनमें खून की जांच, छाती का एक्स–रे, ईसीजी, इकोकार्डियोग्राफी करायी जाती है। इसके अलावा एंजीयोग्राफी एवं अन्य विशेष जांच आवश्यकतानुसार करानी पड़ती हैं। तम्बाकू, धूम्रपान एवं मदिरापान सर्जरी के पहले एवं बाद में पूर्णतः वर्जित होता है। मरीज को चाहिए की वह अपना एलर्जी, अन्य बीमारियां, पुराने आपरेशन एवं स्वास्थ्य से सम्बन्धित अन्य जानकारियों से अपने शल्य चिकित्सक को पूरी तरह अवगत करा दे।

आपरेशन के प्रकार एवं मरीज के सामान्य स्वास्थ्य, उम्र तथा अन्य तथ्यों के आधार पर पूरी तरह स्वस्थ्य होने में एक से तीन महीने का समय लग सकता है।

ओपेन हार्ट सर्जरी के खतरे

सामान्यतः मरीजों में ओपेन हार्ट सर्जरी के खतरे एक से तीन प्रतिशत तक होते हैं। मरीज की अधिक आयु, कम या अधिक वजन, अन्य बीमारियाँ जैसे की उच्च रक्तचाप, मधुमेह, गुर्दे एवं लीवर की बीमारी, खराब फेफड़े इत्यादि सर्जरी के खतरों को बढ़ाते हैं। हार्ट की दुबारा सर्जरी या आपातकाल में की गई सर्जरी में खतरे ज्यादा होते हैं।

हार्ट सर्जरी के बाद ध्यान रखने योग्य बातें

अपने चिकित्सक के कहे अनुसार नियमित जांच करवाना एवं दवाएं लेना।

1. चिकनाई युक्त एवं तला हुआ भोजन न करना।
2. खाने में प्रोटीन {पनीर, दालें, चना, राजमा इत्यादि} की मात्रा ज्यादा लेना।
3. हरी साग–सब्जी, फलों एवं गाय के दूध का नियमित सेवन करना। शाकाहारी खान–पान हृदय की सेहत के लिए ज्यादा अच्छा है।
4. नियमित व्यायाम एवं योगासन करना।
5. सन्तुलित वजन रखना।
6. मानसिक एवं शारीरिक तनाव से मुक्त रहना।
7. रात में 6 से 8 घण्टे की नींद लेना
8. तम्बाकू, धूम्रपान, मदिरापान या अन्य प्रकार के नशा न करना।
9. शरीर की साफ–सफाई रखना।
10. उच्च रक्तचाप, मधुमेह एवं कोलेस्ट्राल को नियंत्रण में रखना।

हार्ट सर्जरी से सम्बन्धित कुछ भ्रांतियाँ

1. हार्ट सर्जरी में खतरा होता है; सही समय पर शल्य चिकित्सा करा लेने से खतरा कम से कम रहता है एवं फायदा अधिक होता है। सभी संसाधनों से युक्त आधुनिक अस्पतालों में हार्ट सर्जरी का खतरा लगभग नही के बराबर होता है।
2. हार्ट सर्जरी महंगी होती है; ज्यादातर सरकारी अस्पतालों में बी.पी.एल. मरीजों के लिए हृदय की शल्य चिकित्सा मुफ्त होती है। इसके अलावा हिन्दुस्तान में ऐसे कई ट्रस्ट अस्पताल हैं जहाँ ये सेवाएं मुफ्त प्रदान की जाती हैं, जैसे बैंगलोर में श्री सत्यसाईं का अस्पताल। हमारे बी.एच.यू. के सर सुन्दरलाल अस्पताल में आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के लिए मुख्यमंत्री एवं प्रधानमंत्री राहत कोष से आर्थिक सहायता की सुविधा उपलब्ध है।
3. हार्ट सर्जरी नवजात शिशुओं में नहीं होती है; आधुनिक विज्ञान में आज की तारीख में एक दिन के बच्चे की हृदय की शल्य क्रिया को भी संभव कर दिया है। हमारे देश में ऐसे कई अस्पताल हैं जहाँ नियमित रूप से नवजात शिशुओं की हार्ट सर्जरी होती है। सरकारी अस्पतालों में इनमें मुख्य रूप से एम्स, नई दिल्ली है।
4. हार्ट सर्जरी दुबारा नहीं होती है; जरूरत पड़ने पर उन मरीजों की सफलतापूर्वक हार्ट सर्जरी हो जाती है जिनकी पहले भी यह सर्जरी हो चुकी है।

कमर दर्द – कारण व निवारण

डॉ. आर. के. गुप्ता

छात्र स्वास्थ्य संकुल, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

पीठ का दर्द एक ऐसा लक्षण है जो चलते, बैठते व सोने की मामूली परेशानियों से लेकर रीढ़, पेट व छाती की गंभीर बीमारियों की वजह से भी हो सकता है। आम भाषा में पीठ के दर्द से तात्पर्य होता है पीठ के निचले भाग, कमर का दर्द।

किसे होता है कमर दर्द

कमर दर्द 70 से 80 प्रतिशत व्यक्तियों को अपने जीवनकाल के दौरान कम से कम एक बार अवश्य होता है। कमर दर्द वृद्धावस्था की तकलीफ है, यह एक भ्रम है। छोटा या बड़ा कोई भी इसके भय से मुक्त नहीं है। गर्भवती स्त्रियों में गर्भ के दौरान व बाद में मासिक धर्म के दौरान कमर दर्द एक आम समस्या है। वयस्कों में होने वाला कमर दर्द यांत्रिक, डिस्कोजेनिक, एन्काइलोजिंग स्पॉन्डलाइटिस आदि के कारण होता है। लेकिन टी.बी. जैसा रोग वयस्कों में कमर दर्द का एक महत्वपूर्ण कारण है। विवाहित महिलाओं में कमर दर्द गर्भाशय में सूजन, मासिक धर्म की गड़बड़ी, गर्भावस्था, कैल्शियम व विटामिन डी की कमी आदि की वजह से होता है। जल्दी–जल्दी गर्भधारण करना भी कमर दर्द बने रहने का एक कारण है। बच्चों में होने वाला कमर दर्द गंभीर बीमारियों जैसे टी.बी., ऑस्टियो माइलाइटिस, जन्मजात विकृतियां आदि से होता है। जबकि वृद्धावस्था में होने वाला कमर दर्द ऑस्टियोपोरोसिस, ऑस्टियोआर्थराटिस या कैंसर के रीढ़ की हड्डी में पहुंचने के कारण होता है। चोट से होने वाला कमर दर्द किसी भी उम्र में हो सकता है। मानसिक तनाव दर्द को बढ़ाता है। कभी–कभी कमर दर्द का मुख्य कारण मानसिक तनाव भी होता है।

रोकथाम

दैनिक जीवन में मामूली परिवर्तन करने से नित्य होने वाले कमर दर्द से बचा जा सकता है। जो व्यक्ति कमर दर्द से ग्रसित है उनमें भी निम्नलिखित उपाय कमर दर्द कम करने में सक्षम है।

लेटना

लेटने के लिए सख्त एवं समतल धरातल का उपयोग करें। कपड़े के बने पालने में न सोयें। यदि कमर में दर्द रहता है तो सीधे लेटते समय घुटने के नीचे तकिया लगाकर सोयें। करवट से लेटते समय नीचे वाला पैर सीधा व उपर वाला पैर घुटने व कूल्हे से सुविधानुसार इतना मोड़े कि घुटना कूल्हे से उंचा रहे।

बैठना

बैठते समय सीधे बैठें। पीठ को कुर्सी की पीठ से सटा कर रखें। यदि कुर्सी की पीठ 10 अंश के करीब पीछे झुकती हो तो अधिक अच्छा है। कुर्सी की ऊंचाई या बैठने वाली सतह की ऊंचाई इतनी ही हो कि, पंजे पूरी तरह जमीन पर तथा घुटने कूल्हे के जोड़ से ऊंचे रहें। कुर्सी पर बैठै–बैठे घूमने के स्थान पर कुर्सी सहित घूमना चाहिए। यदि बार–बार घूमना पड़ता हो तो घूमने वाली कुर्सी का प्रयोग करें। जब कुर्सी से उठ रहे हों तब पहले कुर्सी पर आगे खिसकिएं दोनों हाथों को कुर्सी के हत्थे पर रखें और बिना कमर झुकाए हाथों के सहारे से सीधे खड़े हो जाएं।

खड़े होना

दोनों पैरों पर बराबर वजन रखने से कमर स्वतः ही सीधी रहती है। कमर सीधी एवं कंधे संतुलित रखने में कमर एवं पेट के सभी स्नायुओं एवं मांसपेशियों पर बराबर दबाव पड़ता है एवं वे देर से थकती हैं यदि बहुत लम्बे समय तक खड़ा रहना हो तो एक पैर दूसरे पैर की अपेक्षा कुछ ऊंचाई पर रखें एवं पैर पर शरीर का कुछ भार अवश्य सहन करें।

चलना

सीधे चलें एवं वजन लेकर चलते समय दोनों हाथों में आधा–आधा {बराबर} वजन लेकर चलें।

कार्यप्रणाली में परिवर्तन

बोझ उठाते समय

वजन उठाने के लिए कमर को सीधा रखते हुए घुटना मोड़ कर नीचे बैठें। कोहनी को मोड़ कर वजन को यथासंभव शरीर के निकट करके पकड़ें और खड़े हो जाएं। यही तकनीक महिलायें बच्चा गोद लेते समय अपनाएं और बच्चे को गोद में लेकर चलते समय छाती से लगाकर रखें। दस किलो से अधिक वजन के बच्चे को गोद में लेकर न चलें।

कार्यालय में कार्य करते समय

कार्यालय में बैठने के लिए ऐसी कुर्सी का प्रयोग करें जिसमें हाथ रखने के लिए हत्थे भी हों। लिखने या पढ़ने का कार्य करने के लिए उचित ऊंचाई की मेज चुनें एवं कुर्सी को यथासंभव मेज के करीब रखें। देर तक बैठे–बैठे थक जाने पर बैठकर रीढ़ की घुमावदार व्यायाम थकान कम करने में बहुत सहायक होते हैं। यदि बैठे–बैठे कमर में दर्द हो जाता है तो कमरे में ही थोड़ी देर तेज–तेज चलने से आराम मिल जाता है।

घरेलू कामकाज करते समय

महिलाओं को रसोई घर में एक स्टूल एवं एक चौकी रखनी चाहिए। कार्य करते समय बीच–बीच में स्टूल आराम करने के काम तो आता ही है साथ ही ऊंचाई से सामान उठाने के काम भी आता है। इसी प्रकार खड़े होते समय चौकी पर पैर रखने एवं कम उंचाई से सामान उठाने में मदद करती है। घर की सफाई करने के लिए झुकने के स्थान पर बैठकर करें। अनाज बीनने या सब्जी काटने के लिए मेज–कुर्सी का प्रयोग करें।

गाड़ी चलाते समय

लम्बी दूर की यात्रा करते समय प्रत्येक एक–दो घण्टे बाद गाड़ी से उतरे, मांसपेशियों/जोड़ों को आराम दे तथा फिर पुनः यात्रा प्रारम्भ करें।

ध्यान, योग तथा प्राणायाम

मानसिक तनाव कमर दर्द का एक प्रमुख कारण है, ध्यान {मेडिटेशन}, योग तथा प्राणायाम द्वारा मन को एकाग्रचित करके कमर दर्द को नियंत्रित किया जा सकता है तथा ये शरीर को निरोग रखने में काफी सहायक हैं। प्रतिदिन 30 मिनट तक तेजगति से चलना तथा 15–30 मिनट तक ध्यान/योग शरीर को निरोग रखने के लिए बहुत उपयोगी है।

वेशभूषा में परिवर्तन

ढीले वस्त्र पहनें एवं कमर की बेल्ट या नाड़े को अनावश्यक न कसें। ऊंची ऐड़ी के जूते एवं चप्पल प्रयोग करने से कमर के स्नायुओं पर अधिक तनाव पड़ता है। अतः यदि कार्य चलने–फिरने का हो तो समतल जूते–चप्पल का प्रयोग करें।

नियमित व्यायाम

नियमित व्यायाम के लिए दिनचर्या में कुछ समय अवश्य रखें। नियमित व्यायाम स्नायुओं एवं मांसपेशियों को शक्तिशाली एवं मस्तिष्क को स्वस्थ रखता है। व्यायाम में कमर, पेट, पेडू एवं कूल्हे की मांसपेशियों को शक्तिशाली करने वाले व्यायामों और मेरूदण्ड के घुमावदार व्यायामों को अवश्य करें।

सूर्य नमस्कार

सूर्य नमस्कार के 12 व्यायाम कमर तथा शरीर को लचीला बनाने तथा जोड़ो को मजबूत बनाने के उत्कृष्ट व्यायाम हैं। पुराने कमर दर्द रोगियों के लिए बहुत उपयोगी है। यह शरीर के मांस पेशियों तथा जोड़ो में खिंचाव उत्पन्न करता है तथा उन्हें मजबूत भी बनाता है। शुरूआत में इसे सिर्फ पांच बार से शुरू करके फिर अपनी क्षमता के अनुसार बढ़ायें।

गुर्दा रोगः लक्षण एवं निदान

डॉ. शिवेन्द्र सिंह

गुर्दा रोग विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आधुनिक जीवनचर्या पाश्चात्य खान–पान एवं मिलावट के चलते गुर्दा {किडनी} रोग आज एक विकराल समस्या बनता जा रहा है। एक अध्ययन के अनुसार आज 13 प्रतिशत आबादी गुर्दा रोग की प्रारंभिक अवस्था से ग्रसित है एवं 0.1 प्रतिशत जनसंख्या गंभीर किडनी फैल्यूर {डायलिसिस की जरूरत} से पीड़ित है।

आज के परिप्रेक्ष्य में गुर्दा रोगों के बारे में जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि अगर शुरूआती अवस्था में उपचार शुरू हो सके तो इसके गंभीर दुष्परिणामों एवं बीमारी के बढ़ाव को रोका जा सकता है।

गुर्दे की संरचना एवं कार्य

गुर्दा {किडनी} हमारे शरीर का महत्वपूर्ण अंग है और उसका मुख्य कार्य रक्त का शुद्धीकरण है। मानव शरीर में सामान्यतः दो गुर्दे होते हैं। दोनों गुर्दे पेट में पीछे की तरफ रीढ़ की हड्डी के दोनों तरफ स्थित होते हैं। किडनी सेम के बीज के आकार की होती है जिनकी लंबाई अनुमानतः 10 सेमी और चौड़ाई 5 सेमी होती है। किडनी का वजन सामान्यतः 150 ग्राम होता है।

गुर्दे के प्रमुख कार्य

1. रक्त का शुद्धीकरण
2. शरीर में पानी का संतुलन
3. अम्ल {एसिड}, क्षार {बेस} और इलेक्ट्रोलाइट {सोडियम, पोटैशियम} का संतुलन
4. रक्तचाप नियंत्रण
5. रक्तकणों के उत्पादन में योगदान
6. हड्डियों की मजबूती में योगदान।

गुर्दे की बीमारी मुख्यतः निम्न प्रकार की होती है

1. एक्यूट रीनल फेल्योर
2. क्रोनिक रीनल फेल्योर
3. नेफ्रोटिक सिंड्रोम
4. गुर्दे की पथरी
5. वंशानुगत गुर्दे की बीमारी

किडनी रोग के पूर्वसूचक

किडनी रोग का खतरा सभी व्यक्तियों में समान रूप से नहीं पाया जाता है। निम्नलिखित बीमारियां/स्थितियां इसकी सम्भावना बढ़ा देती है :

1. उच्च रक्त चाप
2. मधुमेह
3. दर्द निवारक दवाओं का लम्बे समय तक अत्यधिक सेवन
4. वृद्धावस्था
5. धूम्रपान
6. मोटापा
7. आनुवांशिकता–कुछ किडनी बीमारियां आनुवांशिक होती है एवं पीढ़ी दर पीढ़ी पायी जाती है।

उपरोक्त स्थितियों में पीड़ित व्यक्ति को अधिक सजग रहना चाहिए एवं समय–समय पर जांच करवाते रहना चाहिए।

गुर्दा रोग के लक्षण

यह बहुत ही दुर्भाग्य की बात है कि शुरूआती अवस्था में कोई विशेष लक्षण नहीं होते हैं एवं अन्तिम अवस्था में रोग के गंभीर रूप धारण कर लेने पर ही व्यक्ति को गुर्दा रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। जिसकी वजह से निदान एवं उपचार में काफी विलम्ब हो जाता है। इसके विभिन्न लक्षण निम्नलिखित हैं:

1. पैरों में सूजन आना

2. कमजोरी एवं थकान महसूस होना
3. भूख कम लगना एवं स्वाद का अनुभव कम होना
4. लगातार उल्टी एवं मचली लगना
5. लाल अथवा गहरे भूरे रंग का मूत्र आना
6. 24 घण्टे में होने वाले कुल मूत्र की मात्रा कम अथवा ना के बराबर हो जाना।
7. पेशाब में बार–बार जलन होना।

गुर्दा रोग निदान

जिन लोगों में गुर्दा रोगों की पूर्वजनक स्थितियां मौजूद हैं उन्हें इस बीमारी के लक्षणों को ध्यान में रखना चाहिए एवं शक होने पर गुर्दा रोग विशेषज्ञ से राय लेना तथा जांच करवाना चाहिए।

डायलिसिस

डायलिसिस की प्रक्रिया द्वारा, खराब हुए गुर्दे के कारण शरीर में एकत्रित हानिकारक पदार्थों को शरीर से बाहर किया जाता है। जिनके गुर्दे पूर्णरूप से खराब हो जाते हैं तथा ठीक नहीं हो सकते हैं, उन्हें नियमित डायलिसिस द्वारा लम्बी अवधि तक स्वस्थ रखा जा सकता है।

डायलिसिस दो प्रकार की होती है –

1. हीमोडायलिसिस, इसमें मरीज को अस्पताल में आकर डायलिसिस करवाना होता है।
2. सी.ए.पी.डी., इस प्रक्रिया में मरीज घर पर रहते हुए स्वयं अपना डायलिसिस एक साधारण प्रक्रिया से कर सकता है।

गुर्दा प्रत्यारोपण

पूर्णरूप से खराब हुए गुर्दे के मरीजों में एक दूसरा {किसी अन्य व्यक्ति का} गुर्दा लगा देने से मरीज लगभग पूर्णरूप से स्वस्थ हो जाता है। गुर्दा रोगियों के लिए यह सबसे अच्छा ईलाज है।

वृक्क विभाग– एक नजर

विभाग स्थापना	–	1976
पेरिटोनियल डायलिसिस	–	1978
हीमोडायलिसिस	–	1980
डी.एम. नेफ्रोलॉजी कोर्स	–	1980
सी.ए.पी.डी.	–	1997
सम्पूर्ण वृक्क विभाग उच्चीकृत	–	1998
गुर्दा प्रत्यारोपण	–	1999
एम.सी.आई. प्रमाणित	–	2008

धूम्रपान का मानव स्वास्थ्य एवं वातावरण पर दुष्प्रभाव

डॉ. शशिकांत च.उ. पटने

पैथोलॉजी विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

धूम्रपान का अभिन्न सम्बन्ध तम्बाकू से है। तम्बाकू क्या है? तम्बाकू निकोटिआना नामक प्रजाति के पौधों की सूखी पत्तियों से निर्मित एक व्यसनकारी पदार्थ है। तम्बाकू को जलाने के पश्चात उत्पन्न धुएं को श्वास के माध्यम से पीने की प्रक्रिया धूम्रपान कहलाती है। तम्बाकू का सेवन बीड़ी, सिगरेट, सिगार, हुक्का इत्यादि के माध्यम से धूम्रपान के रूप में किया जाता है। भारत में तम्बाकू का सेवन लगभग 60 प्रतिशत धूम्रपान के रूप में तथा शेष 40 प्रतिशत धूम्ररहित पदार्थों के माध्यम से होता है। भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद के अनुसार भारत में लगभग 20 करोड़ लोग तम्बाकू का सक्रिय सेवन करते हैं। तम्बाकू सेवन की वजह से पूरे विश्व में प्रतिवर्ष पचास लाख लोगों की मृत्यु होती है जिनमें से दस लाख भारतीय हैं।

मैं जिंदगी का साथ निभाता चला गया, हर फिक्र को धुएं में उड़ाता चला गया... फिल्म हम दोनों {1961} का यह प्रसिद्ध गीत हम सभी ने देखा है जिसमें नायक को सिगरेट पीते हुए दिखाया गया है। इस गीत के शब्दों पर हम ध्यान दें तो पाएंगे कि वस्तुस्थिति बिलकुल विपरीत है क्योंकि धूम्रपान करने वाला जिंदगी का साथ निभाता नहीं बल्कि छोड़ता चला जाता है। धूम्रपान से न केवल सम्बंधित व्यक्ति के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है वरन् वातावरण में छोड़े गऐ धुएं से धूम्रपान न करने वालों में भी फेफड़े के कैंसर जैसी घातक बीमारी हो सकती है। धूम्रपान से होने वाली मृत्यु की मुख्य वजह हृदय एवं रक्तवाहिनियों की बीमारियां, विभिन्न प्रकार के कैंसर तथा दीर्घकालिक श्वसन की बीमारियां हैं। धूम्रपान मानवीय मृत्यु का सर्वाधिक प्रमुख कारक है अर्थात् धूम्रपान से बचाव लंबी आयु एवं निरोगी जीवन की निश्चित गारंटी देता है। यदि धूम्रपान न किया जाए तो धूम्रपान करने वालों की तुलना में जीवित रहने की संभावना 30 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। इसी प्रकार यदि धूम्रपान छोड़ दिया जाये तो समस्त रूप से मृत्यु होने की संभावना तथा हृदय की बीमारियों से मृत्यु होने के खतरे में विशेष कमी आती है। धूम्रपान छोड़ने पर फेफड़े के कैंसर से मृत्यु होने की दर अगले पांच वर्षों में 21 प्रतिशत तक कम हो जाती है। तथापि, अतिरिक्त खतरा अगले 30 वर्षों तक बना रहता है।

धूम्रपान आरम्भ करने की आयु का फेफड़े तथा अन्य अंगों के कैंसर होने से विशेष सम्बन्ध है। यदि धूम्रपान आरम्भ करने की आयु में विलम्ब किया जाए तो फेफड़े तथा अन्य अंगों के कैंसर होने का खतरा भी कम हो जाता है। हालांकि बच्चे कम आयु से ही धूम्रपान तथा अन्य तम्बाकू उत्पादों का सेवन प्रारंभ कर देते हैं। दिल्ली के समीप स्थित नोएडा शहर के 11 से 19 वर्ष आयु के 4786 स्कूली बच्चों में हुए एक सर्वेक्षण में चौकाने वाले आंकड़े सामने आये। इस सर्वेक्षण के अनुसार धूम्रपान तथा अन्य तम्बाकू उत्पादों का सेवन प्रारंभ करने की औसत आयु 12.4 वर्ष पायी गयी। सर्वेक्षण में सम्मिलित 11.2 प्रतिशत बच्चे तम्बाकू का सेवन तथा 8.8 बच्चे धूम्रपान करते थे। पन्द्रह वर्ष से कम आयु के इन्हीं बच्चों में लगभग 70 प्रतिशत लड़के और 80 प्रतिशत लड़कियों ने तम्बाकू सेवन की आदत 11 वर्ष के पूर्व प्रारंभ कर दी थी।

वातावरणीय तम्बाकू का धुआँ {निष्क्रिय धूम्रपान}

धूम्रपान करने वाला अपने शरीर को तो हानि पहुंचाता ही है साथ ही धुएं के माध्यम से अपने आसपास धूम्रपान न करने वालों को भी अवांछनीय क्षति पहुंचाता है। धूम्रपान से उत्पन्न तम्बाकू के धुएं को वातावरणीय तम्बाकू का धुआं कहते हैं। यह मूलतः दो प्रकार का होता है। मुख्यधारा धुआं एवं पक्षधारा धुआं। मुख्यधारा धुआं धूम्रपान के पश्चात मुंह तथा नाक से वातावरण में छोड़ा गया धुआं है जबकि सिगरेट के जलते सिरे से वातावरण में फैलने वाले धुएं को पक्षधारा धुआं कहते हैं। वायु में उपस्थित

वातावरणीय तम्बाकू का धुआँ धूम्रपान न करने वालों द्वारा श्वसन से ग्रहण किया जाता है, अतः इसे निष्क्रिय धूम्रपान भी कहते हैं। इस धुएं के बारे में निम्नलिखित कुछ विशेष तथा रोचक तथ्य जानने योग्य हैं:

वातावरणीय तम्बाकू के धुएं में 4000 से अधिक विषैले तत्व पाए जाते हैं जिनमें 60 से अधिक तत्व विभिन्न प्रकार के कैंसर उत्पन्न करते हैं।

धूम्रपान करने वाले केवल एक तिहाई धुएं को ही पीते हैं शेष दो तिहाई धुऐं को वे वातावरण में छोड़ देते हैं जिसमें निकोटिन तथा टार जैसे विषैले तत्वों की मात्रा दोगुनी होती है।

इटली में हुए एक शोध कार्य के अनुसार सिगरेट का धुआं वाहनों से उत्पन्न धुएं की अपेक्षा दस गुना अधिक वातावरण को प्रदूषित करता है। इसका कारण यह है कि वातावरणीय तम्बाकू के धुएं में अत्यन्त हानिकारक महीन आणविक पदार्थ पाए जाते हैं।

इस धुएं के नियमित संपर्क में आने से धूम्रपान न करने वालों में फेफड़े तथा हृदय संबंधित बीमारियों की संभावना क्रमशः 25 प्रतिशत तथा 10 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। साथ ही फेफड़े के कैंसर होने का खतरा भी 1.3 गुना बढ़ जाता है।

अमेरिका की एक रिपोर्ट में यह अनुमान लगाया है कि जो लोग धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के साथ रहते हैं, उनमें फेफड़े के कैंसर होने की संभावना 20 से 30 प्रतिशत तक अधिक हो जाती है।

चूंकि बच्चों में चयापचय की दर अधिक होती है अतः बच्चे धुएं की अधिक मात्रा अवशोषित कर लेते हैं जिससे उनमें वातावरणीय तम्बाकू के धुएं के दुष्प्रभाव अधिक होते हैं।

धूम्रपान न करने वालों में निष्क्रिय धूम्रपान के स्तर को रक्त की जांच से पता लगाया जा सकता है। यह जांच कोटिनिन नामक तत्व के स्तर को रक्त में मापती है, जो निकोटिन के विघटन से शरीर में बनता है।

इन्हीं सब दुष्प्रभावों के कारण भारतीय उच्चतम न्यायालय ने सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान करने से रोक लगा दी है।

तम्बाकू के धुएं में मौजूद हानिकारक रसायन एवं उनका प्रभाव

तम्बाकू के जलने से उत्पन्न धुएं में अनेक हानिकारक रसायन होते हैं। ये रसायन गैसीय अवस्था अथवा महीन कण के रूप में उपस्थित रहते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख तत्वों की सूची निम्नानुसार है –

हानिकारक तत्व	प्रभाव
टार	कैंसर–कारक
निकोटिन	गैन्गलीयोन का उत्तेजन एवं अवसाद, ट्यूमर का विस्तार, व्यसनकारी
आर्सेनिक, कैडमियम, बेरिलियम, क्रोमियम, निकल {भारी धातुएं}	कैंसर कारक
बेंजीन	कैंसर कारक
1.3 ब्यूटाडाइन, इथिलीन ऑक्साइड, {गैसीय पदार्थ}	कैंसर कारक
पोलोनियम–210 {रेडियोधर्मी तत्व}	कैंसर कारक
फीनोल	ट्यूमर का विस्तार, श्लेष्म झिल्ली की जलन
फोर्मलडिहाईड	सिलिया को क्षति, श्लेष्म झिल्ली की जलन, कैंसर कारक
बेंजो { }	कैंसर कारक
नाइट्रोजन के ऑक्साइड	सिलिया को क्षति, श्लेष्म झिल्ली की जलन

निकोटिन एवं व्यसन

तम्बाकू की पत्तियों में निकोटिन नामक तत्व पाया जाता है जो व्यसन एवं धूम्रपान के तुरंत पश्चात होने वाले प्रभावों के लिए जिम्मेदार है। रक्त में पहुंचने के तुरंत पश्चात निकोटिन मस्तिष्क में एसीटाईल कोलिन रिसेप्टर से बंध जाता है तथा केटेकोलामिन स्राव के माध्यम से शरीर में हृदय की धड़कन तथा रक्तचाप को बढ़ा देता है। निकोटिन की वजह से ही तम्बाकू के सेवन तथा धूम्रपान की लत लग जाती है। सिगरेट बनाने वाली सभी प्रमुख कंपनियों ने सिगरेट में निकोटिन की मात्रा को कई वर्षों में क्रमशः बढ़ाया है। एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 1997 से 2005 के मध्य सिगरेट में निकोटिन की मात्रा में प्रतिवर्ष 1.78 प्रतिशत की औसत वृद्धि पायी गयी। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सिगरेट बनाने वाली कंपनियां आर्थिक लाभ के लिए सिगरेट के व्यसन में उत्तरोत्तर वृद्धि को बढ़ावा दे रही हैं।

धूम्रपान एवं मानवीय स्वास्थ्य

धूम्रपान मानवीय स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। धूम्रपान से लगभग सभी अंग प्रभावित होते हैं, परन्तु सर्वाधिक प्रभाव फेफड़ों पर पड़ता है। अब हम प्रमुख मानवीय अंगों एवं अंग–तंत्रों पर धूम्रपान के दुष्प्रभाव को देखते हैं।

फेफड़े एवं श्वसन तंत्र

धूम्रपान से सर्वाधिक फेफड़ो से संबंधित बीमारियां बढ़ती हैं। खासकर बच्चों में वातावरणीय तम्बाकू के धुएं से फेफड़ो की वृद्धि रूक जाती है और सांस लेने में परेशानी होती है। साथ ही अस्थमा के दौरे तथा श्वसन तंत्र संक्रमण बढ़ जाते हैं। इसके अलावा धूम्रपान से निम्न बीमारियां होती हैं:

एम्फाईसीमा, क्रोनिक ब्रोंकाइटिस, अस्थमा एवं अन्य श्वसन प्रतिरोधक बीमारियां

फेफड़े का कैंसर

न्यूमोनिया एवं श्वसन तंत्र का संक्रमण, टी.बी. का संक्रमण

लक्षण, सांस लेने में तकलीफ, आगे की ओर झुककर सांस छोड़ना, लंबे समय से खांसी आना, खांसी के साथ अत्यधिक बलगम का बनना, बलगम में खून आना, बुखार का ठीक न होना, वजन में कमी आना, छाती में दर्द होना, गले में गांठ का उभरना आदि।

हृदय एवं रक्तवाहिनी तंत्र

धूम्रपान से हृदय एवं रक्तवाहिनी संबंधित बीमारियों में विशेष वृद्धि होती है जिसमें प्रमुख हैं:

एथेरोस्क्लेरोसिस {रक्त की धमनियों का कड़ा हो जाना}

हृदयाघात {हार्ट अटैक}

बर्जर डिसीस {हाथ तथा पैर की रक्तवाहिनियों में सूजन होना एवं रक्त का थक्का बनना}

एओर्टिक एन्युरिज्मः महाधमनी {एओर्टा} का गुब्बारे के समान फैल जाना एवं ज्यादा फैलने पर फट जाने का खतरा होना।

विभिन्न प्रकार के कैंसर

धूम्रपान से कैंसर होने का निश्चित ही सम्बन्ध है। धूम्रपान से फेफड़ों के कैंसर के अलावा होंठ, मुख, तालू, भोजन नलिका {इसोफेगस}, अग्नाशय {पेनक्रियाज}, मूत्राशय, वृक्क, गर्भाशय ग्रीवा का कैंसर एवं ल्यूकेमिया भी होता है।

गर्भवती महिला एवं नवजात शिशु

यदि गर्भवती महिला स्वयं धूम्रपान करती है अथवा गर्भावस्था के समय वातावरणीय तम्बाकू के धुएं के संपर्क में आती है तो गर्भ में पल रहे शिशु पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। गर्भवती महिलाओं में धूम्रपान के प्रभाव से स्वतः भ्रूण–स्खलन का खतरा बढ़ जाता है। इसके साथ ही समय से पहले प्रसव होना, मृत शिशु का जन्म होना, जन्म के एक वर्ष के अंदर शिशु की मृत्यु हो जाना तथा कम वजन के शिशु का जन्म होना इत्यादि गर्भावस्था के दौरान धूम्रपान करने के गंभीर दुष्परिणाम हैं। अतः धूम्रपान से न केवल वर्तमान पीढ़ी वरन आने वाली पीढ़ी को भी अवांछनीय क्षति हो रही है।

भारत में धूम्रपान पर रोक सम्बन्धी कानून

धूम्रपान के व्यापक दुष्प्रभावों को देखते हुए भारतीय उच्चतम न्यायालय ने सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान करने से रोक लगा दी है। यह रोक 2 अक्टूबर 2008 से प्रभावी है। धूम्रपान निषिद्ध क्षेत्र निम्नलिखित हैं:

सभागार, सिनेमा हॉल, शापिंग माल, बाजार, उद्यान एवं बगीचे, उत्सव कक्ष

अस्पताल, पुस्तकालय, न्यायालय, डाकघर, शिक्षण संस्थान

सार्वजनिक यातायात के साधन {बस, रेल, मेट्रो, रिक्शा, टैक्सी, हवाई जहाज}

बस अड्डा, रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डा

सभी सरकारी एवं निजी कार्यालय

रेस्टोरेंट, होटल, बार, कैंटीन, नाश्ता करने की जगह, कॉफी हाउस, पब, डिस्कोथेक मनोरंजन केन्द्र आदि।

उपर्युक्त स्थानों पर धूम्रपान करते पाए जाने पर 200 रूपये का अर्थदंड देना पड़ सकता है। इसके साथ ही एक नियम के अनुसार शिक्षण संस्थानों के 100 गज के आसपास तम्बाकू उत्पादों को बेचना कानूनी अपराध है। केबल टेलीविजन नेटवर्क अधिनियम में हुए संशोधन के अनुसार 8 अक्टूबर 2000 के बाद से धूम्रपान तथा शराब का विज्ञापन दिखाना पूरी तरह से वर्जित है।

धूम्रपान छोड़ने के लाभ

धूम्रपान को किसी भी आयु में छोड़ा जा सकता है। यद्यपि लंबे समय से धूम्रपान करने वालों को धूम्रपान छोड़ते समय डॉक्टर से परामर्श कर लेना चाहिए। धूम्रपान छोड़ने से उपर्युक्त सभी बीमारियों से बचाव तथा कैंसर होने के खतरे में काफी कमी आती है। इनमें से कुछ लाभ तुरंत महसूस किये जा सकते हैं तथा कुछ लाभ लंबे समय के बाद होते हैं।

धूम्रपान छोड़ने से तुरंत होने वाले लाभ

हृदय गति एवं रक्त चाप {ब्लड प्रेशर} का सामान्य होना

कुछ घण्टों में रक्त में कार्बन मोनोऑक्साइड का स्तर कम होना– {कार्बन मोनोऑक्साइड रक्त की ऑक्सीजन वहन करने की क्षमता में भारी कमी लाती है}।

कुछ हफ्तों में रक्त का संचार सुधरना, कम बलगम का बनना, खांसी में कमी आना।

कुछ महीनों में फेफड़ों की कार्यक्षमता बढ़ना।

इसके अलावा धूम्रपान छोड़ने से मुंह की बदबू का कम होना, सूंघने की शक्ति में सुधार होना, भोजन का बेहतर स्वाद लगना।

धूम्रपान छोड़ने से लंबे समय बाद होने वाले लाभ

सभी प्रकार के कैंसर तथा धूम्रपान सम्बन्धी अन्य बीमारियों में कमी

हृदय की बीमारियों एवं दीर्घकालीन श्वसन की बीमारियों में कमी

धूम्रपान सम्बन्धी बीमारियों से होने वाली मृत्यु में कमी

अकाल मृत्यु में कमी।

निष्कर्ष

धूम्रपान से स्वयं धूम्रपान करने वाले को, उसके साथ रहने वाले को, गर्भस्थ शिशु को तथा जाने–अनजाने धुएं के संपर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को गंभीर दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं। यह हमारी आँखों के सामने समाज में फैलता हुआ वह जहर है जो हमारे वर्तमान एवं भविष्य को नष्ट कर रहा है। अतः धूम्रपान न करना ही धूम्रपान के दुष्प्रभावों से बचने का सही उपाय है। आइये परिवार, समाज एवं राष्ट्र के व्यापक हित में हम धूम्रपान न करने का संकल्प लें तथा भारत माता को सच्चा श्रद्धा सुमन अर्पित करें।

मानव स्वास्थ्य में अनुजीवियों (प्रोबायोटिक्स) का महत्व

डॉ. अजय कुमार गोयल[1], डॉ. परितोष मालवीय[1], डॉ. सरिता परिहार[2] एवं डॉ. अजित विक्रम परिहार[2]

[1]डी.आर.डी.ओ., ग्वालियर, [2]चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

हमारे पर्यावरण में जीव–जंतुओं और सूक्ष्मजीवों का नजदीकी एवं अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। सूक्ष्मजीव भी हमारी खाद्य श्रृंखला में अंतिम चरण पर होते हैं। सामान्यतः सूक्ष्मजीवों यथा–जीवाणु {बैक्टीरिया} और विषाणु {वायरस} को बीमारी का पर्याय माना जाता है। परंतु आम प्रचलित धारणा के विपरीत कई मामलों में ये सूक्ष्मजीव लाभदायक भी सिद्ध होते हैं। ज्यादातर सूक्ष्मजीव मेजबान जंतु के शरीर में पूर्ण सामंजस्य के साथ रहते हैं और कोई हानि नहीं पहुँचाते। कभी–कभी यह सामंजस्य बिगड़ जाता है और ऐसी परिस्थिति में कुछ सूक्ष्मजीव, जिन्हें पैथोजन्स या रोगाणु कहते हैं, स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालते हैं।

एक ग्राम मिट्टी में, लगभग दस करोड़ जीवाणु विद्यमान रहते हैं, और एक आकलन के अनुसर इनकी लगभग 100000 प्रजातियाँ हैं। इस धरती पर जीवाणु या बैक्टीरिया पहली जैव इकाई थे। वे रेगिस्तानों, बर्फीले पहाड़ों, समुद्रों एवं गर्म जल के स्रोतों यानि लगभग सभी जगह मिलते हैं। दुनियाभर में बैक्टीरिया की एक हजार मिलियन से अधिक प्रजातियों के होने का अनुमान है।

जीवाणु या बैक्टीरिया को हमेशा नकारात्मक भाव से देखा जाता है। हम बैक्टीरिया को तीन ''डी'' के रूप में देखते हैं– डर्ट {मैल या गंदगी}, डिसीज {बीमारी} एवं डैथ {मृत्यु}। यह सामान्य धारणा है कि बैक्टीरिया हानिकारक होते हैं। यह सही है कि कुछ बैक्टीरिया अत्यन्त घातक होते हैं, पर सभी नहीं। ज्यादातर बैक्टीरिया हानिकारक नहीं होते। बल्कि कुछ बैक्टीरिया तो मानवों और पशुओं के लिये लाभदायक भी होते हैं। मनुष्य के शरीर में लाखों जीवित बैक्टीरिया रहते हैं।

मानव आहार एवं पाचन तंत्र एक ऐसा जटिल तंत्र है जिसमें विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीव बहुतायत से पाये जाते हैं। ये सूक्ष्मजीव एक अच्छे मेहमान की तरह हमारे शरीर में रहते हैं और अपनी उपापचयी गतिविधियों से मानव स्वास्थ्य पर बेहतर प्रभाव डालते हैं, परन्तु आधुनिक जीवन शैली में प्रतिजैविकों {ऐंटीबायोटिक्स} के अंधाधुंध प्रयोग ने इस सूक्ष्मजैविक परिस्थितिकी तंत्र पर विपरीत प्रभाव डाला है जिससे कई नई बीमारियां देखने में आ रही हैं।

हमारे स्वास्थ्य एवं आहार के मध्य महत्वपूर्ण संबंध है। आहार के द्वारा ही हमें ऊर्जा एवं अन्य पोषक तत्वों की प्राप्ति होती है। प्रख्यात चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स का कथन है– ''आहार ही औषधि हो एवं औषधि आहार हो''। इस कथन द्वारा हमें स्वास्थ्य में आहार की भूमिका का एहसास होता है, हालांकि आधुनिक चिकित्सा प्रणाली लम्बे समय तक केवल आहार के दवा के रूप में प्रयोग को उचित नहीं मानती। अब आहार के सामान्य पौष्टिक गुणों से परे इनकी विशिष्ट शारीरिक भूमिका को समझने का प्रयास हो रहा है। हाल ही में कुछ विशिष्ट खाद्य उत्पादों को स्वास्थ्यवर्धकों के रूप में देखा जा रहा है जो ऊर्जा, विटामिन, प्रोटीन आदि आवश्यकताओं की पूर्ति के परे शरीर को कुछ अतिरिक्त लाभ प्रदान करते हैं। ये न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को उत्तम अवस्था में रखते हैं, अपितु बीमारियों की चपेट में आने की संभावना को भी कम करते हैं। इन खाद्य उत्पादों में अनुजीवी या अनुजैविकों {प्रोबायोटिक्स} का मुख्य स्थान है।

अनुजीवी {प्रोबायोटिक्स} क्या है?

उन सूक्ष्मजीवों के समूह को, जो अपने सकारात्मक प्रभाव द्वारा पाचन तंत्र में विद्यमान लाभदायक जीवाणुओं की वृद्धि को उत्तेजित करते हैं एवं हानिकारक जीवाणुओं का दमन करते हैं, अनुजीवी या प्रोबायोटिक्स कहलाते हैं। सदियों से मनुष्य इन अनुजीवियों को आहार के रूप में ग्रहण करता रहा है। प्रायः ये खमीर युक्त दुग्ध उत्पादों, दही आदि में बहुतायत से पाये जाते हैं। हालांकि शरीर

सौष्ठव को बनाये रखने एवं बीमारी प्रतिरोधक के रूप में इनका प्रयोग कुछ ही वर्षों से प्रारंभ हुआ है। इन अनुजीवियों ने अपने सकारात्मक गुणों के कारण बड़ी मात्रा में पोषण वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। ''प्रोबायोटिक'' शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसका तात्पर्य है– ''जीवन के लिये''। प्रोबायोटिक्स शब्द एंटीबायोटिक के विलोम के रूप में प्रयोग होता है। सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग वैज्ञानिक लिली एवं स्टिलवैल ने एक प्रोटोजोआ द्वारा उत्पन्न उस पदार्थ के लिये किया था जो अन्य पदार्थों को उत्तेजित करता है। यह कोई नया सिद्धांत नहीं है। इसके विवरण बहुतायत से देखने को मिलते हैं। ओल्ड टेस्टामेंट के पारसी संस्करण {जेनेसिस 18–8} में उल्लेख है कि अब्राहम ने खट्टे दूध, लस्सी के उपयोग द्वारा दीर्घजीवन प्राप्त किया। प्रोबायोटिक्स या अनुजीवी की कार्यप्रणाली की जानकारी के बिना ही शताब्दियों से मानव द्वारा लेक्टोबेसिलस {दही में पाये जाने वाले जीवाणु} और बाईफिडाबैक्टीरियम का उपयोग किया जाता है। 76 ई0 में प्लिनी नामक रोमन इतिहासकार ने जठर शोथ {गेस्ट्रोइन्टीराईटिस} के उपचार के लिये खमीर उठे दूध के उपयोग को लाभप्रद बताया था।

अनुजीवी या प्रोबायोटिक्स की कार्यप्रणाली को समझने के प्रयास का आरम्भ 1907 में मैक्नीकॉक के ''नशा सिद्धान्त {इन्टॉक्सीकेशन थ्योरी}'' से हुआ है। एफ.ए.ओ. एवं डब्ल्यू एच.ओ. {विश्व स्वास्थ्य संगठन} के संयुक्त कार्यदल ने वर्ष 2006 में अनुजीवी की परिभाषा इस प्रकार की है कि ''ये वे जीवित सूक्ष्मजीव हैं जिन्हें प्रचुर परिमाण में सेवन करने से व्यक्ति को स्वास्थ्य लाभ होता है।''

आहार नाल में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीव

मानव आहार नाल एक जटिल पारिस्थितिकी तंत्र है जिसमें विभिन्न एवं जटिल प्रकार के जीवाणु रहते हैं। आहार नाल, मुख से प्रारंभ होकर गुदा द्वार तक जाती है एवं हमारा शरीर इस आहार नाल का कवच मात्र है। एक स्वस्थ वयस्क मनुष्य की आहार नाल लगभग 30 फीट लंबी होती है और यह इतनी जटिल होती है कि इसमें लगभग 1012 जीवाणु होते हैं। मनुष्य द्वारा उत्सर्जित मल पदार्थ का 75 प्रतिशत भाग जीवाणु होते हैं एवं शुष्क मल में लगभग 1011 खरब सूक्ष्मजीव होते हैं जो 50 विभिन्न संघों एवं 500 विभिन्न प्रजातियों के होते हैं। आहार नाल में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीव हैं– मीथेनोजेंस, बैक्टीरोआइडस, बायाफिडा बैक्टीरिया, एसचेरिसिया कोलाई, यूबैक्टीरिया स्ट्रेप्टोकोक्की, लेक्टोबैसीलस, बैसिली इत्यादि। ये जीवाणु आहार नाल में समान रूप से नहीं फैले होते। शरीर के भीतर रहने वाले ये जीवाणु आपस में इस प्रकार क्रिया करते हैं कि मेजबान शरीर स्वस्थ रहता है। हमारा शरीर महत्वपूर्ण विटामिनों के निर्माण, पोषकों को हजम करने तथा वितरित करने एवं पैथोजनिक {रोग जनक} जीवाणु को नष्ट करने के लिये सूक्ष्मजीवों पर ही निर्भर रहता है।

अनुजीवों {प्रोबायोटिक्स} से होने वाला स्वास्थ्य लाभ

आधुनिक समाज की बदलती खाद्य आदतों एवं पर्यावरणीय प्रदूषण के कारण विभिन्न एलर्जी एवं आहार संबंधी बीमारियों का खतरा बढ़ा है। हालांकि हमारे शरीर में इन बाह्य हानिकारक जीवाणुओं से मुकाबला करने के लिये आवश्यक प्रतिरक्षा प्रणाली मौजूद होती है परंतु समुचित उत्तेजन या पोषण न होने के कारण हमारा शरीर बीमारी ग्रस्त हो जाता है। आहार एवं सूक्ष्मजीवीय एंटीजन इस प्रतिरक्षा प्रणाली के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। पिछले दशक में अनुजीवी ग्रहण द्वारा स्वास्थ्य लाभ पर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित हुआ है। अनुजीवी {प्रोबायोटिक्स} के रूप में कई सूक्ष्मजीवों का प्रयोग किया जाता है। ये प्रायः छोटी आंत में कार्य करते हैं। विभिन्न अनुसंधानों में अनुजीवियों से होने वाले लाभों की पुष्टि हुई है।

निम्नलिखित बीमारियों में अनुजीवियों के प्रयोग को लाभप्रद पाया गया है:

आहार नाल संबंधी संक्रमण जैसे गहन डायरिया, पर्यटक डायरिया, एंटीबायोटिक संबंधी डायरिया, नवजातों को होने वाला डायरिया

मूत्रीय नाल संक्रमण {यू टी आई}

जीवाणु जनित यौन संक्रमण

एक्जीमा

रक्त कोलेस्ट्रॉल एवं उच्च रक्तचाप

कैंसर

अनुजीवियों की क्रियाविधि

अनुजीवियों की क्रियाविधि को अभी तक ठीक प्रकार से समझा नहीं गया है। एक सामान्य धारणा है कि अनुजीवी को आहार के रूप में ग्रहण करने से ये आंतों में पाये जाने वाले लाभप्रद सूक्ष्मजीवों के संतुलन को बेहतर करते हैं तथा हानिकारक सूक्ष्मजीवों से लड़कर उनका दमन करते हैं, लेकिन यह एक साधारण व्याख्या ही है। ऐसे कई कारक हैं जो आहार नाल के संतुलन को बिगाड़ सकते हैं। कुछ मुख्य कारक हैं– हानिकारक जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि, गंदगी या अस्वच्छ वातावरण, मिठाइयों का अत्यधिक सेवन, स्टार्च युक्त खाद्य, मदिरापान, एंटीबॉयोटिक्स का प्रायः इस्तेमाल, विकिरण प्रभाव, शल्य चिकित्सा, अत्यधिक तनाव एवं पर्यावरण में फैले विषैले पदार्थ आदि। लाभप्रद सूक्ष्म जीव आंत में किण्वन या खमीर की प्रक्रिया द्वारा आवश्यक पोषकों को उत्पन्न करते हैं।

सुरक्षित अनुजीवी

अनुजीवियों का सुरक्षित होना अत्यावश्यक है क्योंकि इनका सम्बन्ध आहार या औषधि के रूप में इस्तेमाल से है। लैक्टोबैसिलस जैसे कुछ अनुजीवियों का काफी प्राचीन समय से प्रयोग होता रहा है एवं आज तक इनके पूर्ण सुरक्षित होने पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगा है। आज लैक्टोबैसिलस एवं लैक्टोकोक्कस जैसे कुछ अनुजीवियों ने पूर्ण सुरक्षित होने का दर्जा प्राप्त कर लिया है। सामान्यतः सूक्ष्मजीवों को तीन समूहों में वितरित किया जा सकता है– अहानिकर, अनुकूलित हानिकर एवं पूर्ण हानिकर। कभी–कभी अहानिकर सूक्ष्मजीव भी विशेष परिस्थितियों में हानिकर हो सकते हैं।

आज कल अधिक लाभप्रद अनुजीवी औषधियों का विकास हो रहा है। अतः उनका पूर्ण सुरक्षित होना अत्यावश्यक है। सुरक्षा के कुछ मानक हैं:

अनुजीवियों के वंश की पहचान
अहानिकर होने के सबूत
विषता जाँच
एंटीबायोटिक प्रतिरोधी चरित्र
संक्रामक न होना आदि।

उपर्युक्त मानकों पर खरे उतरने के उपरांत ही किसी अनुजीवी का औषधि के रूप में सेवन किया जा सकता है।

निष्कर्ष

सामान्यतः देखा गया है कि डॉक्टर जब मरीज को एंटिबॉयोटिक औषधि देते हैं तो विटामिन 'बी' दिया जाता है। क्योंकि एंटीबॉयोटिक्स अच्छे और बुरे जीवाणुओं में भेदभाव नहीं करते हैं और सभी को नष्ट करने का कार्य करते हैं। इससे विटामिन 'बी' पैदा करने वाले जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं और शरीर में इन विटामिनों की कमी हो जाती है। अक्सर आजकल दस्त या पेचिश होने पर प्रोबॉयोटिक्स की गोली या पेय दिया जाता है ताकि लाभदायक जीवाणु भरपूर मात्रा में शरीर के अंदर जाकर अपनी जगह बना सके।

अपने लाभप्रद गुणों के कारण ही अनुजीवियों से बनी औषधि ने अद्‌भुत औषधि का दर्जा प्राप्त कर लिया है। लेकिन इनके प्रयोग के पूर्व या बाजार में औषधि के रूप में उतारने के पूर्व सुरक्षा मानकों का ध्यान रखना अत्यावश्यक है। अपने अद्‌भुत गुणों के कारण ही अनुजीवी भविष्य में बेहतर विकल्प सिद्ध हो सकते हैं। हालांकि इस क्षेत्र में अभी विज्ञान को लंबा सफर तय करना है।

एन्टीऑक्सीडैन्ट एवं फ्री रेडिकल्स

डॉ. आभाज्योति, डॉ. वेद ब्रत एवं डॉ. एस.पी. मिश्रा

बॉयोकेमिस्ट्री विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

एन्टीऑक्सीडैन्ट क्या है?

यह एक ऐसा पदार्थ है जो किसी दूसरे पदार्थ को ऑक्सीकारक होने से रोकता है या उसके ऑक्सीकारक होने की प्रक्रिया को धीमा कर देता है। एन्टीऑक्सीडैन्ट फ्री रेडिकल्स को नष्ट करने का काम करते हैं।

क्या है यह फ्री रेडिकल्स ?

फ्री रेडिकल्स एक ऐसा अणु है जो कि बिना जोड़े के इलेक्ट्रॉन रखते हैं और स्वतंत्र रूप से अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं।

फ्री रेडिकल्स कैसे बनते हैं ?

1. जब कोई अणु टूटता है।
2. जब कोई इलेक्ट्रॉन किसी परमाणु से जुड़ जाता है।
3. जब कोई इलेक्ट्रॉन किसी परमाणु से निकल जाता है।

फ्री रेडिकल्स की विशेषता क्या है ?

1. ये बहुत क्रियाशील हैं।
2. ये नये फ्री रेडिकल्स बनाने की क्षमता रखते हैं।
3. जैविक अणु कोशिका, ऊतक को नष्ट कर देते हैं।

फ्री रेडिकल्स कितने प्रकार के होते हैं ?

ये दो प्रकार के होते हैंः

1. रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पिसीज
2. रिएक्टिव नाइट्रोजन स्पिसीज

फ्री रेडिकल्स कहाँ से आते हैं ?

वातावरण सेः

अल्ट्रावॉयलेट किरणों से

वातावरण के प्रदूषण से

तनाव से

पौष्टिक भोजन न खाने से

अत्यधिक व्यायाम करने से

अन्तः विकसित कोशिका में पचयन प्रक्रिया सेः

माइट्रोकोन्ड्रिया से लगातार इलेक्ट्रॉन के रिसाव होने से

एन्जॉइम की प्रक्रिया से

स्वतः ऑक्सिकरण से

फ्री रेडिकल्स कैसे कार्य करते हैं ?

1. ये झिल्ली के लिपिड़ का ऑक्सीकरण कर देते हैं।
2. गुणसूत्रों को परिवर्तित कर देते हैं।
3. प्रोटीन को नष्ट कर देते हैं।

फ्री रेडिकल्स के अच्छे और बुरे क्या प्रभाव हैं ?

अच्छे प्रभावः

ये शरीर में सूक्ष्मजीवियों को नष्ट कर देते हैं।

बुरे प्रभावः

ये शारीरिक प्रक्रिया में बदलाव ला देते हैं।

इन फ्री रेडिकल्स के बनने और नष्ट होने के बीच में एक संतुलन बना रहता है। जब ये संतुलन बिगड़ जाता है, तब कोशिका के अन्दर भारी प्रभाव पड़ता है। जिससे कोशिका नष्ट हो जाती है। एन्टीऑक्सीडैन्ट इस प्रक्रिया को रोकने में सहायक होते हैं।

फ्री रेडिकल्स से क्या–क्या बीमारियां होती हैं?

1. दिल – उच्च रक्तचाप, दिल का दौरा।
2. आँख – मोतियां बिन्द, रेटिना का छय होना।

3. रक्त वाहिनी शिरा – उच्च रक्तचाप
4. दिमाग – एल्जॉइमर, पारकिन्सन्स, माइग्रेन, कर्क रोग
5. फेफड़े – दमा, श्वास रेाग, कर्क रोग
6. त्वचा – चर्म रोग
7. गुर्दा – वृक्क रोग
8. जोड़ – ऑस्टियोऑरथ्राइटिस

एन्टीऑक्सीडैन्ट क्या करते हैं ?

1. ये फ्री रेडिकल्स को बनने से रोकते हैं।
2. ये फ्री रेडिकल्स को इलेक्ट्रॉन दे कर क्रम प्रक्रिया को होने नहीं देते हैं।
3. रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पिसीज् को बनने से रोकते हैं।
4. नष्ट हुए जैविक अणुओं को ठीक कर देते हैं।

एन्टीऑक्सीडैन्ट कितने प्रकार के होते हैं ?

1. बचावकारीः कैटालेज, ग्लूटाथायोन परऑक्सिडेज
2. क्रम प्रक्रिया को रोकने वालेः विटामिन ई, यूरिक एसिड, सुपरऑक्साइड डिसमुटेज
3. कोशिका की बाहरी झिल्ली परः ऐल्फा टोकोफेरॉल
4. कोशिका के अन्दरः एस.ओ.डी. कैटालेज, ग्लूटा–थायोन परऑक्सिडेज
5. ऐन्जाइमैटिकः एस.ओ.डी.
6. पौष्टिकः ऐल्फा टोको फैरौल, विटामिन सी पौष्टिक एन्टीऑक्सीडैन्ट हमें ताजी सब्जियों और फलों से मिलते है जैसे गाजर, टमाटर, पपीता, अमरूद, आंवला, समुद्री भोजन आदि।

एन्टीऑक्सीडैन्ट का उपयोग

1. खाने का ऑक्सीकरण रोकते हैं और खाने को खराब होने से बचाते हैं। उदाहरण विटामिन सी, विटामिन ई।
2. फलों पर सल्फयूरस एन्टीऑक्सीडैन्ट का छिड़काव करके फलों के ऑक्सीकरण से बचाव करते हैं।
3. कुछ तेलों में अपने में ही एन्टीऑक्सीडैन्ट होते हैं जो उनको ऑक्सीकरण से बचाते हैं, जैसे ऑलिव ऑयल।
4. औद्योगिक क्षेत्र में भी एन्टीऑक्सीडैन्ट ईंधन और लूब्रीकेन्ट को स्थिर बनाये रखते हैं ताकि इनका ऑक्सीकरण न हो सके।

लाभ

ताजे फल और सब्जियां खाने से दिल की बीमारी, तन्त्रिका रोग एवं कर्क रोगों का खतरा भी कम हो जाता है। हमारे दिमाग में ऑक्सीकरण होने की संभावना ज्यादा बनी रहती है, एन्टीऑक्सीडैन्ट इन बीमारियों से बचाता है।

आई.एम.एस. के बायोकैमिस्ट्री विभाग में एन्टी–ऑक्सीडैन्ट एवं फ्री रेडिकल्स का पता लगाने की विभिन्न विधियां उपलब्ध हैं।

बायोडिग्रेडेबल इम्पलाण्टः अस्थि शल्य चिकित्सा हेतु वरदान

प्रो. अमित रस्तोगी एवं डॉ. कुमार प्रीतेश

अस्थि विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

बायोडिग्रेडेबल इम्प्लांट्स उन प्राकृतिक तत्वों से बनाए जाते हैं जिन्हें परिवर्तित करके प्लास्टिक में बदला जा सकता है। जैविक अवयवों के अणुओं का बहुलक बनाकर उन्हें शक्तिशाली तन्तुओं में ढाल दिया जाता है। जब इन तन्तुओं से निर्मित इम्प्लांट्स को शरीर में प्रत्यारोपित किया जाता है तो ये स्वतः ही सड़नशील होने की वजह से कुछ समय के उपरांत शरीर द्वारा विलोपित कर दिए जाते हैं। पहला बायोडिग्रेडेबल पदार्थ सन् 1075 ईसा पूर्व में गैलन नामक व्यक्ति ने बनाया था। उसने इसके निर्माण में पशुओं के आंतों का उपयोग किया था और इसका प्रयोग सीलने के लिए किया था। सन् 1984 में रोकेनन ने ऐसे ही पदार्थो से इम्प्लांट बनाकर पहली बार आर्थापेडिक्स शल्य चिकित्सा में टखने के फ्रैक्चर की मरम्मत में उपयोग किया था। इसके उपरांत विभिन्न प्रकार के बायोडिग्रेडेबल इम्प्लांट्स तैयार किए गए जिनका प्रयोग घुटने के स्नायुओं की मरम्मत, रॉड्स, इंटरफरेंन्स स्क्रू आदि के रूप में किया गया। विभिन्न प्रकार के बायोडिग्रेडेबल पदार्थ जिनका प्रयोग किया जाता है वे हैं पॉलीग्लाइकोलिक एसिड पॉली–एल–लैक्टिक एसिड, पॉली–डी–एल–लैक्टिक एसिड, पॉलीट्राईमिथिलिन और पाली–बिटा–हाइड्रोक्सीब्युटरीक एसिड। बायोडिग्रेडेबल पदार्थो से इम्प्लांट का निर्माण करने के पूर्व अपेक्षित है कि वे शरीर में कम से कम एक निर्धारित अवधि तक अपनी संरचना बनाए रखें। इसलिए उन्हें ''सेल्फरिंइफोर्सिंग'' प्रक्रिया से ढाला जाता है। स्वतः ही सड़नशील होने में उन्हें कम से कम 1 से 6 महीने लग जाते हैं। हड्डियों के जुड़ने में भी सामान्यतः इतना ही वक्त लगता है। इसलिए ये हड्डियों के जुड़ने की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न नहीं करते। शरीर में स्वतः ही सड़ने वाली प्रक्रिया के कई कारक हैं उनमें शरीर में पाए जाने वाले द्रव्यों, शरीर को तापमान, विभिन्न अणुओं के वजन, स्फटिक रचना, पदार्थ के ज्यामितिय और प्रयोग किए जाने वाले ऊतक। बायोडिग्रेडेबल अपाच्य शरीर से श्वास, मल–मूत्र में, कार्बन डाईऑक्साइड और पानी के अणुओं के रूप में निष्कासित कर दिए जाते हैं। इस पदच्युति को हम एम.आर.आई. विधि द्वारा विभिन्न अन्तराल पर देख सकते हैं। पॉलीग्लायकालिक एसिड को इथायलिन ऑक्साइड द्वारा तथा पॉलीलैक्टिक एसिड को गामा प्रदीपन विधि द्वारा निष्फल किया जाता है। बायोडि–ग्रेडेबल पदार्थों को हड्डी की शल्य चिकित्सा में मुख्यतः जोड़ने के लिए उपयोग किया जाता है। उन्हें प्रयोग करना मरीज के लिए इस प्रकार लाभदायक है कि उसे इम्प्लांट निकालने हेतु एक और शल्य चिकित्सा नहीं करवानी पड़ती है। चूँकि इन पदार्थों की संरचना ज्यादा भार उठाने के लिए उपयुक्त नहीं है इसलिए उन्हें केवल हड्डी के उन हिस्सों में प्रयोग किया जाता है जो शरीर का ज्यादा भार नहीं लेती। इसलिए छोटी हड्डियों और टखनों के लिए ये इम्प्लांट्स बिल्कुल उपयुक्त हैं।

वेसेनियस ने इन पदार्थों से बने हुए इम्प्लांट्स से टखने की शल्य चिकित्सा के करीब 1202 उदाहरण प्रस्तुत किए उनके अनुसार ऐसे इम्प्लाट्स साधारण फ्रैक्चर के लिए बिल्कुल उपयुक्त हैं परन्तु जटिल और पूर्णतया चूर्ण हड्डियों के लिए नहीं। इनका प्रयोग कोहनी के फ्रैक्चर में भी किया जा सकता है जैसे रेडियल हेड, ओलेक्रेनान, कैपिटेलम, ह्यूमरस आदि और अन्य हड्डियां जैसे रेडियस स्टाइलायड, पटेला, ग्लेनायड फोसा एसिटाबुलम, घुटने के ओस्टियोकॉन्ड्रल फ्रैक्चर, टिबियल प्लैटू, फैलैन्क्स, कैलकैनियस और टैलस। हैलक्स वैलगस रोग में भी इनका प्रयोग किया गया है। एपिफाइसिस में स्क्रू और रॉड प्रयोग किए गये हैं। सारे फ्रैक्चर सामान्य प्रक्रिया और सामान्य अवधि में जुड़ते हैं। शल्य प्रक्रिया के उपरांत घाव भरने की प्रक्रिया सामान्य रहती है और इम्प्लांट्स जोड़ी हुई हड्डियों को यथास्थिति में बनाए रखते हैं। सारे मरीजों में इसके काफी

उत्साहवर्धक परिणाम सामने आए। यह भी देखा गया कि ये पदार्थ आस्टियोलाइसिस {हड्डी के अपघटन की एक प्रक्रिया} करते हैं पर यह औसत केवल 16 महीनों के लिए पाया गया।

बायोडिग्रेडेबल इम्प्लांट्स का मुख्य लाभ यह है कि मरीज को इसके अतिरिक्त कोई और शल्य चिकित्सा नहीं करवानी पड़ती है जो कि धातु के इम्प्लांट्स के साथ एक बड़ी समस्या हैं। इम्प्लांट्स के संक्रमण, हड्डियों का अपघटन, आसपास के ऊतकों का संरक्षण आदि धातु के इम्प्लांट्स से सम्बद्ध कुछ अन्य समस्याएं हैं, जो इनमें नहीं हैं। जैसे–जैसे इन बायोडिग्रेडेबल इम्प्लांट्स की सड़न प्रक्रिया शुरू होती है, हड्डियों पर अतिरिक्त भार पड़ता है और यह उनके जुड़ने की प्रक्रियाओं को तीव्र कर देती हैं और उनके अपघटन की प्रक्रिया को धीमा। इस प्रकार से हड्डियां शीघ्रातिशीघ्र अपने सामान्य रूप में आ जाती हैं।

दूसरी ओर देखा जाये तो बायोडिग्रेडेबल इम्प्लांट्स धातु के इम्प्लांट्स की अपेक्षा कमजोर होते हैं और अधिक लोकप्रिय न होने के कारण महंगे हैं। इसके अलावा ये आसपास के ऊतकों में प्रत्युर्जता भी करते हैं और हड्डियों का अपघटन भी। ये कभी कभार संक्रमित नासूर भी बनाते हैं। जोड़ में प्रत्यारोपित करने के उपरांत ये श्लेषकों का संक्रमण भी कर सकते हैं।

चिकित्सा विज्ञान सस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आर्थोपेडिक्स विभाग और भारतीय औद्योगिक संस्थान के बायोकेमिकल इंजीनियरिंग विभाग के संयुक्त तत्वावधान में बायोडिग्रेडेबल पदार्थों पर शोधकार्य प्रगति पर है। प्रो. अमित रस्तोगी और प्रो. प्रदीप श्रीवास्तव के मार्गदर्शन में बायोडिग्रेडेबल ढांचे पर उपास्थों के ऊतकों के कल्चर द्वारा नए उपास्थ बनाने की विधि ईजाद की गई है। खरगोशों के घुटनों पर इसका प्रयोग किया जा रहा है। इसके शुरूआती परिणाम काफी उत्साह वर्धक हैं।

हड्डी की शल्य चिकित्सा में इनके कुछ अन्य प्रयोग हैं:

1. घुटने के स्नायुओं को दूरबीन विधि द्वारा मरम्मत में इन्हे इन्टरफेरेन्स स्क्रू की तरह प्रयोग में लाया जाता है।
2. हड्डियों के बीच खाली जगह होने पर ये हड्डियों की उत्पतिगम्य प्रक्रिया बढ़ाते हैं।
3. एंटिबायोटिक और ग्रोथ फैक्टर से संसेचित करने के उपरांत ये उन्हें धीरे–धीरे छोड़ते हैं।
4. फ्लेक्सर टेंडन शल्य प्रक्रिया में इन्हें झिल्ली की तरह प्रयोग किया जाता है जो इनका आपस में चिपकना रोकते हैं।
5. उपास्थ कोशिकाओं में मैट्रिक्स की तरह हड्डियों के टिश्यू कल्चर में।
6. हड्डी रोग विशेषज्ञ को उपरोक्त बातों का मूल्यांकन कर इन्हें प्रयोग करना चाहिए। जहाँ उचित लगे इनका प्रयोग कर मरीजों को एक और शल्य प्रक्रिया के दुष्परिणाम और खर्च से बचाया जा सकता है।

प्रसवोत्तर रक्तस्राव

डॉ. अंजली रानी

स्त्री एवं प्रसूति रोग विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

माँ धरती पर भगवान का दूसरा रूप होती हैं। हर इन्सान अपनी मां से बहुत प्यार करता है। पर कुछ कारणवश जैसे प्रसवोत्तर रक्तस्राव से कुछ बच्चे अपनी मां को पैदा होते ही खो देते हैं। हमारे देश में प्रसव के दौरान मरने वाली औरतों की संख्या बहुत ज्यादा है। उत्तर प्रदेश में यह दर 359/100000 जीवित शिशु के जन्म की है। इसे एमएमआर कहते हैं।

प्रसूता मृत्यु दर घटाव हेतु साक्ष्य–आधारित हस्तक्षेप

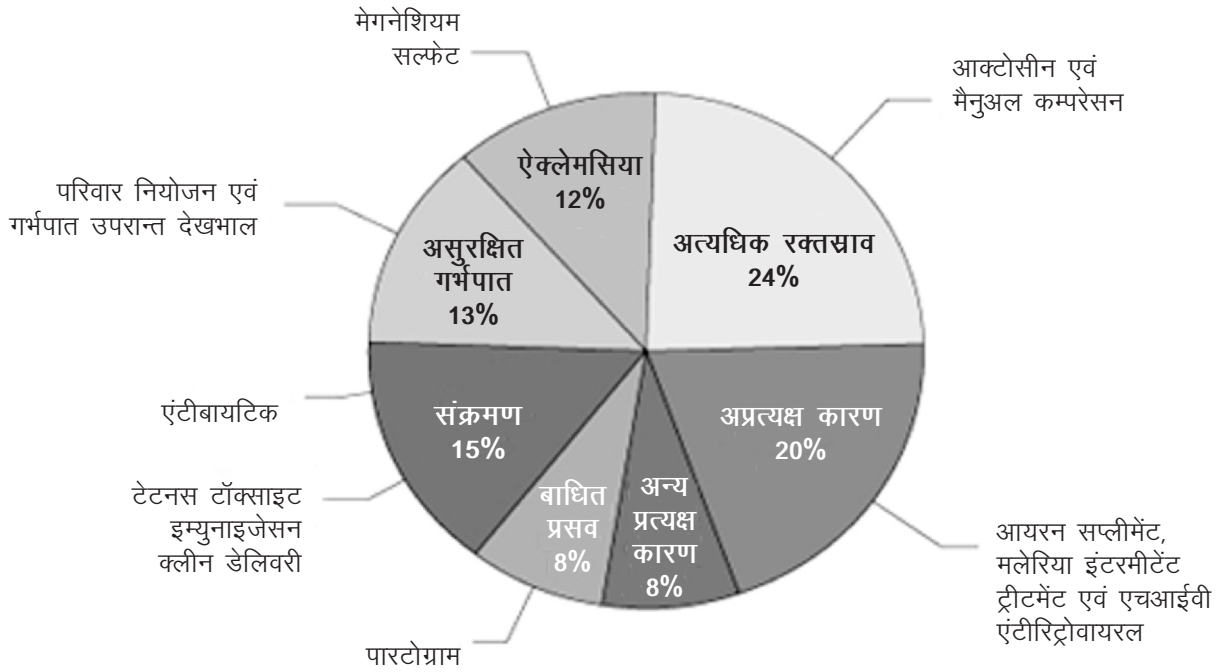

परिभाषा

अगर प्रसव के बाद 500 मिली से ज्यादा खून का बहाव हो जाये या अगर आपरेशन द्वारा प्रसव हो और 1000 मिली से ज्यादा खून का बहाव हो जाये तो इसे प्रसवोत्तर रक्तस्राव कहते हैं। पर कुछ मरीज जिनमें खून पहले से कम हो उनमें इससे कम खून बह जाने पर भी यह हो सकता है।

लक्षण

1. प्रसव के बाद खून का बन्द न होना
2. घबराहट होना
3. दिल की धड़कन तेज होना
4. बेहोश हो जाना
5. पसीना आना, हाथ–पैर का ठण्डा हो जाना

''यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें अगर खून का बहाव बन्द नहीं हुआ तो मरीज दो घण्टे में अपनी जान गवां सकता हैं ''

उद्देश्य

हमारा उद्देश्य है कि 2015 तक हमारा एमएमआर 109/100000 जीवित शिशु जन्म तक आ जाये।

कारण

प्रसवोत्तर रक्तस्राव प्रसव के दौरान महिलाओं के मरने का मुख्य कारण है।

1. बच्चेदानी का नम्र होना।
2. बच्चेदानी के मुंह का फटना एवं योनिमार्ग का फटना।
3. खेड़ी का अन्दर रह जाना।
4. खून न जमने की बीमारी होना
5. खेड़ी का नीचे होना।

उपचार एवं रोकथाम

1. गर्भावस्था में अस्पताल में पंजीकरण करवायें।
2. स्त्रीरोग विशेषज्ञ को दिखायें। गर्भावस्था में जरूरी जांच करवायें। अल्ट्रासाउण्ड करवायें।
3. अगर खून की कमी हो तो वक्त पर आयरन की गोली या इन्जेक्शन लगवायें। अगर बहुत ज्यादा कमी हो तो खून चढ़वायें।
4. खान पान का ध्यान रखें।
5. प्रसव अस्पताल में करवायें यहां पर रक्त बैंक एवं आपरेशन की सुविधा उपलब्ध होती है।
6. जरूरत पड़ने पर उच्च केन्द्र या उच्चीकृत रेफरल अस्पताल में चले जाना चाहिए।
7. वाहन की सुविधा होनी चाहिए।

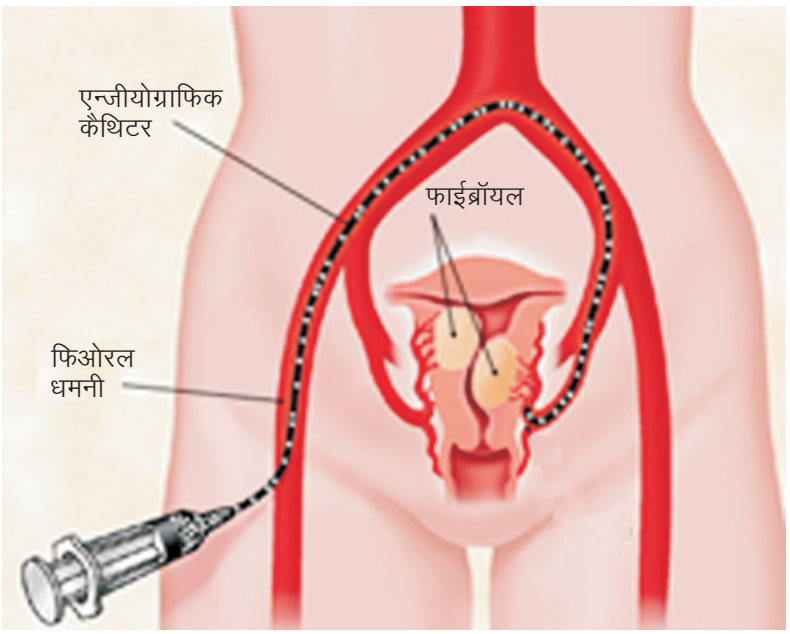

गर्भाशय धमनी की आन्तरिक संरचना

उपचार

अगर प्रसवोत्तर रक्तस्राव हो तो आप नीचे दी गई विधि के मुताबिक काम कर सकते हैं।

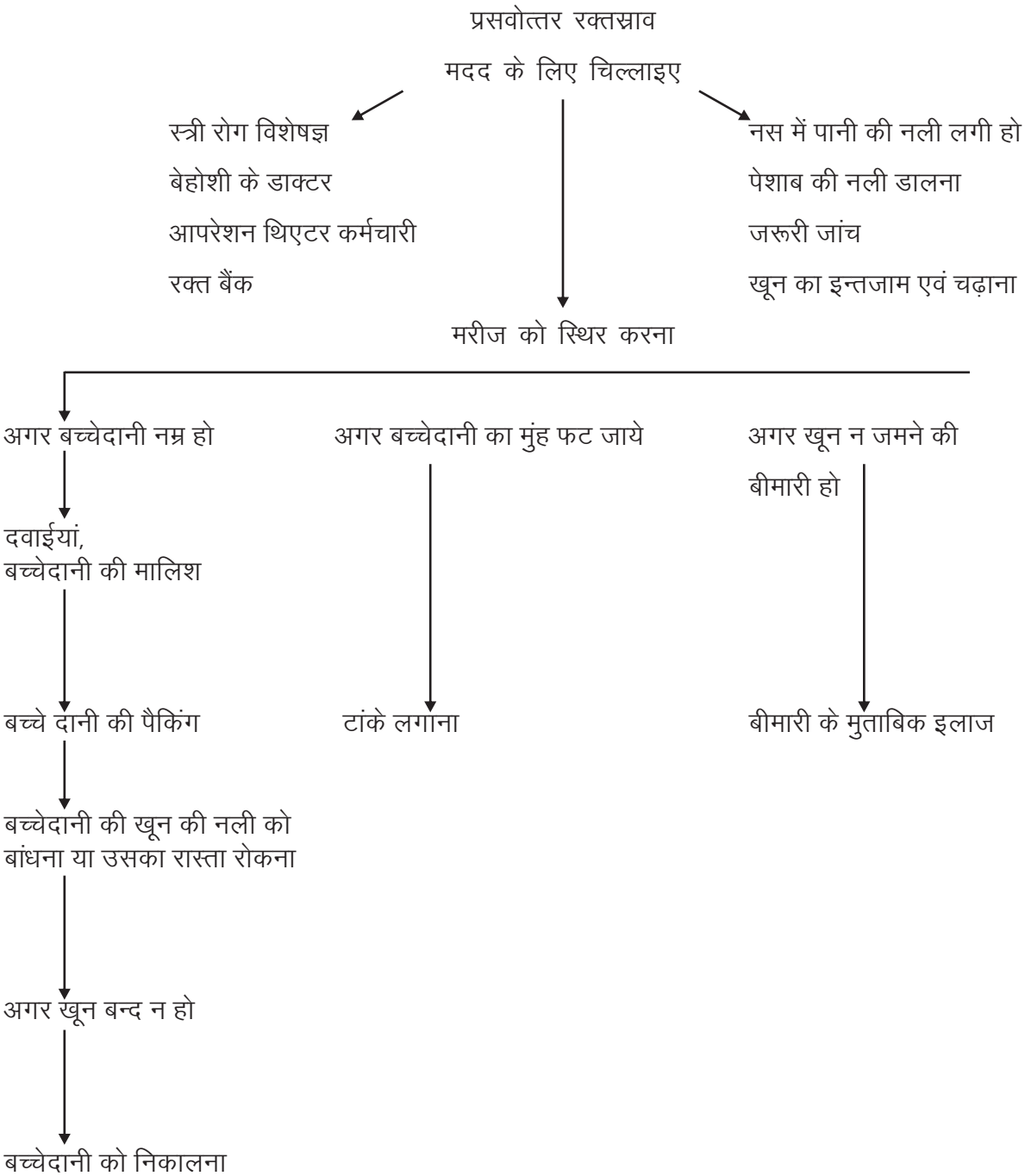

आओ हमसब मिलकर कोशिश करे ताकि कम से कम औरतों की प्रसवोत्तर रक्तस्राव से मौत हो। हमें अपने अधीनस्थ पैरामेडिकल कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण देना चाहिए। चिकित्सकों के सम्पर्क में रहें, बीमारियों की जानकारी प्राप्त करते रहें। अस्पताल तक जाने के साधन की व्यवस्था करके रखें।

कृपया मुझे जानिए – मौखिक गर्भ निरोधक गोलियाँ

डॉ. मधु जैन

स्त्री एवं प्रसूति रोग विशेषज्ञ, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रश्नः गर्भ निरोधक गोलियां क्या हैं ?

उत्तरः जिन गोलियों को खाने से गर्भावस्था से बचाव हो सकता है।

प्रश्नः कितने प्रकार की मौखिक गर्भ निरोधक गोलियां उपलब्ध हैं ?

उत्तरः दो प्रकार की संयुक्त गर्भनिरोधक गोलियां जिसमें एस्ट्रोजन व प्रोजेस्टेरोन का संयोजन है {सी.ओ.सी.}

–केवल प्रोजेस्टेरोन की गोली जो एस्ट्रोजन मुक्त गोलियाँ हैं {पी.ओ.पी.}

प्रश्नः यह गोलियाँ किस तरह से गर्भाधान रोकती हैं ?

उत्तरः ये अण्डोत्सर्ग {अंडाशय से अंडों का निकलना} रोकती हैं।

–एंडोमेट्रियम को बदल देती हैं जिससे इम्प्लांटेशन की संभावना कम हो जाती है।

–सर्वाइकल म्यूकस को सघन बनाती हैं। जिससे शुक्राणु का प्रवेश कठिन हो जाता है।

प्रश्नः संयुक्त मौखिक गर्भ निरोधक गोलियों में क्या है?

उत्तरः संयुक्त मौखिक गर्भनिरोधक गोलियों में एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन का संयोजन है।

प्रश्नः मौखिक गर्भ निरोधक गोलियाँ कितनी असरदार हैं?

उत्तरः यह नियमित रूप से ली जाएं व निर्देशों का ठीक से पालन किया जाये तो यह 99 प्रतिशत असरदार हैं।

प्रश्नः मौखिक गर्भनिरोधक गोलियों के क्या लाभ हैं ?

उत्तरः बहुत असरदार हैं।

–संभोग के समय किसी और उपाय की जरूरत नहीं

–कभी भी बन्द किया जा सकता है।

–कोई भी औरत इस्तेमाल कर सकती है {किशोरावस्था से लेकर 40 साल की उम्र तक}।

प्रश्नः क्या गोलियां बन्द करने के बाद आप गर्भवती हो सकती हैं?

उत्तरः हाँ! गोलियां बन्द करते ही प्रजनन क्षमता लौट आती है।

प्रश्नः इन गोलियों के और क्या – क्या फायदे हैं

उत्तरः अतिरिक्त लाभ इस प्रकार है –

–आयरन की कमी {एनीमिया} को कम या उससे बचाव

–एंडोमेट्रियल कैंसर, अण्डाशय के कैंसर, अहानिकारक स्तन रोग, यौन संक्रमण इन्फेक्शन से बचाव।

प्रश्नः क्या गर्भ निरोधक गोलियों से मासिक धर्म प्रभावित होता है?

उत्तरः नहीं, बल्कि ज्यादा नियमित हो जाता है, मासिक रक्तस्राव कम हो जाता है,

मासिक में दर्द भी कम व हल्का हो जाता है।

प्रश्नः इन गोलियों के दुष्प्रभाव क्या हैं ?

उत्तरः उल्टी {शुरू के 3 महीने}, थोड़ा वजन बढ़ना, रक्त में भारीपन आना, हल्का सिरदर्द, चिड़चिड़ापन, मासिक चक्र के बीच थोड़ा खून आना।

–पर विचार करने की बात यह है कि यह सब परेशानियां शुरू के 2–3 महीने ही रहती है और यदि महिला नियमित रूप से गोली खाती रहे तो यह परेशानियां खत्म हो जाती है।

प्रश्नः गर्भ निरोधक गोलियाँ कौन ले सकता है ?

उत्तरः कोई भी महिला यह गोलियां ले सकती है निम्नलिखित के बावजूद –

उनके बच्चे न हो, चाहे मोटी या पतली हो, 35 साल से कम की हो व धूम्रपान करती हो, 35 साल या अधिक की हो व धूम्रपान न करती हों, हाल ही में गर्भपात हुआ हो।

प्रश्नः यह गोलियाँ कैसी लगती हैं ?

उत्तरः 21 गोलियों की स्ट्रिप। 28 गोलियों की स्ट्रिप।

प्रश्नः गर्भ निरोधक गोलियां कैसे लेना चाहिए ?

उत्तरः नियम से रोज एक गोली, एक ही समय पर खाना चाहिए।

प्रश्नः अगर कोई गोली लेना भूल जाये तो क्या करना चाहिए?

उत्तरः अगर प्रेगनैन्सी टेस्ट से बच्चा निश्चित है तो उसे गिराने की आवश्यकता नहीं है।

–अगर आप बच्चा नहीं चाहती हैं तो उसे डाक्टरी सलाह के बाद गिराया जा सकता है।

प्रश्नः यह गर्भ निरोधक गोलियां कब से लेना शुरू करना चाहिए ?

उत्तरः रक्तस्राव का पहला दिन सर्वोत्तम है या रक्तस्राव के पहले पांच दिन तक, कोई भी दिन या किसी भी समय, अगर आप सुनिश्चित हैं कि आप गर्भवती नहीं हैं।

प्रश्नः क्या स्तनपान कराने वाली महिला इन गोलियों का सेवन कर सकती है?

उत्तरः शिशु के छः महीने का होने के बाद या स्तनपान रोकने के बाद।

प्रशनः क्या गर्भपात के फौरन बाद गोलियां शुरू कर सकते हैं ?

उत्तरः अवश्य, पहली तिमाही या दूसरी तिमाही के गर्भपात के बाद पहले सात दिनों में या

–बाद में, किसी भी समय जब आप निश्चित हों कि आप गर्भवती नहीं हैं।

प्रश्नः क्या इन गोलियों से एड्स जैसी बीमारियों से सुरक्षा मिलती है।

उत्तरः नहीं।

प्रश्नः क्या कभी भी गोलियां खाना बन्द किया जा सकता है?

उत्तरः जी हाँ।

प्रश्नः क्या गोलियां लम्बे समय तक खाने से नुकसान पहुंचता है? बीच में बन्द करके खाना क्या उचित है ?

उत्तरः लम्बे समय तक गोलियां खाने से कोई नुकसान नहीं होता है पर हर साल में एक बार जाकर डॉक्टर से नियमित जांच करवाना अच्छा है। बीच में दवा खाना कभी भी बन्द नहीं करना है।

महत्वपूर्ण

आपको हर दिन एक गोली लेना चाहिए, जहाँ तक सम्भव हो एक ही समय पर। एक, दो या अधिक गोलियां लेना भूलने पर गर्भावस्था का खतरा बढ़ जाता है।

बहु अंगीय चोट (पॉलीट्रामा): कारण एवं प्रबन्धन

डॉ. राजेन्द्र प्रकाश मौर्या

आपात बहिरंग, सर सुन्दरलाल चिकित्सालय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आज–कल देश में तेजी से शहरीकरण एवं औद्योगीकरण तथा मनुष्य में व्यस्तता व प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है जिसके कारण शरीर में चोट लगने की सम्भावना भी बढ़ती जा रही है। चोट या ट्रामा आज विश्व के क्षितिज पर महामारी का रूप धारण कर लिया है। यह विश्व की दूसरी सबसे मंहगी एवं घातक बीमारी है। चोट के इलाज का खर्च व इसके कारण होने वाली विकलांगता न केवल व्यक्ति विशेष के जीवन को प्रभावित करती है अपितु समाज, परिवार व देश के विकास में भी बाधा पहुंचाती है।

शरीर के एक से अधिक भाग में चोट लगने को पॉलीट्रामा या बहुचोट कहते हैं। पॉलीट्रामा विकसित व विकासशील देशों में मृत्यु एवं विकलांगता का प्रमुख कारण है।

व्यापकता (एपिडेमियोलॉजी)

सम्पूर्ण संसार में लगभग 16000 व्यक्ति प्रतिदिन (58 लाख मृत्यु प्रतिवर्ष) चोट के कारण काल के गाल में समा जाते हैं तथा अनुमानित आंकड़ों के अनुसार चोट के कारण 2020 तक लगभग 84 लाख लोगों की मृत्यु हो सकती हैं। चोट के कुल पंजीकृत रोगियों में 10–16 प्रतिशत मरीज पॉलीट्रामा के होते हैं। सर सुन्दरलाल चिकित्सालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आपात चिकित्सा के बहिरंग विभाग में प्रतिदिन लगभग सात–आठ पॉलीट्रामा के मरीज आते हैं। पॉलीट्रामा या बहुचोट एकलचोट की तुलना में अधिक जानलेवा साबित होता है। शहरी वातावरण में लगभग 50 प्रतिशत तथा ग्रामीण क्षेत्र में 75 प्रतिशत पॉलीट्रामा के रोगी अस्पताल पहुंचने से पहले ही दम तोड़ देते हैं।

पॉलीट्रामा के कारण

पॉलीट्रामा वरिष्ठ नागरिकों की तुलना में युवा (15 से 44 वर्ष) पुरूषों में ज्यादा देखने को मिलता है क्योंकि युवावर्ग जोखिम भरे कार्य जैसे तीव्रगति से गाड़ी चलाना,

गर्म तारकोल से जला हुआ रोगी

शराब का अत्यधिक मात्रा में सेवन करना, झगड़ा, कलह तथा अपराध को अधिक अपनाता है। पॉलीट्रामा मुख्यतः सड़क व रेल दुर्घटना, ऊँचाई से गिरने, आपसी मार–पीट व अपराध जनित चोट तथा भौतिक व रासायनिक रूप से जलने के कारण होता है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूकम्प, तूफान एवं भूस्खलन आदि के कारण भी पॉलीट्रामा के रोगी बढ़ रहे हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) के सर्वेक्षणानुसार सड़क दुर्घटना वर्तमान

सड़क दुर्घटना के कारण सिर, चेहरे व आँख में गम्भीर चोट (हड्डियों में बहु खण्ड टूट)

में मृत्यु का नवाँ सबसे प्रमुख कारण है, जो कि सन् 2020 तक तीसरा प्रमुख कारण हो जायेगा। वर्तमान आंकड़ों के अनुसार हमारे देश में प्रति मिनट एक सड़क दुर्घटना होती है तथा प्रति तीन मिनट में एक व्यक्ति की मृत्यु सड़क दुर्घटना में हो जाया करती है। प्रत्येक मृत्यु के सापेक्ष 50 चोटिल व 20 विकलांग व्यक्ति समाज में अवशेष रह जाते हैं। विश्व की कुल सड़क दुर्घटना का 7 प्रतिशत अंश केवल हमारे देश में घटित होता है। इसका प्रमुख कारण प्रदेश में सड़कों की खराब हालत, वाहनों की बढ़ती संख्या, तेज रफ्तार, यातायात के नियमों का पालन न करना, नशे की हालत में गाड़ी चलाना तथा हेलमेट व सीट बेल्ट जैसे सुरक्षा के उपायों को नजरन्दाज करना है। प्रायः लोग रेलयात्रा, घरेलू व व्यावसायिक कार्यों के दौरान असावधानी के कारण गम्भीर रूप से चोटिल हो जाते हैं। आज के भौतिक एवं प्रतिस्पर्धी युग में युवाओं में आपसी वैमनस्य, प्रतिशोध, अपराध व आतंकवाद की भावना के फलस्वरूप होने वाले साम्प्रदायिक दंगे, मारपीट व आतंकवादी वारदात पॉलीट्रामा की वजह बन रही है।

पॉलीट्रामा में मृत्यु का कारण

पॉलीट्रामा के अन्तर्गत 50 प्रतिशत चोट रोगी के सिर या छाती या दोनों में लगी होती है। मृत्यु दर सबसे अधिक सिर, छाती व पेट के चोट में होती है। पॉलीट्रामा वाले मरीज की मृत्यु तीन प्रकार से होती है जो कि निम्नलिखित है –

1. **तत्काल मृत्यु**

   रोगी की मृत्यु चोट के कुछ सेकेण्ड या मिनट में हो जाती है। इसका मुख्य कारण हृदय या हृदय की प्रमुख रक्तवाहिनियों का फटना, मस्तिष्क के तना (ब्रेन स्टेम) में गम्भीर चोट व रक्तस्राव होना है। इसमें रोगी को बचाया नहीं जा सकता लेकिन यातायात के नियमों का पालन व सुरक्षा के तरीकों को अपनाकर रोका जा सकता है।

2. **शीघ्र मृत्यु**

   रोगी की मृत्यु चोट के कुछ मिनटों या घण्टों के अन्दर हो जाती है। इसका मुख्य कारण श्वासनली का अवरूद्ध होना, छाती में हवा का अधिक दबाव (टेन्शन न्यूमोथोरेक्स), सिर में अन्दरूनी चोट, अधिक रक्तस्राव के कारण ''शॉक" में होना है। इसमें रोगी को समय से उचित इलाज द्वारा बचाया जा सकता है।

3. **विलम्ब से मृत्यु**

   इसमें रोगी की मृत्यु चोट के कई दिनों बाद होती है। इसका मुख्य कारण सेप्टिसीमिया या संक्रमण, रक्त में थक्का बनना रूक जाना या शरीर के कई अंगों का काम करना बन्द कर देना है। इस तरह की मृत्यु रोग की गम्भीरता व प्रारंम्भिक इलाज में कमी के कारण होती है।

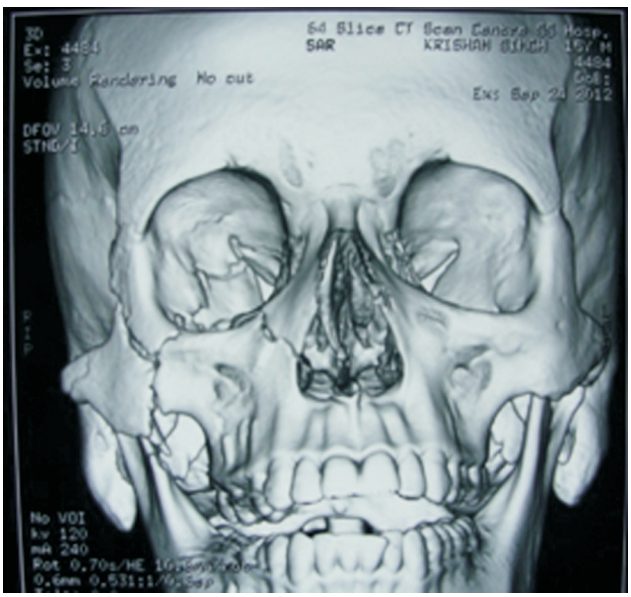

क्रिकेट के बल्ला द्वारा मारपीट से चेहरे व आँख (ब्लैक आई) में चोट (हड्डियों में बहुखण्ड टूट)

प्रारम्भिक परीक्षण एवं प्रबन्धन

पॉलीट्रामा के रोगी का अतिजीवन दर (सरवाइवल रेट) समय आधारित होता है। चोट लगने के समय से प्रथम एक घण्टे को ''गोल्डेन आवर'' कहते हैं। यदि इस समय रोगी की तुरन्त उचित देख–भाल शुरू कर दी जाय तो रोगी के जीवित बने रहने की सम्भावना बढ़ जाती है। गम्भीर चोट के रोगी का प्रबन्धन प्रीहास्पिटल केयर से शुरू होता है।

प्री–हास्पिटल केयर

यह सहायता रोगी को तत्काल घटनास्थल तथा रास्ते में चिकित्सालय या ट्रॉमा सेण्टर पहुचाने से पहले तक दी जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य जीवन को बचाना तथा रोगी की स्थिति और अधिक बिगड़ने से रोकना है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित उपचार प्रदान किया जाता हैः

1. बाहरी तीव्र रक्तस्राव वाले स्थान पर दबावयुक्त पट्टी बाँधकर रक्तस्राव का नियन्त्रण करना जिससे रोगी को रक्तस्राव जनित सदमा (हैमोरेजिक शॉक) से बचाया जा सके।
2. श्वास क्रिया की न्यूनता को पहचानना व कृत्रिम श्वास या आक्सीजन प्रदान करना।
3. रोगी को हर सम्भव जल्द से जल्द दर्द निवारक व निःसंज्ञा दवाओं का इन्जेक्शन देना चाहिए जिससे रोगी को 'न्यूरोजेनिक शॉक' से बचाया जा सके।
4. गर्दन के रीढ़ की हड्डी (सरवाइकल स्पाइन) को अचल (इमोबेलाइज) करना चाहिए जिससे स्पाइनल कार्ड सुरक्षित रहे।
5. हाथ–पैर की टूटी हुई हड्डियों को पुनर्स्थापित (रिपोजिट) करके इस्प्लीन्ट या कमोठी द्वारा स्थिर कर देना चाहिए जिससे पुनः चोट व रक्तस्राव होने से रोका जा सके।
6. रोगी को जितना जल्दी हो सके एम्बुलेन्स द्वारा नजदीकी ट्रॉमा सेण्टर तक पहुंचाना चाहिए।

हास्पिटल केयर

प्रारम्भिक प्रबन्धन निम्न दो तरह से करते हैंः

1. **प्राथमिक निरीक्षण**

तत्काल जानलेवा चोट के लिए किया जाता है। इसे अंग्रेजी वर्णमाला में **''ए.बी.सी.डी.ई.''** से प्रकट करते हैं।

ए–एयरवे वीथ सरवाइकल स्पाइन कन्ट्रोल (श्वांसनली एवं गर्दन/रीढ़ का नियन्त्रण)

श्वांसनली का निरीक्षण करने के लिए रोगी से बात–चीत करते रहना चाहिए। यदि रोगी बात–चीत करने में सक्षम है तो इसका मतलब रोगी की श्वांसनली खुली है और शरीर में वायु का संचार उचित रूप से हो रहा है। यदि रोगी बोलने में सक्षम नहीं है और गले में घर–घर की आवाज हो तो समझना चाहिए कि रोगी बेहोशी की हालत में है और श्वासनली में रूकावट है। ऐसे में तत्काल गले से तरल पदार्थ को सक्शन मशीन द्वारा चूस लेना चाहिए तथा मुंह में कृत्रिम एयरवे लगा देना चाहिए। यदि इससे भी बात नहीं बनती है तो स्थायी एयरवे के रूप में ''इण्डोट्रैकियल ट्यूब'' डाल देना चाहिए। यदि ट्यूब डालना भी सम्भव न हो तो शल्यक्रिया

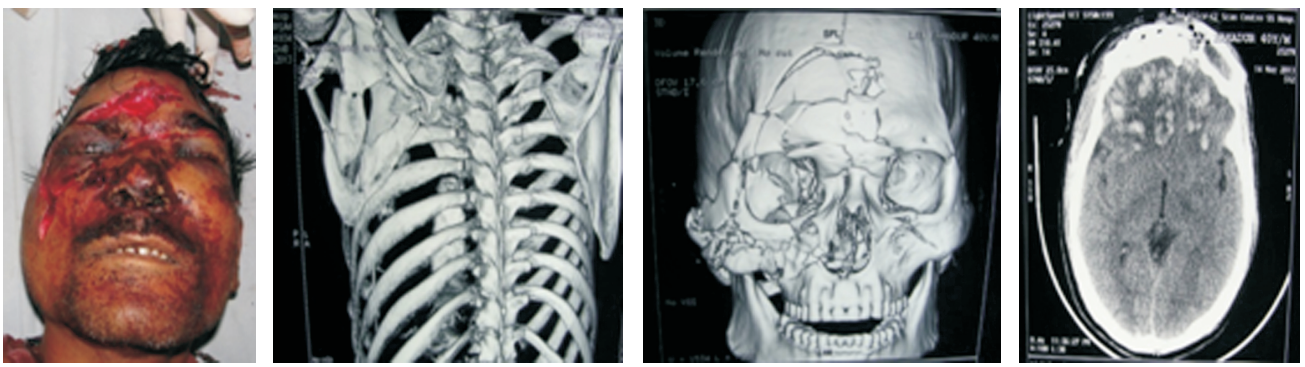

छत से गिरने के कारण सिर, चेहरे व पीठ में गम्भीर चोट

द्वारा नयी श्वासनली ''क्रीकोथायरोटोमी'' या ''ट्रैकियोस्टोमी'' बनाते हैं। साथ ही साथ गर्दन की चोट के लिए सरवाइकल कॉलर द्वारा गर्दन को स्थिर करते हैं।

बी–ब्रीदिंग (श्वसन क्रिया)

छाती का चोट (चेस्ट इन्जरी) पॉलीट्रामा के रोगी की मृत्यु का एक प्रमुख कारण है। चोट के गम्भीर रोगियों के श्वसन क्रिया का आकलन तत्काल करना चाहिए। इसके लिए छाती की गति को देखते हुए वायु के बहाव को परखना आवश्यक होता है। छाती में चोट लगने पर पसलियों के टूटने, फेफड़ा, श्वासनली, हृदय व बड़ी रक्तवाहिनियों के क्षतिग्रस्त होने की पूरी सम्भावना होती है जिसके कारण छाती में हवा भर (न्यूमोथेरेक्स) जाती है। अधिक रक्तस्राव होने से फेफड़े के चारों तरफ रक्त एकत्रित (हिमोथोरेक्स) हो जाता है। जब हृदय के चारो तरफ रक्त एकत्र हो जाता है तो उसे 'कार्डियक टेम्पोनाड' कहते हैं। उपरोक्त परिस्थितियों में रोगी की श्वसन क्रिया प्रभावित हो जाती है तथा जान जाने का खतरा बढ़ जाता है। इसके लिए आपात शल्यक्रिया करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

सी – सरकुलेशन (रक्तसंचार)

पॉलीट्रामा के अधिकांश रोगियों में बाह्य या आन्तरिक रक्तस्राव के अधिक मात्रा में होने से ''हाइपोवॉलेमिक शॉक'' हो जाता है, जिसके फलस्वरूप दिमाग, हृदय व गुर्दा जैसे नाजुक अंगों का रक्तसंचार रूक जाने से रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। अतः प्रत्येक चोटग्रस्त रोगी का तुरन्त रक्तसंचार आकलन नाड़ी या हृदयगति तथा रक्तचाप मापकर करना चाहिए। यदि रोगी की नाड़ी गति दर (पल्स रेट) 100 प्रति मिनट से अधिक है तो समझ लेना चाहिए कि रक्तस्राव जारी है। हृदय गति दर : संकुचन रक्तचाप के अनुपात का सामान्य (0.8) से अधिक होना हाइपोवॉलेमिक शॉक की गम्भीरता को दर्शाता है। बाहरी रक्तस्राव को रोकने हेतु दबावयुक्त पट्टी (प्रेशर बैण्डेज) का प्रयोग करना चाहिए तथा रक्तवाहिनियों का आयतन बढ़ाने के लिए क्रिस्टेलायड फ्लूड व रक्त चढ़ाना चाहिए।

डी– डिसएबिलिटी (असमर्थता)

सिर में चोट वाले रोगियों की चेतन अवस्था का आकलन अवश्य करना चाहिए। रोगी की चेतना को ''ग्लाश्गोकोमा'' मानदण्ड से मापते है। इस प्रक्रिया में रोगी के आँख खोलने, शरीर में गति या हरकत तथा मौखिक प्रतिक्रिया का परीक्षण किया जाता है।

रोगी की पुतली की साइज तथा प्रकाश डालने पर उसमें होने वाले परिवर्तन को भी अवश्य जाँचना चाहिए। अक्सर देखा गया है कि दिमाग में चोट लगे होने पर

स्कोर	आँख का खुलना	मौखिक जवाब	शरीर में गति या हरकत
1.	दर्दयुक्त उत्तेजना पर भी आँख का नहीं खुलना	कोई जवाब नहीं	दर्दयुक्त उत्तेजना पर भी शरीर में कोई हरकत नहीं होना
2.	दर्दयुक्त उत्तेजना पर आँख खोल देना	समझ में न आने वाला जवाब देना	शरीर फैलाने वाली प्रतिक्रिया
3.	ऊँची आवाज में पुकारने पर आँख खोल देना।	अनुचित शब्दों का प्रयोग करना	असामान्य घुमाव
4.	इच्छानुसार आँख खोलना	भ्रमित (कन्फ्यूज) हो	शरीर वापस खींचना
5.	–	सामान्य बात–चीत करना	दर्द महसूस करना
6.	–	–	आदेश का पालन करना

पुतली की साइज असमान्य तथा प्रकाश डालने पर पुतली में कोई परिवर्तन नहीं होता।

ई–एक्सपोजर एण्ड एनवायर्नमेण्टल कन्ट्रोल (वातावरण का प्रभाव व नियंत्रण)

रोगी के शरीर का तापमान अवश्य मापना चाहिए क्योंकि **हाइपोवॉलेमिक शॉक** के कारण रोगी निम्न तापमान (हाइपोथर्मिया) में चला जाता है। निम्न तापमान के कारण प्लेटलेट नामक रक्तकणिकाएं ठीक से कार्य नहीं करती **(थ्राम्बोएस्थेनिया)**, जिसके फलस्वरूप शरीर के अन्दर रक्तस्राव रूक नहीं पाता और रोगी की जान जा सकती है। अतः चोट के रोगी को ढक कर रखना चाहिए।

प्रारम्भिक निरीक्षण के साथ–साथ रोगी की आवश्यक जाँच जैसे रक्त में शुगर, एबीजी (आर्टरीयल ब्लड गैस एनालिसिस), पेट का अल्ट्रासाउण्ड, छाती व कुल्हे का एक्सरे आदि आपात कक्ष में ही कराना चाहिए। रोगी की हालत स्थिर होने पर ही सिर व रीढ़ का सीटी स्कैन कराने के लिए भेजना चाहिए।

2. द्वितीयक निरीक्षण

द्वितीयक परीक्षण रोगी को पूरी तरह से स्थिर (रक्तस्राव नियन्त्रण में आने तथा श्वसन क्रिया सामान्य) होने के बाद करते हैं। इसमें रोगी के सिर से पैर तक अन्य चोट की गहन जाँच करते हैं तथा रोगी का विस्तृत इतिहास लेते हैं, तत्पश्चात् अन्तिम निदान व उपचार निर्धारित करते हैं।

ट्रॉमा प्रबन्धन का मुख्य सिद्धान्त, संगठित ट्रॉमा टीम का समय से उपस्थित होकर रोगी का उपचार करना है। ट्रॉमा टीम गम्भीर रोगियों को पुनर्जीवित करती है तथा रोगी को स्थिर स्थिति में लाने व चोट की गम्भीरता व उपचार की योजना को निर्धारित करती है। प्री–हास्पिटल व हास्पिटल केयर में किसी भी प्रकार का विलम्ब रोगी की मृत्यु का कारण बन सकता है। टीम के सदस्यों में आपसी सामंजस्य की कमी विलम्ब का एक प्रमुख कारण हो सकता है। बिलम्ब से बचने हेतु प्रारम्भिक उपचार के दौरान **''ट्रायेज सिस्टम''** अपनाते हैं

ट्रायेज

अस्पताल आगमन पर चोट के रोगियों को इलाज की आवश्यकता व इलाज हेतु उपलब्ध संसाधन के आधार पर अलग करने को ट्रायेज कहते हैं। इस दौरान निम्नलिखित टेबुल के अनुसार रोगी की कलाई पर रंगीन बैण्ड व पर्ची पर रंगीन स्टैम्प लगा देते हैं जिसके आधार पर सर्जन टीम रोगी के इलाज की योजना बनाते हैं।

ट्रायेज हेतु इन्जरी स्केल

लेवल	ए.आई.एस. स्कोर	कलर कोड
1.	छोटा (माइनर)	हरा
2.	मध्यम (माडरेट)	पीला
3.	शोचनीय (क्रिटिकल)	लाल

दो–पहिया वाहन से गिरने के कारण सिर में चोट (इलाज से पहले एवं उपरान्त)

पॉलीट्रामा की रोकथाम

निम्नलिखित सुझावों पर अमल करके रोगी को पॉलीट्रामा से बचाया जा सकता हैः–

1. जन–मानस को दुर्घटना से बचाव के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए।
2. यातायात के नियमों का सख्ती से पालन होना चाहिए।
3. दो–पहिया वाहन चालकों को हमेशा अच्छी गुणवत्ता वाले हेलमेट का प्रयोग करना चाहिए।
4. कार यात्रियों के लिए सीट बेल्ट का प्रयोग अनिवार्य होना चाहिए तथा
5. वाहन चलाते समय चालक की निम्न गतिविधियों पर अंकुश होनी चाहिए –

    मोबाइल नम्बर डायल करना व बात करना मना हो।

    वाहन चलाते समय खाना व पीना नहीं करना चाहिए।

    रेडियो, सीडी प्लेयर व कैसेट संयोजित नहीं करना चाहिए।

    दिमागी तनाव, उलझन व थकान होने पर वाहन न चलाएं।

    वाहन चलाते समय शराब के सेवन व धूम्रपान पर अंकुश लगाना चाहिए।

ट्रॉमा सेण्टर

यह पॉलीट्रामा के रोगियों को विस्तृत आपात चिकित्सा उपलब्ध कराने हेतु विशेषज्ञ चिकित्सकों की टीम तथा अत्याधुनिक उपकरणों से सुसज्जित चिकित्सालय होता है।

उच्च स्तर के ट्रॉमा सेण्टर में विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षित सर्जनों जैसे– न्यूरोसर्जन, प्लास्टिक सर्जन, जनरल सर्जन, छाती हृदय के सर्जन, चिकित्साधिकारी व नर्स आदि की ट्रामा प्रबन्धन में मौजूदगी आवश्यक होती है।

ट्रॉमा सेन्टर में कभी भी किसी बड़ी विपत्ति (डिजास्टर) के प्रबन्धन हेतु समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

त्वरित स्थानान्तरण हेतु उच्चस्तरीय एम्बुलेन्स की सुविधा तथा हेलीपैड हो तो और अच्छा माना जाता है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापना स्थल पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग व स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा वित्तपोषित 324 शय्या व 14 शल्य कक्ष वाला अत्याधुनिक ट्रॉमा सेण्टर बनकर तैयार है। यह ट्रॉमा सेण्टर शीघ्र ही उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश व नेपाल की 25 करोड़ जनता की सेवा के लिए लोकार्पित किया जाएगा। यह ट्रॉमा सेन्टर भविष्य में पॉलीट्रामा से प्रभावित जनता के लिए वरदान साबित होगा।

एक बार में रूट कैनाल उपचार – नया दौर

डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार वर्मा, डॉ. रूचि श्रीवास्तव, डॉ. अखिलेश चन्द्र एवं डॉ. अतुल भटनागर

दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

रूट कैनाल उपचार (RCT) की परिभाषाः रूट कैनाल उपचार वह जटिल प्रक्रिया है जिसमें दाँत के अन्दर संक्रमित (Diseased) या क्षतिग्रस्त पल्प ऊतक (Pulp Tissue) को निकाला जाता है और कैनाल को पूर्णतया भर दिया जाता है।

रूट कैनाल उपचार तब किया जाता है जब पल्प ऊतक का संक्रमण (Infection) जीवाणु द्वारा हो जाता है। इस कारण जब पल्प ऊतक मुँह की लार के सीधे संपर्क में आता है तो मरीज को दाँतो का दर्द होता है। पल्प ऊतक का मुँह की लार के सीधे संपर्क में आने के कारणः

दाँतों में कीड़ा लगना (चित्र अ)

दाँतों का किसी दुर्घटना में टूट जाना (चित्र ब)

दाँतों का बहुत ज्यादा घिस जाना (चित्र स)

रूट कैनाल उपचार में ज्यादातर मरीजों को बहुत बार बुलाये जाने का चलन है लेकिन आजकल बहुत सारी नई तकनीकें आने के कारण, इस उपचार को एक बार में करना सम्भव हो पाया है। बहुबार उपचार में जीवाणुओं द्वारा रूट कैनाल को संक्रमित होने का ज्यादा खतरा रहता है इसलिए आजकल एक बार में रूट कैनाल उपचार एक प्राथमिक प्रक्रिया बन गया है।

एक बार रूट कैनाल उपचार के लिए आवश्यकताएँ

दन्त चिकित्सक को मरीज के दाँतों की बीमारी की स्पष्ट जानकारी होना।

उचित केस का चुनाव।

दन्त चिकित्सक को मरीज के सभी दांतो की आन्तरिक तथा वाह्य संरचना की सम्पूर्ण जानकारी का होना।

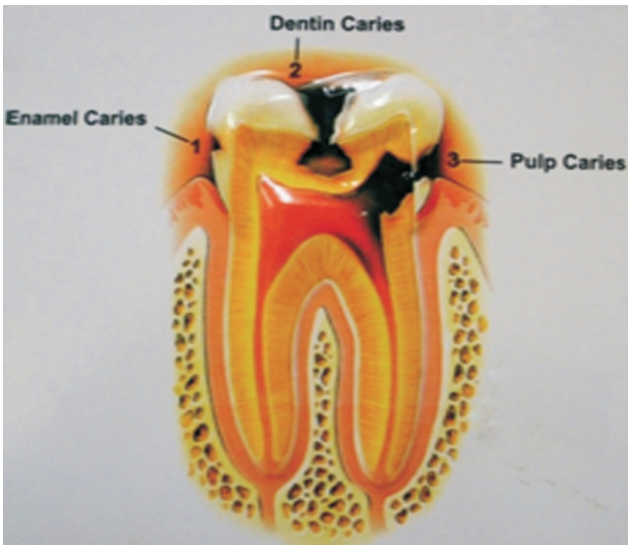

(अ) कीड़ा लगा दाँत

(ब) टूटा हुआ दाँत

(स) घिसे हुए दाँत

एक बार रूट कैनाल उपचार के फायदे

मरीज को केवल एक बार डेन्टल क्लीनिक जाने की जरूरत

मरीज को दाँत सुन्न करने के लिए केवल एक बार इंजेक्शन का प्रयोग

बहुबार उपचार में दो Appointment के बीच में दर्द होने का डर रहता है। इसलिए एक बार उपचार में इससे मरीज को छुटकारा मिल सकता है।

एक बार उपचार में केवल 30 मिनट से 1 घण्टे का समय लगता है। इसलिए यह उपचार मरीज और दन्त चिकित्सक दोनों के समय को बचाता है।

बहुबार उपचार में मरीज कभी–कभी एक बार के बाद डेन्टल क्लिनिक नहीं आता है और उपचार अधूरा रह जाता है जो एक बार उपचार में नहीं होता हैं।

इस उपचार में चिकित्सक दांत की आतंरिक संरचना से पूर्णतया परिचित हो जाता है जो उसको दाँत की कैनाल को साफ करने तथा भरने में मदद करती है जो बहुबार उपचार में नहीं होता हैं।

एक बार उपचार में दाँत की कैनाल का मरीज की लार के जीवाणुओं द्वारा संक्रमण होने का कम खतरा रहता है। इससे रूट कैनाल उपचार की सफलता बढ़ जाती है।

एक बार उपचार के बाद मरीज के दाँतों की जल्दी से दाँत के रंग की फिलिंग की जा सकती है।

एक बार उपचार से हानियाँ

उपचार के लम्बे समय से मरीज का थक जाना।

बिना अनुभव के दन्त चिकित्सक उपचार को एक बार में सफलतापूर्वक सम्पन्न नहीं कर सकता है।

सभी केस में यह उपचार संभव नहीं होता है।

यदि मरीज को एक बार उपचार के बाद यदि कभी दर्द होता है तो रूट कैनाल फिलिंग को निकालना पड़ सकता है जो कि बहुत कठिन होता है।

एक बार उपचार कहाँ करना तथा कहाँ नहीं करना

एक बार उपचार को अनुभवी विशेषज्ञ दन्त चिकित्सक द्वारा लगभग सभी दाँतों तथा सभी मरीजों में किया जा सकता है। केवल उसी परिस्थिति में एक बार उपचार नहीं हो सकता है जब रूट कैनाल से मवाद निकल रहा हो। ऐसे दाँतों में तुरन्त फिलिंग करना संभव नहीं होता। इसलिए ऐसे मरीजों का एक बार में उपचार नहीं किया जा सकता है।

अनुभवी तथा विशेषज्ञ दन्त चिकित्सक द्वारा एक बार में रूट कैनाल उपचार एक अत्यन्त ही सुलभ एवं आसान तरीका है। इससे मरीज को काफी सुविधा होती है एवं उसे कई बार डेन्टल क्लिनिक नहीं आना पड़ता है। यदि एक बार उपचार को सही तथा पूर्ण रूप से किया जाए तो मरीज को उपचार के बाद कोई परेशानी नहीं होती है।

दाँतो में सनसनाहटः कारण एवं निवारण

डॉ. रूचि श्रीवास्तव, डॉ. अखिलेश चन्द्र, डॉ. पुष्पेन्द्र वर्मा एवं डॉ. रजत कुमार सिंह

दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

दाँतों में सनसनाहट, दाँतों का एक महत्वपूर्ण रोग है। यह दाँतो में गर्म, ठण्डा या मीठा खाने–पीने, छूने एवं हवा लगने से हो सकता है। इस अवस्था में रोगी को काफी तेज दर्द या असहज महसूस होता है। यह दाँतों की नसें खुलने की वजह से होता है।

कारण

दाँतों की नसें कई कारणों से खुल जाती हैं– दाँतों के ऊपर की पर्त, जिसे इनामेल तथा सीमेन्टम (जड़ में) कहा जाता है यदि हट जाए या घिस जाए।

इनामेल का घिसना या हटना दाँतों के आपस में रगड़ने की वजह से अथवा दन्त ब्रश के गलत तरीके से प्रयोग करने की वजह से अथवा अन्य रासायनिक भोज्य पदार्थों जैसे शीतल पेय पदार्थ, अचार, नींबू आदि के प्रयोग से अथवा आमाशय के अम्ल के डकार के साथ मुँह में आने की वहज से भी हो सकता है।

इनामेल की परत हटने की वजह से अन्दर की परत (डेन्टिन) खुल जाती है। चूँकि डेन्टिन में बहुत सारी छोटी–छोटी सूक्ष्म नलिकाएं (डेन्टिनल ट्यूब्यूल्स) पाई जाती हैं जो बाहर के वातावरण को दाँत के अन्दर जीवित पल्प ऊतक से जोड़ देती हैं।

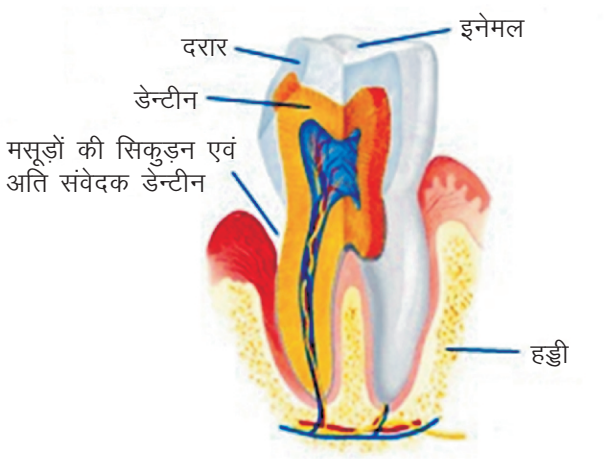

दाँत की आन्तरिक संरचना

डेन्टिनल ट्यूब्यूल्स के भीतर एक तरल पदार्थ भरा होता है जो वातावरण में परिवर्तन (तापमान परिवर्तन, भौतिक परिवर्तन, रासायनिक परिवर्तन आदि) के कारण गतिशील हो जाता है। जो पल्प ऊतक में पाई जाने वाली नसों को उत्तेजित/उद्दीप्त कर देता है जिस कारण रोगी को दाँत में सनसनाहट या दर्द का एहसास होता है।

लगभग 4–74 प्रतिशत 20–40 वर्ष की अवस्था के व्यक्ति इस रोग से अधिक प्रभावित होते हैं।

महत्व

यद्यपि दाँतों की यह समस्या बहुत खतरनाक या जानलेवा नहीं है तथापि रोगी अत्यन्त परेशान तथा असहज हो जाता है। रोगी को हल्का या तेज चुभने वाला, धीमा तथा लगातार या रूक–रूक कर दर्द हो सकता है। इसलिये इसका इलाज आवश्यक है।

दाँत की कुछ अन्य समस्याएं जैसे कीड़ा लगना, दाँतों के एक हिस्से का टूट जाना अथवा दाँतों में क्रेक आ जाना आदि अवस्थाओं में भी इस समस्या के समान ही लक्षण पाए जा सकते हैं, अतः सही कारण का पता चलना आवश्यक है।

उपचार

दाँतों की इस समस्या के निदान के लिये कई प्रकार के इलाज मौजूद हैं, जिनमें प्रमुख है– दाँतों के खुले/घिसे या टूटे हिस्से पर किसी रासायनिक पदार्थ अथवा दवा का लेप लगाना। इस प्रकार का उपचार दन्त चिकित्सक के द्वारा या घर पर स्वयं भी किया जा सकता है।

1. कुछ दवायें जो **नसों को निष्क्रिय** कर देती हैं, जैसे पोटैशियम नाइट्रेट का प्रयोग। 5 प्रतिशत सान्द्रता में यह दन्त मंजन अथवा कुल्ला करने की दवा (माउथवाश) में प्रयुक्त होता है जो लगभग 4 सप्ताह तक रोगी को आराम देता है।

2. **डेन्टिनल ट्यूब्यूल्स को ढकने** की दवाएं, जैसे कैल्शियम हाइड्राक्साइड, केसीन फोस्फोपेप्टाइड, सोडियम फ्लोराइड, सोडियम मोनोफ्लोरोफास्फेट, स्टैनस फ्लोराइड तथा फार्मेल्डिहाइड या ग्लूटरेल्डिहाइड आदि।

   इन रसायनों अथवा दवाओं के प्रयोग से डेन्टिन की सूक्ष्म नलिकाएं ढक जाती हैं अथवा अवरूद्ध हो जाती हैं, जिससे रोगी को अत्यन्त राहत मिल जाती है।

3. डेन्टिन की सतह के ऊपर कुछ **चिपकने योग्य कृत्रिम पदार्थ** भी प्रयोग किये जा सकते हैं। परन्तु यह तकनीक अधिकांशतः किसी विशेष स्थान की सनसनाहट को समाप्त करने के लिये प्रयुक्त की जाती है।

4. **लेज़र प्रकाश किरणों का प्रयोग,** दो प्रकार की लेज़र कार्बन–डाइआक्साइड लेज़र तथा ए न. डी. वाइ.ए.जी. लेज़र तकनीकों का प्रयोग इस समस्या के निदान के लिये किया जा सकता है। शोधों में यह पाया गया है कि यदि फ्लोराइड जैल तथा लेजर तकनीक का प्रयोग साथ–साथ किया जाय तो यह काफी प्रभावी तरीका हो सकता है तथा रोगी को लम्बे समय तक आराम मिल जाता है।

5. **दाँत में भरने योग्य पदार्थों का प्रयोग,** ग्लास आयनोमर सीमेन्ट तथा कम्पोजिट रेजिन्स आदि का प्रयोग भी इस समस्या के निदान में सहायक हो सकता है।

6. **पेरियोडोन्टल शल्य चिकित्सा,** इस विधि का प्रयोग दाँतों के निचले हिस्से अर्थात् जड़ के खुलने के कारण होने वाली सनसनाहट को समाप्त करने के लिये किया जाता है।

उपरोक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि दाँतों की सनसनाहट अधिकांशतः व्यक्तियों में पाई जाने वाली सामान्य समस्या है तथा इसके निवारण के लिये कई विकल्प उपलब्ध है।

सामान्यतः यदि व्यक्ति सही तरीके से अपने मुख की सफाई करे तथा दाँतों के इर्द–गिर्द जमा होने वाली गन्दगी (प्लाक) को प्रतिदिन सही ढंग से साफ करे तो लार में पाए जाने वाले विभिन्न खनिज लवण दाँत के खुले हिस्से पर तथा डेन्टिनल ट्यूब्यूल्स में एक परत जैसी बना लेते है, जो प्राकृतिक रूप से इस समस्या का स्वतः निवारण कर देते हैं।

बच्चों के टेढ़े–मेढ़े दाँत एवं उनका उपचार (आर्थोडोन्टिक उपचार)

प्रो. टी. पी. चतुर्वेदी

दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आर्थोडोन्टिक (विकृत दन्त) उपचार दन्त चिकित्सा विज्ञान की वह विधि है जिसके अंतर्गत टेढ़े–मेढ़े दाँतों एवं जबड़े को ठीक किया जाता है। इसके उपचारक को विकृत दन्त विशेषज्ञ (आर्थोडोन्टिस्ट) कहते हैं । सुन्दर चेहरे के लिए दाँतों एवं जबड़ों का समरूपता में होना एक महत्वपूर्ण घटक है। इस संरचना में किसी प्रकार की विकृति चेहरे के सौन्दर्य को बिगाड़ देता है (चित्र 1)। ऐसी विकृतियों से दाँतों एवं मसूड़ों में अनेक प्रकार की बीमारी, भोजन करनें में दिक्कत, जबड़े के जोड़ में दर्द और बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास में बाधा होती है।

चित्र 1

ऐसी परेशानियाँ मुख्यतः दो प्रकार से होती है। पहली आनुवंशिक (हेरिडिटरी) और दूसरी वातावरणीय।

आनुवंशिक कारण

यदि माता–पिता, दादा–दादी या नाना–नानी में से किसी के दाँत एवं जबड़े बाहर होते हैं तो बच्चों के भी दाँत टेढ़े–मेढ़े होने की संभावना होती है।

वातावरणीय कारण

प्रायः यह देखा गया है कि कुछ बच्चों मे अपनी अंगुली और अंगूठे चूसने, मुंह खोल कर सांस लेने आदि की आदत होती है जो दाँत एवं जबड़े को टेढ़ा–मेढ़ा कर देती है (चित्र 2)।

चित्र 2

असामान्य रूप से निगलने की आदत, मुख की समुचित सफाई न रखना, बच्चों के दाँत असमय {समय से पहले या बाद) निकलना एवं गिरना तथा स्थाई दाँतों का किसी दुर्घटनावश क्षति होना एवं कुपोषण का प्रभाव या अन्य कोई शारीरिक अस्वस्थता आदि के कारण दाँतों की विभिन्न बीमारियाँ होती हैं। इसके अतिरिक्त, जबड़े की

पैदाइशी बीमारी जैसे कटे होठ एवं तालू तथा हारमोनल समस्याओं के कारण भी दाँत टेढ़े–मेढ़े हो सकते हैं।

टेढ़े–मेढ़े दाँतों से परेशानियाँ

यदि बच्चों के दाँत टेढ़े–मेढ़े हैं तो उनकी सुन्दरता पर विशेष असर पड़ता है तथा कभी–कभी इसके कारण बच्चे का शारीरिक एवं मानसिक विकास भी प्रभावित होती है। मुँह के जबड़े की हड्डियों के जोड़ों में इस कारण से परेशानी हो सकती है। टेढ़े–मेढ़े दाँत होने के कारण मुँह की समुचित सफाई भी नहीं हो पाती है फलतः मुँह में दुर्गन्ध बनी रहती है तथा दाँत सड़ने लगते हैं। वयस्कों के दाँत भी इसके कारण कमजोर हो जाते हैं।

उपचार

इस प्रकार का उपचार 7 वर्ष की उम्र के बाद किया जाता है। मगर ध्यान रहे कि इसके उचित उपचार का समय 7 से 16 वर्ष की आयु तक है। इस उम्र में इलाज के अच्छे परिणाम निकलते हैं। यद्यपि इस तरह की दिक्कतों का ईलाज किसी व्यक्ति में किसी भी उम्र में किया जा सकता है, बशर्ते उसके मुँह एवं दाँत में कोई और बीमारी न हो। इसकी परेशानी को दूर करने के लिये अनेक आधुनिकतम विधियों का प्रयोग होता है जिन्हें साधन उपकरण (अप्लायंस) कहा जाता है जो दो प्रकार के होते हैं प्रथम निकालने लगाने वाले अप्लायंस (उपकरण) (चित्र 3)।

चित्र 3

दूसरे स्थिर (फिक्स) उपकरण जिनके माध्यम से सफल उपचार किया जाता है (चित्र 4)।

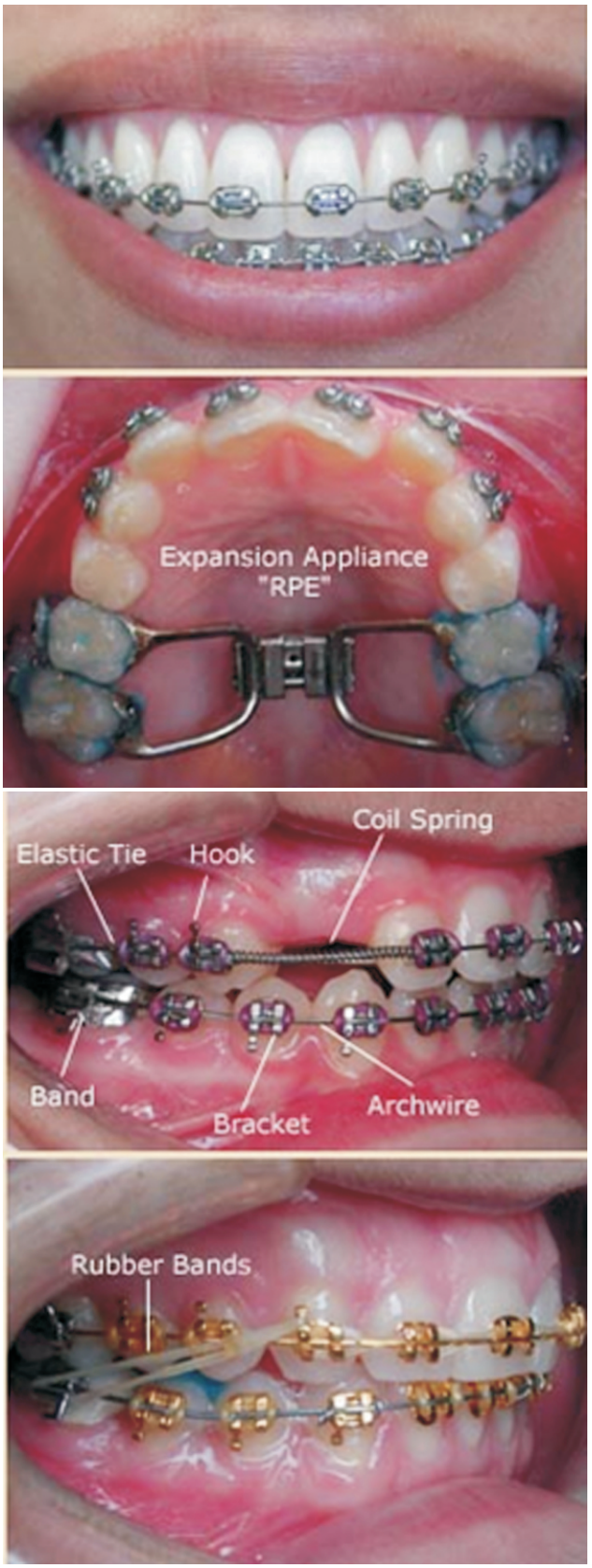

चित्र 4

चित्र 5

उपरोक्त उपचार में दाँतों को हड्डी में अप्लायंस से समयोजित कर दिया जाता है। कभी–कभी चेहरे की हड्डियों के दबाव को भी संतुलित करके इसका उपचार किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त दाँत के अन्दर वाली सतह पर ब्रैकेट लगाकर भी उपचार किया जाता है (चित्र 5)। आर्थोडोन्टिक उपचार में लगभग छः माह से तीन वर्ष तक का समय लग सकता है।

चिकित्सा विज्ञान संस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय में इस प्रकार के उपचार हेतु विशेष सुविधायें उपलब्ध हैं। इतना ही नहीं, इस उपचार हेतु दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय में स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर पठन–पाठन का कार्यक्रम भी संचालित हो रहा है।

दाँत में कीड़ा लगना एवं रोकथाम

डॉ. राजेश बंसल

दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

दाँत में कीड़ा लगना एक संक्रामक बीमारी है जिसमें दाँत की सख्त सतह जो कि इनेमल और डेन्टिन से मिलकर बनी है, पूरी तरह या अंशतः गलकर टूट जाती है। अगर सख्त सतह पूरी तरह टूट जाये तो संक्रमण दाँत की नस तक चला जाता है और संक्रमण के चलते मवाद व दर्द हो सकता है। दाँतों की सड़न मुख्यतः दो कीटाणुओं के द्वारा की जाती है (अ) स्ट्रौप्टोकोकस म्यूटान्स (ब) लैक्टोबैसिलस।

बीमारी की प्रक्रियाः ऐसा नहीं हैं कि उपर लिखे गये कीटाणुओं के होने की वजह से दांत में कीड़ा लग ही जायेगा। इसके लिए कुछ विशेष परिस्थितियों की आवश्यकता होती है जो निम्नानुसार है :

(1) बैक्टीरिया की मौजूदगी।

(2) ग्लूकोज की मौजूदगी।

(3) दाँतों की बनावट में कमियाँ।

(4) थूक का कम बनना या इसका अधिक तरल या सघन होना।

(5) दाँतों पर लगे प्लाक (बायोफिल्म) को दातून या ब्रस से साफ न करना।

कीड़ा लगने की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार है

थूक में विद्यमान प्रोटीयोग्लाइकेन व ग्लाइको–प्रोटीन एक पतली सी झिल्ली (स्लाइवरी पेल्लीकल) बनाते हैं। इस झिल्ली के उपर कुछ कीटाणु आकर जुड़ जाते हैं। ये कीटाणु धीरे–धीरे संख्या में बढ़ने लगते हैं और अपनी बस्तियाँ (कालोनी) बनाते हैं तथा झिल्ली की मोटाई बढ़ती जाती है और इसे प्लाक (बायोफिल्म) कहते हैं। इस बायोफिल्म की विशेषता यह होती है कि इसके अन्दर आसानी से न तो कोई वस्तु (रसायन) जा सकता है और न ही इसके बाहर आ सकता है। ये किटाणु भोजन में विद्यमान ग्लूकोज को अपनी भोजन की तरह इस्तेमाल करते हैं और मल–मूत्र की भांति लैक्टिक एसिड पैदा करते हैं। यह लैक्टिक एसिड प्लाक से बाहर नहीं जा सकता और दांत की सतह के पास अम्ल की मात्रा बढ़ती रहती है और पी.एच. (5.4 क्रिटीकल पी.एच. होता है) घटने लगता है। जब पी.एच. क्रिटीकल पी.एच. के नीचे जाने लगता है तो इनेमल और डेन्टिन में विद्यमान रसायन तत्त्व (कैल्सियम) निकल जाता है और पीछे बचा इनेमलिन व अन्य प्रोटीन का ढांचा भी ढह जाता है। जिससे की दाँत में एक छोटा गड्ढा (खोड़ा) हो जाता है। छोटे गड्ढे को साफ करके अगर चांदी (अमलगम) या किसी दूसरे पदार्थ से भर दिया जाय तो बीमारी की प्रक्रिया को इसी स्तर पर रोका जा सकता है। लेकिन अगर यह प्रक्रिया लगातार चलती रहे तो गड्ढा बढ़ता रहता है और दाँत को लगातार कमजोर कर देता है। कभी–कभी तो यह कमजोर हुआ दाँत खाना चबाते वक्त टूट ही जाता है और सिर्फ जड़ ही बच जाती है जिसे निकालने के अलावा कोई इलाज सम्भव नहीं रहता है। जब गड्ढा बहुत गहरा हो जाता है और संक्रमण नस तक पहुँच जाता है तो साधारण तरीका जैसे दाँत साफ करके भरना इसका सही उपचार नहीं है। इस दशा में दाँत की नस वाले हिस्से को साफ करके भरना पड़ता है। इस प्रक्रिया को आर.सी.टी. या रूट कैनाल थिरैपी कहते हैं। इसके पश्चात दाँत पर टोपी (क्राउन) लगाना सही रहता है क्योंकि यह दाँत को मजबूती प्रदान करता है अन्यथा कमजोर हुआ यह दाँत टूट सकता है।

दाँतो में कीड़े लगने से बचने के उपाय

1. दाँतो में अगर पैदायशी या बाद में किसी प्रकार की छोटी–मोटी त्रुटियाँ (पिट और फिसर) अगर नजर आयें तो उन्हें शुरूआत में ही ठीक करवा लिया जाना चाहिए। बच्चों को शुरूआती दिनों में दांत के डॉक्टर को दिखाते रहना चाहिए ताकि ये त्रुटियाँ पता लग सकें।

2. रिफाइन्ड शूगर जैसे ग्लूकोज का कम मात्रा में और कम से कम सेवन करें और इसके उपयोग के पश्चात् सादे पानी से कुल्ला कर लें या फिर अगर सम्भव हो तो ब्रश कर लें।

3. दिन में दो बार ब्रश करें (अ) रात में सोने से पहले ब्रश करें और सफाई के बाद कुछ भी खायें पीयें ना, ताकि मुँह रात भर साफ रहे और कीटाणुओं का हमला न हो सके। (ब) सुबह कुल्ला करके ही नाश्ता करें और इसके पश्चात् ब्रश करें ताकि जो भी खाने के अवशेष दाँतों में फंसे/चिपके हों, वे निकल जायें।

दन्तविहीन अवस्था में मरीज की मनोदशा

डॉ. अतुल भटनागर, डॉ. टी.पी. चतुर्वेदी एवं डॉ. पवन कुमार दूबे

दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रस्तुत पुनरावलोकन मरीज की उस अवस्था के सन्दर्भ में है जो कि दाँतों के गिर जाने के पश्चात् सामान्यतः परिलक्षित होती है। इसी क्रम में उन सभी तथ्यों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया है जो कि कृत्रिम दन्त उपचार में व्यवहारिक रूप से महत्वपूर्ण है।

दन्तविहीन अवस्था सामान्यतः प्रौढ़ वर्ग में ज्यादा पायी जाती है। परिणाम–स्वरूप इस अवस्था में मरीज स्वतः बूढ़ा और उदासीन दिखने लगता है। मनोवैज्ञानिक आधार पर इस वर्ग के मरीजों के दो विभिन्न संवर्गों में विभाजित किया गया है–पहले वर्ग में वह मरीज जो कि निर्धारित समय से पूर्व ही इस अवस्था को प्राप्त हो जाये, उन्हें Climacteric कहते हैं और दूसरे वह मरीज जो कि निर्धारित आयु या उसके पश्चात् इस अवस्था को प्राप्त हो उन्हें Geriatric Patient कहते हैं।

ऐसे रोगियों में उपचार की सफलता काफी कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि वे स्वयं के बारे में क्या धारणा रखते हैं और उनकी अपेक्षाएँ किस प्रकार की हैं। अतः ऐसे रोगियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और उसके आधार पर उनका आँकलन वस्तुतः विचारणीय है। दाँतों का गिरना सौन्दर्य एवं जैव यान्त्रिकी कारकों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि स्वास्थ्य कर्मी अथवा स्वास्थ्य के पेशे से जुड़े हुये तमाम लोगों ने दाँतों के क्षय को उतना महत्वपूर्ण नहीं समझा है जितना कि शरीर के किसी भी अंग के क्षय को समझा जाता है। चूँकि दाँतों के क्षय की क्षतिपूर्ति कर पाना तो मुमकिन है, परन्तु प्राकृतिक दाँतों की तुलना में कृत्रिम दाँतों (Denture) की क्षमता निश्चित तौर पर प्रश्नवाचक है। ज़ाहिर है कि ऐसे किसी भी प्रकार के कृत्रिम संसाधन से उस व्यक्ति विशेष की मनोदशा भी प्रभावित होती है।

मध्यम आयु वर्गीय मरीजों में कृत्रिम दाँतों के प्रति असहिष्णुता (Dentur intolerance) एक व्यापक समस्या के रूप में देखी जा रही है, परन्तु इस तथ्य पर कुछ ही शोधकर्ताओं ने विचार किया है जो कि एक मनुष्य के जीवन पर भावनात्मक प्रहार और मृत्यु से भी ज्यादा घातक सिद्ध हो सकता है। इस तरह के मरीजों को एक ऐसे वर्ग में चिह्नित किया गया है जो कि अपने आपको इस परिवर्तित अवस्था के अनुरूप ढाल पाने में असहज महसूस करते हैं। ऐसे विशिष्ट मरीजों को चार नये तरीकों से वर्गीकृत किया गया है:

ADAPTIVE

MALADAPTIVE CLASS-I

MALADAPTIVE CLASS-II

MALADAPTIVE CLASS-III

दन्त चिकित्सा विज्ञान के प्राधिकारियों ने कृत्रिम दन्त उपचार में काफी समय पहले ही मनोविज्ञान एवं दन्त चिकित्सा के बीच इस अहम पहलू को समझने की चेष्टा शुरु की थी और यह पाया कि अवसाद, उत्कण्ठा एवं भय कृत्रिम दाँतों को धारण करने में असहजता उत्पन्न करते हैं। इसके अलावा Severe Gagging (अत्यधिक उबकाई आना) भी एक प्रमुख बाधक के रूप में सामने उभरकर आती है। यह भी पाया गया है कि उस व्यक्ति विशेष का माँसपेशियों पर नियन्त्रण रखना एवं उसमें सामंजस्य स्थापित करना भी चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

उत्कण्ठाः सामान्यतः जो भी दाँत के मरीज दन्त चिकित्सक के पास आते हैं उनमें कुछ न कुछ उत्कण्ठा अवश्य पायी जाती है। दन्त चिकित्सा के प्रति उत्कण्ठा, उपचार के प्रति संवेदनशीलता, आर्थिक स्थिति और उसकी प्राप्ति में विषमताएँ आना कुछ विशेष मनोवैज्ञानिक समूह में विभाजित किये जा सकते हैं। ज्यादातर ऐसे वर्ग के मरीज अपनी आवश्यकताओं को सही तौर पर

अभिव्यक्त ही नहीं कर पाते अतः उस स्तर के Satisfaction को प्राप्त नहीं कर पाते जिसकी वे अपेक्षा रखते हैं। एक मरीज की इच्छा और उसकी मूलभूत आवश्यकता के बीच में उत्कण्ठा मुख्य रूप से बड़ी समस्या है।

उत्कण्ठा का मूल उद्देश्य एक व्यक्ति को उन सभी खतरों के प्रति आगाह करना है जो कि उसे चिकित्सा के दौरान झेलना पड़ सकता है अतः यह सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है कि वह किसी पूर्वाग्रह से प्रेरित तो नहीं है? ऐसा पाया जाता है कि वो मरीज जोकि पहले किसी प्रकार की प्रक्रिया से अवगत हुये हो और उनका अनुभव बहुत खराब रहा हो उसमें उत्कण्ठा की मात्रा ज्यादा पायी जाती है। दाँतों का ह्रास, यौवन एवं जीवन्तता में ह्रास का द्योतक है अतः ऐसी अवस्था में भावनात्मक ह्रास भी अपेक्षित है।

अवसादः अवसाद एक प्रकार की प्रतिक्रिया है कुछ हानि होने के पश्चात् यह वास्तविक हो सकता है अथवा भ्रामक भी हो सकता है। यह स्थिति ज्यादातर प्रौढ़ावस्था में एक भावनात्मक आघात के तौर पर देखी जाती है। इस तरह की स्थिति का पूर्वानुमान होने से दन्त चिकित्सक निःसन्देह ऐसे मरीजों को मानसिक चिकित्सक के पास भेजकर उनकी उदासीनता का निदान कर सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि दन्त चिकित्सा का अवसाद के लक्षणों से कोई सीधा सम्बन्ध हो वरन् यह मरीज की उम्र, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति से प्रभावित हो सकता है।

किसी भी मनुष्य के जीवन में किसी भी वस्तु का ह्रास एक महत्वपूर्ण घटना है। इसी प्रकार दाँतों का ह्रास इस बात का सूचक है कि जीवन भी इसी प्रकार नश्वर और विलुप्तप्राय है। ज्यादातर लोगों के लिये पहला कृत्रिम दाँत (Denture) एक ऐसा अनुभव है जो शरीर में एक व्यापक परिवर्तन के रूप में महसूस किया जाता है। अतः मरीज का इस अवस्था को प्राप्त करने से पहले अपने आपको असहज एवं उत्कण्ठित महसूस करना लाज़मी है।

अतः जिस प्रकार से मुख दाँतों को बैठाने के लिये उसके स्वास्थ्य को महत्वपूर्ण माना जाता है ठीक उसी प्रकार से उस व्यक्ति को भावनात्मक रूप से भी तैयार करना उतना ही आवश्यक हो जाता है। ऐसा पाया जाता है कि जो लोग भावुक होते हैं उनमें नई स्थिति के प्रति अपने आपको अनुकूल बनाना ज्यादा कठिन होता है।

भयः किसी भी खतरनाक वस्तु अथवा स्थिति के प्रति प्रतिक्रिया भय होती है। ऐसी अवस्था में मरीज अक्सर परेशान होकर हर चीज को संदिग्ध दृष्टि से देखता है। ये कोई चौकाने वाली बात नहीं है कि मरीज दाँतों के ह्रास के पहले भयभीत एवं आतंकित महसूस न करें। भय ग्रस्त मरीज दन्त चिकित्सक के लिए भी घातक सिद्ध होता है अतः दन्त चिकित्सक को ऐसी स्थिति में अपने आत्म–विश्वास और धैर्य से काम लेना चाहिये और इस बात का पूर्वानुमान अनिवार्य रूप से लगा लेना चाहिये कि मरीज भविष्य में इसके प्रति क्या प्रतिक्रिया करेगा? यह आवश्यक नहीं है कि चिकित्सक मरीज या उसकी मनःस्थिति की परिधि को चिह्नित कर ही पाये, क्योंकि बहुत से ऐसे मरीज कृत्रिम दाँत को यह मानकर स्वीकार कर लेते हैं कि यह वृद्धावस्था का पर्याय है और जैसे–जैसे उनकी वृद्धावस्था बढ़ती जाती है उनका उन दाँतों के प्रति रवैया उपेक्षित अथवा निष्प्रयोज्य हो जाता है।

बहुत से शोधकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि कृत्रिम दाँतों के साथ सामंजस्य (ताल–मेल) बैठाना किसी भी मनुष्य की मानसिक संरचना के उपर निर्भर करता है। सामान्य लोग किसी भी प्रकार के भय और उत्कण्ठा के प्रति तीन विभिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं:

(1) सर्वप्रथम बौद्धिक स्तर पर जो कि सबसे उच्चतम स्तर की प्रतिक्रिया समझी जाती है।

(2) दूसरा स्तर दो प्रकार से समझा जा सकता है–

शरीर क्रिया के आधार पर एवं

मनोदशा के आधार पर।

(3) तीसरे स्तर की प्रतिक्रिया निम्न स्तर की समझी जा सकती है। ऐसे लोगों की प्रतिक्रिया पूर्णतः स्वार्थी प्रवृत्ति वाले लोगों की होती है जो कि केवल इस बात से सम्बन्ध रखते हैं कि उनको वो चीज अच्छी लग रही है या बुरी, बजाय इस तथ्य को समझने के कि जो उपचार उनके लिये किया गया है वह कितना सार्थक है।

अतः इस बात से यह निष्कर्ष निकलता है कि वो मरीज जो कि कृत्रिम दाँत को प्राप्त करने वाले हैं या प्राप्त कर चुके हैं उनमें मनोवैज्ञानिक आधार, एक प्रमुख भूमिका निभाता है, मरीजों की मनोदशा उनके पुनर्वास सम्बन्धित कार्यों में निःसन्देह सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसी क्रम में मुख सम्बन्धी पुनर्वास से जुड़े अन्य तथ्यों को भी ध्यान रखना आवश्यक है जैसे कि कृत्रिम दाँतों की प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पहले मरीज़ से सलाह करना बहुत जरूरी है, क्योंकि यह काफी हद तक सम्भव है कि मरीज की अपेक्षाएँ ऐसी प्रतीत हों जो कि वास्तविकता से परे हो। उनकी अपेक्षाएँ इस बात का प्रदर्शन करती हैं जो कि बहुत क्लिष्ट हो अतः उनको इस बात का आभास कराना बहुत जरूरी है कि पूरी प्रक्रिया के उपरान्त उनको किस स्तर का लाभ मिलेगा।

अतः चिकित्सक की यह जिम्मेदारी बन जाती है कि मरीज के मनोभाव को अच्छी तरह से समझने की कोशिश करे और साथ ही साथ यह प्रयास निरन्तर करता रहे कि मरीज की मनोदशा एवं पुनर्वास में मरीज के अन्दर सकारात्मक सोच उत्पन्न हो सके। एक बार मरीज की जरूरतें और अपेक्षाएँ चिह्नित हो जायें तो चिकित्सक और अच्छे विकल्प के बारे में भी सोच सकने में सक्षम हो सकता है जो कि निश्चित तौर पर मरीज के रहन–सहन के हिसाब से सामंजस्य बिठा सके।

निष्कर्षः समकालीन परिप्रेक्ष्य में संवाद विहीनता एक प्रमुख समस्या है और यह विकराल रूप धारण करती जा रही है जो कि मूलतः चिकित्सक अथवा मरीज की अति–व्यस्तता के कारण उत्पन्न होती है। इसलिए किसी भी पुनर्वास कार्यक्रम के पहले चिकित्सक और मरीज के बीच संवाद स्थापित करना एक महत्वपूर्ण पहलू बन जाता है तथा चिकित्सक को यह सुनिश्चित करना आवश्यक हो जाता है कि जिस मरीज का वो उपचार करने वाला है उस मरीज का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने के पश्चात् उसकी अपेक्षाओं, जरूरतों और व्यवहार में आवश्यक परिवर्तन किया जा सके।

ऐसे परिवर्तन के लिए उस मरीज से गहन साक्षात्कार के बाद उसका मूल्यांकन करके उसको उसकी वस्तु–स्थिति के बारे में शिक्षित करना चाहिये और इस स्थिति से जुड़ी वास्तविकता को विस्तारपूर्वक समझा देना चाहिये। अतः मरीज से संवाद स्थापित करना चिकित्सक की पूर्ण जिम्मेदारी है तथा यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि मरीज की बीमारी के निदान में यह एक अपरिहार्य कदम है।

सारांशः आज के अतिव्यस्त युग में निश्चित तौर पर सामाजिक जागरूकता में भी वृद्धि हुई है जो कि इस बात का द्योतक है कि हर व्यक्ति का सामाजिक, मानसिक और शारीरिक व्यक्तित्व उसके स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध रखता है। साथ ही इस बात को भी रेखांकित करता है कि उस उपचार की सफलता और उपयोगिता इन्हीं तथ्यों पर आधारित है। अतः यह कृत्रिम दन्त से सम्बन्धित उस चिकित्सक की जिम्मेदारी है कि वह मरीज के साथ एक ऐसा विश्वास स्थापित करे जिससे कि उसके उपचार को तत्परतापूर्वक एवं सहजता से निस्तारित किया जा सके।

डेन्टल इम्प्लान्ट – कृत्रिम दाँतो का एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प

डॉ. रोमेश सोनी, डॉ. अखिलेश चन्द्र, डॉ. राजुल विवेक एवं डॉ. अंकिता सिंह

दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

डेन्टल इम्प्लान्ट टाइटेनियम धातु से बना हुआ एक यंत्र होता है जो कृतिम दाँतों को जबड़े की हड्डी से जोड़ता है तथा मुँह में न पाये जाने वाले (अनुपस्थित या उखड़े हुए) दाँतों की जगह एक कृतिम विकल्प प्रदान करता है। इस प्रकार के दाँत, प्राकृतिक दाँतों से काफी मिलते जुलते हैं तथा दूसरा व्यक्ति इन्हें जल्दी पहचान नहीं सकता है। यह आपके आत्मविश्वास को कई गुना बढ़ा देते है। यदि व्यक्ति ठीक ढंग से इनकी देखभाल करें तो यह जीवन भर प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

आवश्यकताएँ

डेन्टल इम्प्लान्ट का प्रयोग करने के लिए व्यक्ति की हड्डी और मसूड़े स्वस्थ्य होने चाहिए। धूम्रपान करने वाले, मधुमेह, हृदय रोग से पीड़ित तथा विकिरण द्वारा इलाज कराने वाले रोगियों की विशेष जाँच अनिवार्य है।

डेन्टल इम्प्लान्ट करने का तरीका

डेन्टल इम्प्लान्ट लगाने में लगभग आधे से एक घन्टा का समय लगता है तथा यह क्रिया मरीज को सुन्न करके की जाती है। इम्प्लान्ट लगाने में दो बार छोटी–छोटी शल्य क्रियाएँ की जाती हैं। प्रथम बार में इम्प्लान्ट को जबड़े की हड्डी के अन्दर डालकर तीन से छः महीने के लिए घाव भरने के लिए छोड़ दिया जाता है। द्वितीय चरण में घाव की जाँच की जाती है कि इम्प्लान्ट पूरी तरह से हड्डी से जुड़ा गया है अथवा नहीं। यदि सब ठीक होता है तो इम्प्लान्ट के ऊपर एक कृत्रिम दाँत लगा दिया जाता है (चित्र)।

इम्प्लान्ट के उपयोग

यह एक या अधिक गायब दाँतो की जगह, असली दाँतों की तरह प्रयोग में लाया जा सकता है।

यह बार–बार निकालने लगाने वाले दाँतों की जगह प्रयोग में लाया जा सकता है।

यह बत्तीसी को ज्यादा स्थिर और आरामदायक बनाने में सहयोग करता है।

इम्प्लान्ट के लाभ

इस प्रक्रिया में अगल–बगल के असली दाँतों से छेड़–छाड़ करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

यह हड्डी एवं मसूड़ों को गलने से रोकता है।

यह हमारे प्राकृतिक दाँतों की तरह ही दिखता है।

यह हमारे चबाने की क्षमता को 90–95 प्रतिशत तक कर देता है जो कि बत्तीसी (20 प्रतिशत) तथा अन्य तरह के फिक्स दाँत (60 प्रतिशत) की तुलना में काफी ज्यादा है।

इस प्रकार के दाँत काफी सफल होते हैं।

मुँह की जलनः एक रहस्य

डा. अदित, डा. अखिलेश चन्द्र एवं डा. राहुल अग्रवाल

दन्त चिकित्सा विज्ञान संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

रोगी की प्रमुख समस्याएं जो वह चिकित्सक को बताता है उनमें प्रमुख हैं– मुख में जलन होना, मुँह का सूखापन, दर्द होना, खाने में दिक्कत आना एवं खाने की इच्छा का न होना, चिड़चिड़ापन, गुस्सा आना, नींद न आना, सिरदर्द तथा समाज में घुलने मिलने की इच्छा का समाप्त होना इत्यादि। इस रोग का मुख्य कारण अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया है परन्तु कुछ कारक जो इसका कारण बन सकते हैं वे हैं– हार्मोन परिवर्तन, शरीर में पोषक तत्वों की कमी एवं स्वाद का बदलना।

प्रस्तावना

बर्निंग माउथ सिंड्रोम या मुँह का जलनरोग उसी परिस्थिति में कहा जाता है जब मुँह के अन्दर कोई अन्य रोग या छाले आदि न हों तथा प्रयोगशाला जाँच में भी किसी प्रकार की बीमारी/कमी रोगी में न पाई जाए। इस रोग को अन्य नामों से भी जाना जाता है। जैसे–स्टोमेटो-डाइनिया, ग्लोसोडाइनिया, ओरल डिस्एस्थिसिया एवं सोर माउथ।

यह रोग 10–40 प्रतिशत महिलाओं में (जिनका मासिक धर्म समाप्त हो गया है) पाया जाता है।

लक्षण

मुँह की जलन सबसे ज्यादा जिह्वा के अग्र भाग में (लगभग 71 प्रतिशत) पाई जाती है। इसके बाद होठों पर (50 प्रतिशत), जीभ के दाएं–बाएं के हिस्से में (46 प्रतिशत) तथा तालू में (46 प्रतिशत) पाई जाती है।

इस रोग को तीन प्रकार से विभाजित किया जा सकता हैः

1. जिसमें सुबह उठने पर कोई जलन नहीं रहती है। परन्तु दिन में बढ़ने के साथ जलन बढ़ती जाती है।
2. जिसमें जलन दिन–रात हर समय समान रूप से बनी रहती है।
3. जिसमें कुछ दिन तक रोगी सामान्य रहता है। उसे कोई जलन नहीं होती है। किन्तु इसका समय निश्चित नहीं होता।

कारक

संभावित कारकों को 4 प्रकार से विभाजित किया जा सकता है।

1. मुख से संबंधित कारक
2. शरीर से संबंधित कारक
3. मानसिक कारक
4. तंत्रिका संबंधित कारक

1. **मुख सम्बन्धी कारक**

मुख सम्बन्धी कारक अभी तक अस्पष्ट है तथा विवादित भी है।

प्रमुख कारण नकली दाँतो का ढीलापन।

मुख में लार का कम बनना, लार का गाढ़ा हो जाना।

मुँह में एच. पाइलोरी जीवाणु तथा कैंडिडा नामक कवक का संक्रमण।

2. **शरीर सम्बन्धी कारक**

हार्मोन की गड़बड़ी विशेषकर इस्ट्रोजेन नामक हार्मोन की कमी जो कि महिलाओं में मुख्य रूप से होती है।

मधुमेह से पीड़ित रोगियों में यह बीमारी 10–37 प्रतिशत लोगो में पाई जाती है। शर्करा की मात्रा अधिक होने से तंत्रिकाओं का क्षय तथा रक्त का

प्रवाह कम होने लगता है। जिसके कारण भी मुँह में जलन हो सकती है।

कभी–कभी हर्पीज नामक विषाणु भी इस रोग में सहायक पाया गया है।

शरीर में खून की कमी (एनीमिया) तथा रक्त सम्बन्धी रोग भी मुँह में जलन कर सकते हैं।

पोषक तत्वों जैसे विटामिन तथा खनिज लवणों की कमी से भी जलन हो सकती है।

थायराइड हार्मोन की कमी से भी मुँह में जलन तथा स्वाद परिवर्तन हो सकता है।

कुछ दवाएं भी मुँह में जलन पैदा कर सकती हैं जैसे–एण्टीरेट्रोवायरल, एण्टीकोलिनर्जिक, एण्टी कोआगुलेण्ट आदि। इसलिए दवाएं बदलना आवश्यक हो जाता है।

3. मानसिक कारक

कई शोधों में यह भी पाया गया है कि चिन्ता, निराशा तथा अन्य मानसिक रोग भी इस बीमारी से सम्बन्धित हैं।

तनाव के कारण मुक्त मूलक (फ्री रेडिकल) पैदा होते हैं तथा शरीर में स्टीरायड हार्मोन (कोर्टिसॉल) की मात्रा में वृद्धि हो जाती है जिसके कारण स्वाद परिवर्तन हो जाता हैं एवं मुँह में जलन भी हो सकती है।

रात के समय मुंह की जलन का कम होना तथा दिन के समय जलन का बढ़ना, इस रोग के मानसिक कारणों का परिचायक है।

4. तंत्रिका सम्बन्धी कारक

नये शोधों से यह भी पता चला है कि तंत्रिकाओं में गड़बड़ी की वजह से भी मुँह में जलन हो सकती है। इन मरीजों के खून में इण्टरल्यूकिन–6 (IL-6) की मात्रा कम पाई गई है जो कि इस रोग का एक कारण हो सकता है।

निदान

मरीज से सम्पूर्ण जानकारी लेना, इस बीमारी के निदान में अति महत्वपूर्ण है।

रोगी के मुँह में दर्द या जलन का लगातार या रूक–रूक कर होना, मुँह के दोनों ओर जलन होना, दिन में दर्द/जलन का धीरे–धीरे बढ़ते जाना, खाते समय या सोते समय दर्द/जलन का एहसास न होना इस रोग को पहचानने में सहायक हैं। प्रयोगशाला जाँच में खून में कोई कमी या गड़बड़ी का न होना भी आवश्यक है।

उपचार

इस रोग का निदान लक्षणों के इलाज तथा मानसिक समस्याओं के समाधान पर अभिकेन्द्रित है।

मुँह में यदि लार सम्बन्धी विकार है तो उसके लिये कृत्रिम लार का प्रयोग किया जा सकता है।

लाइपोइक अम्ल के सेवन से लगभग 96 प्रतिशत मरीजों में सुधार पाया गया है। यह एक बहुत ही कारगर एण्टी आक्सीडेण्ट तथा तंत्रिकाओं के क्षय को रोकने वाला तत्व है।

मुँह में लगाने वाली एवं कुल्ला करने वाली दवाएं जैसे बेनाड्रिल लोशन एवं सुन्न करने की दवाईयाँ लाभदायक हैं।

अन्य दवाएं जैसे ट्राइ साइक्लिक एण्टीडिप्रेसेण्ट कम मात्रा में कारगर सिद्ध हुई है।

शोधों में यह भी पाया गया है कि कई प्रकार की दवाएं एक साथ प्रयोग करने से ज्यादा लाभ होता है।

कभी–कभी रोगी को हार्मोन तथा पोषक तत्व, जिसकी कमी लगे, देने से मरीज को आराम मिल सकता है।

मरीज को सांत्वना देने से भी उसे आराम मिल सकता है। क्योंकि मरीज काफी समय से परेशान रहता है एवं कई चिकित्सकों से परामर्श कर चुका होता है।

मरीज को यह तसल्ली देनी चाहिए कि यह बीमारी कैंसर के समान घातक नहीं है तथा इसे ठीक होने में थोड़ा समय लगता है। पर यह ठीक हो जाती है।

नर्सिंग व्यवसाय

डी.एल.एस. अग्रहरी

नर्सिंग महाविद्यालय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

'नर्सिंग' शब्द लैटिन भाषा के शब्द Nutricious से बना है जिसका अर्थ पालन करना या रक्षा करना और स्थिर रखना है। नर्स शब्द में प्रत्येक वर्ण की विशेषता इस प्रकार है –

N = Nobility {उच्चता}

U = Usefulness {उपयोगिता}

R = Responsibility {उत्तरदायित्व}

S = Simplicity {सादगी}

E = Efficiency {योग्यता}

नर्सिंग एक अद्वितीय व्यवसाय है। यह व्यवसाय व्यक्तियों और परिवारों के स्वास्थ्य की प्रगति, देखभाल और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का समाधान खोजता है और उसे पूरा करता है।

व्यवसाय

यह एक ऐसा पेशा है जो शुद्ध आचार संहिता से प्रेरित होकर व्यक्ति और समाज की भलाई के लिए अपनाया जाता है।

नर्सिंग संबंधी अवधारणाएँ

नर्सिंग की अवधारणाएं ''व्यक्ति, पर्यावरण, स्वास्थ्य और धायकर्म'' के साथ सम्बन्धित हैं। इन चार अवधारणाओं में परस्पर संबंध की व्याख्या ''डोनाल्डसन और क्राउली'' के वर्णन में की गयी है।

'नर्सिंग' मानव जाति के स्वास्थ्य का अध्ययन इस ज्ञान को ध्यान में रखकर करता है कि मानव जाति अपने पर्यावरण के साथ सदा क्रिया – प्रतिक्रिया में रत रहती है।

ये अवधारणाएं नर्सिंग के क्षेत्र का स्पष्ट रूप से सीमांकन करती हैं और नर्सिंग में शोध के लिए सामान्य लक्ष्य प्रदान करती हैं।

दर्शन

नर्सिंग के दर्शन के अंतर्गत विश्वास एवं सामान्य व्यक्ति के संबंध विशेषतः शिक्षार्थी, शिक्षक, ग्राहक और स्वास्थ्य, बीमार समाज, धायकर्म और ज्ञान प्राप्ति के विषय में विचार सम्मिलित हैं। क्रिश्चियन दर्शन के अनुसार नर्सिंग को दया करने का व्यवसाय कहा गया है। इसमें शामिल है– {क} स्मरण शक्ति {ख} कल्पनाशीलता {ग} सशक्त होना {घ} सम्पर्क योग्यता {ङ} बुद्धि का प्रशिक्षण {च} सावधानीपूर्वक निर्णय क्षमता {छ} परिपक्व तर्कशक्ति {ज} ज्ञान दान की योग्यता {झ} विचारों को दृढ़ता से प्रकट करना।

भावनात्मकता

एक नर्स को परिपक्व, आत्मनिर्भर और उत्तरदायी व्यक्ति की भांति आचरण करना चाहिए। उसे लोगों के साथ नम्रतापूर्वक व्यवहार करना अनिवार्य है।

सामाजिक

नर्स एक सामाजिक प्राणी है। उसे अपना जीवन अपने कर्तव्यों और अधिकारों के साथ व्यतीत करना है जिसमें सेवा कर्म भी सम्मिलित है। उदाहरण– उसे भारत में रहते हुए भारतीय समाज और संस्कृति का ज्ञान होना चाहिए।

नर्सिंग के उद्देश्य

1. नर्सों को अस्पताल एवं घर में सुचारू सेवा में दक्ष बनाना।
2. जनसाधारण के स्वास्थ्य की सेवा में स्वास्थ्य और सामाजिक पक्ष को शास्त्र और क्रियात्मक रूप में एकात्मकता स्थापित करना।
3. स्वास्थ्य और रोग की स्थिति में शरीर के कार्य करने और मस्तिष्क के सक्रिय होने के संबंध में वैज्ञानिक आधार प्रदान करना।

4. ऐसी नर्सें तैयार करना जो अपने दल के सदस्यों के साथ परस्पर सहयोग से काम कर सकें।
5. शैक्षिक और पाठ्येतर गतिविधियों के माध्यम से प्रत्येक विद्यार्थी के पूर्ण विकास के लिए अवसर प्रदान करना।
6. कुशल नेतृत्व, संपन्नता और उत्तरदायित्व को पूर्ण करने की क्षमता प्रदान करना।
7. नर्सिंग को व्यवसाय के रूप में उन्नत करना।

नर्सिंग की प्रकृति

नर्सिंग के इतिहास में फ्लोरेंस नाइटिंगल की भावना को पुनर्जीवित करने वाला एक विशेष काल उदय हो रहा है। अब इस क्षेत्र में जो अनेक प्रश्न उत्पन्न हो रहे है, यह काल उनका भी उत्तर देने में सक्षम होता जा रहा है।

नर्सिंग कला और विज्ञान दोनों है। एक व्यावसायिक नर्स अपने मरीज की गरिमा के लिए दिलोजान से कलात्मक रूप से सेवा प्रदान करती है। नर्सिंग विज्ञान है क्योंकि यह ज्ञान पर आधारित है। ज्ञान नई शोधों के साथ और तकनीक की प्रगति के साथ बदलता रहता है। एक व्यावसायिक नर्स अपने कार्य में कला और विज्ञान का सामंजस्य स्थापित करती है, मरीज को गुणात्मक सेवा प्रदान करती है जो उत्कृष्ट होती है और मरीज को लाभ प्रदान करती है।

नर्स के विभिन्न कार्य

अतीत में नर्सों की मुख्य भूमिका मरीजों की देखभाल करने और आराम पहुंचाने तक सीमित थी। किन्तु समकालीन नर्स अनेक प्रकार की परस्पर सम्बद्ध भूमिकाएं निभाती हैं जैसेः

1. ध्यान रखने वाली
2. चिकित्सा और आचार संहिता संबंधी निर्णय लेने वाली
3. रक्षक और चिकित्सा पर राय देने वाली
4. केस प्रबंधक के रूप में
5. पुनर्स्थापना करने वाली
6. विश्रामदायक
7. विचारों की संप्रेषिका के तौर पर
8. शिक्षक के रूप में

तेजी से बदलते समाज की जीवन शैली ने नयी–नयी बीमारियों को जन्म दिया है जैसे– एड्स, बर्ड फ्लू आदि। आधुनिक युग में भूमण्डलीकरण के कारण तेजी से बदलते हुए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने चिकित्सा के क्षेत्र में प्रतिदिन नये–नये उपकरण, निदान एवं चिकित्सा पद्धतियाँ आ रही हैं। ऐसे परिवेश में स्वास्थ्य सेवा विभाग में निपुण एवं प्रशिक्षित उच्च शिक्षित नर्सों की अत्यन्त आवश्यकता है। इन सब कारणों से आने वाले दिनों में नर्सिंग व्यवसाय के विस्तार के मौके हैं क्योंकि नर्सिंग व्यवसाय स्वास्थ्य सेवाओं का एक मजबूत स्तम्भ है।

बाल रोग परिचर्या के महत्वपूर्ण आयामः चुनौतियाँ एवं समाधान

पूनम ज्योति राना

नर्सिंग महाविद्यालय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

हमारे देश में माताओं एवं बच्चों की संख्या सम्मलित रूप से देश की जनसंख्या का 60 प्रतिशत है। बच्चों का इतनी बड़ी संख्या में होना और बीमारियों के लिए संवेदनशील होना एक देश और समाज को उनकी रक्षा एवं रोग से बचाव करने के लिए प्रेरित करता है। जब बच्चे बहुत छोटे होते हैं और अपना ध्यान रखने में असमर्थ होते हैं तब अभिभावक और परिजनों का दायित्व होता है कि वे बच्चों को भोजन, वस्त्र, घर, शिक्षा एवं चिकित्सकीय देखभाल इत्यादि प्रदान करें। वे बच्चों को न सिर्फ जरूरत की चीजों की आपूर्ति करते हैं बल्कि प्रेम, स्नेह, सहयोग और सुरक्षा भी प्रदान करते हैं। जब बच्चे शारीरिक या मानसिक तौर पर रोग ग्रसित हो जाते हैं तब अभिभावकों के अलावा एक परिचारिका स्वास्थ्य सेविका के रूप में उनकी सहायता करती है।

आधुनिक बाल रोग चिकित्सा

वर्तमान समय में बच्चों के स्वास्थ्य की देखभाल सिर्फ बीमारी के ईलाज पर ही आधारित न होकर, स्वास्थ्यवर्धन, रोगों से बचाव, स्वास्थ्य अनुरक्षण और स्वास्थ्य पुर्नस्थापना पर केन्द्रित है। बाल रोग परिचर्या परंपरागत तरीकों से हट कर रोग केन्द्रित देखभाल से शिशु एवं परिवार केन्द्रित हो गया है।

बाल रोग परिचर्या

बाल रोग परिचर्या, परिचर्या की वह शाखा है जो नवजात शिशु, बच्चों और किशोर की स्वास्थ्य की देखभाल पर केन्द्रित है। इसका मुख्य उद्देश्य बच्चों की संवृद्धि और विकास को बढ़ावा देना और शारीरिक, मानसिक व सामाजिक कल्याण में वृद्धि करना है।

वर्तमान में, बाल रोग परिचर्या के प्रत्यय एवं सिद्धांत

1. बच्चों एवं परिवार का पक्ष समर्थन।
2. बच्चों के लिए संवाद।
3. बच्चों की गतिविधि को सक्रिय करना।
4. बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम से सम्बंधित सूचना का प्रसार।
5. बाल स्वास्थ्य के बारे में जनता को शिक्षित करना।
6. बच्चे की देखभाल में भाग लेने के लिए लोगों को प्रेरित करना।
7. उपलब्ध संसाधनों की जाँच।
8. सहयोगात्मक देखभाल।

परिचर्या के सिद्धांत

स्वास्थ्यवर्धन, रोग से बचाव, स्वास्थ्य अनुरक्षण एवं स्वास्थ्यपुर्नस्थापना, परिचर्या के वे सिद्धांत हैं जिनके अनुपालन से परिचारिका बच्चे तथा उनके परिवार को सर्वोत्तम स्तर पर स्वास्थ्यलाभ प्रदान करती है।

1. **स्वास्थ्यवर्धन और रोगों से बचावः** परिचारिका का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह एक बच्चे चाहे वह बीमार हो अथवा किसी बीमारी के प्रति संवेदनशील हो, को जब भी आवश्यकता हो हर सम्भव सहायता दे तथा रोगों से बचाव करे।
2. **स्वास्थ्य अनुरक्षणः** परिचारिका के ऊपर स्वास्थ्य अनुरक्षण का दायित्व उन बच्चों के प्रति होता है जो स्वस्थ होते हैं अथवा जो किसी दीर्घकालीन बीमारी से ग्रसित होते हैं। किन्तु इस समय वह रोग उनकी दैनिक दिनचर्या में कोई बाधा नहीं डाल रहा होता है। उदाहरण के लिए, बच्चा जिसे मधुमेह है, परन्तु नियंत्रित है और किसी प्रकार की परेशानी नहीं हो रही हैं, इस प्रकार के बच्चों को स्वास्थ्य अनुरक्षण देने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार दिमागी रूप से कमजोर बच्चों के प्रति, जन्मजात विकृत बच्चों के प्रति परिचारिका का मुख्य कर्तव्य

माता–पिता को स्वास्थ्य सम्बन्धित जानकारी देना तथा प्रोत्साहित करना है।

3. **स्वास्थ्यपुनर्स्थापनाः** यह सिद्धांत उन बच्चों के लिए है जो रोगग्रसित हैं और अपना कार्यकलाप करने में अक्षम हैं। परिचारिका रोग की तीक्ष्णता के अनुसार देखभाल करती है और अभिभावकों को देखभाल के बारे में जानकारी व सहायता प्रदान करती है।

बच्चे एवं परिवार की देखभाल में परिचारिका का योगदान

1. **प्रत्यक्ष परिचर्याः** शिशु परिचारिका का प्राथमिक कर्तव्य बच्चे और उसके परिजनों को प्रत्यक्ष परिचर्या प्रदान करना है। एक परिचारिका शिशु का आकलन करती है तथा रोग सम्बन्धी लक्षणों की पहचान करती है। इसके अलावा वह रोग तथा रोग से हुई शिशु की स्वास्थ्यक्षति का आंकलन करती है। यह देखभाल शिशु की शारीरिक और भावनात्मक आवश्यकता को पूर्ण करता है क्योंकि यह एक योजनाबद्ध देखभाल प्रक्रिया होती है जो बच्चे पर संवेदनशील तरीके से शिशु के परिवार की संस्कृति को ध्यान में रखकर दी जाती है।

2. **रोगी को स्वास्थ्य शिक्षाः** परिचारिका द्वारा परिवार जनों को बच्चे की देखभाल सम्बन्धित दी गई शिक्षा उपचार में बहुत सहयोगी सिद्ध होती है। शिशु परिचर्या में शिक्षा देना एक बहुत ही मुश्किल काम है क्योंकि शिक्षा का महत्व तभी होता है जब परिवारजन उसे समझ सके। ये उनकी जानकारी पर निर्भर करता है। परिचारिका उन्हें बताती है कि स्वस्थ रहने के लिए क्या करना चाहिए। जो बच्चे अस्पताल में होते हैं उन्हें घर जाने से पहले परिचारिका बच्चे के माता–पिता को बच्चे के रोग और रोग सम्बन्धित देखभाल की जानकारी प्रदान करती है जिससे माता–पिता घर जाने पर बच्चे का उचित ध्यान रख सकें।

3. **रोगी का पक्ष समर्थनः** रोगी के पक्ष समर्थन से यहाँ मतलब मरीज की इच्छाओं की पूर्ति से है जिससे बच्चा और परिवार जन अपने आप को स्वास्थ्य की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल सके। एक उत्कृष्ट समर्थन के लिए परिचारिका को परिवार के संसाधनों तथा समाज और अस्पताल की स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में पूरी जानकारी होनी चाहिए जिससे यह जानकारी परिवार जनों को देकर बच्चे की इच्छा के अनुसार स्वास्थ्य सेवा जो उसके लिए लाभदायक हो का चुनाव करने में मदद मिल सके।

4. **रोग स्थिति प्रबन्धनः** इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य सेवा इस प्रकार दी जाती है जो बच्चे के लिए उपयोगी भी हो और परिवार के लिए मितव्ययी भी। रोग स्थिति प्रबन्धन एक सहयोगी प्रक्रिया है जिसमें परिचारिका विभिन्न स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यकर्ता से सामंजस्य बनाकर रखती है जिससे बच्चे की देखभाल की निरन्तरता बनी रहती है। इसकी आवश्यकता तब पड़ती है जब बच्चा रोग ग्रसित होकर अस्पताल में आता है अथवा किसी दीर्घकालीन रोग से ग्रसित होता है।

5. **बाल रोग सम्बन्धित परिचर्या में शोध कार्यः** नये कार्य करने की पद्धति अथवा रोगी की सर्वोत्तम देखभाल के लिए नये विचारों की खोज से परिचर्या के कार्य को वैज्ञानिक आधार मिलता है। शोध से कार्य पद्धति में बदलाव आता है और बेहतर बनता है।

बच्चों की स्वास्थ्य की देखभाल की प्रवृत्ति

पिछली सदी से वर्तमान समय तक स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली में आए बदलाव का मुख्य कारक समाज का बच्चों की जरूरत को समझना और उनके अद्वितीय गुणों को पहचानना है।

नवीन स्वास्थ्य देखभाल अभ्यास परिवर्तनशील है जो नई सदी के समक्ष अद्वितीय चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रही है। विशिष्ट परिवर्तनों में शामिल हैः

1. **स्वास्थ्य देखभाल लागत नियंत्रणः** स्वास्थ्य प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य सेवाओं की लागत को नियंत्रण में रखते हुए यथासंभव उच्च स्तर का सेवा प्रदान करना जिससे अस्पताल में रहने के दिनों की संख्या कम की जा सके और बच्चों को स्वस्थ एवं गुणवत्तापूर्ण जीवन दिया जा

सके। कम लागत में बच्चों को स्वस्थ जीवन देना परिचारिका के समक्ष एक बड़ी चुनौती है।

2. **रोग निवारक देखभालः** स्वास्थ्य सेवाओं को कम लागत में अधिक प्रभावी बनाने के प्रयास से एक ओर यह फायदा हुआ है कि रोग निवारक सेवाओं पर अब स्वास्थ्य कर्मियों का ज्यादा ध्यान जा रहा है। जब भी सम्भव हो, परिचारिका को बच्चों और उनके परिवार को स्वास्थ्य के बारे में जानकारी देना चाहिए जिससे कि वे अपने आप को जटिल रोगों से बचा सकें। स्वास्थ्य के बारे में शिक्षा देते समय परिचारिका स्वास्थ्य के हर एक पहलू की जानकारी दे सकती है जो घर में सफाई रखने के महत्व से लेकर बीमारियों से बचाव तक हो सकती है।

3. **देखभाल का सातत्यः** स्वास्थ्य सेवाएँ लागत प्रभावी हों और बच्चों की देखभाल कुशलतापूर्वक की जा सके, उसके लिए बाल रोग परिचारिका देखभाल के सातत्य पर निर्भर होती है। यह सातत्य–शीघ्र देखभाल व्यवस्था जो अस्पताल में दिखती, है से लेकर पुनर्स्थापना केन्द्र, घर व स्कूल में देखभाल होता है और जब बच्चा थोड़ा या पूर्णरूप से ठीक हो जाता है तब घर व प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र में देखभाल की जाती है और कुछ जाँच व उपचार के लिए फिर से अस्पताल जा सकता है। इससे सेवाओं में निरंतरता एवं लागत प्रभावी बनायी जा सकती है।

4. **जीवन की गुणवत्ता के मुद्देः** बच्चे को गुणवत्तापूर्ण जीवन प्रदान करना परिचारिकाओं के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती है। वे जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए उत्तम स्तर की सेवाएं बच्चे को देती हैं जिससे कि रोग ग्रसित बच्चे शीघ्र स्वस्थ हो कर समाज में एक उपयोगी नागरिक के रूप में वापस जा सके।

5. **दुनियाभर के बच्चों के लिए खतरेः** आपदाएँ जैसे आतंकवाद, युद्ध, प्राकृतिक आपदा, घरेलू हिंसा बच्चों की मानसिकता पर बुरा प्रभाव डालती हैं। ये बच्चों की मुकाबला करने की क्षमता को कम करती हैं और उनकी संवृद्धि एवं विकास को भी प्रभावित करती हैं। उन बच्चों में तनाव, विकार, व्यवहार समस्या और अवसाद देखने को मिलता है। परिचारिका को इन आपदाओं से बच्चों में होने वाली समस्याओं का ज्ञान होना चाहिए तथा बच्चों में जो विकार हो जाते हैं उसका आकलन करके यथासम्भव सुरक्षा और स्थिरता प्रदान करना चाहिए।

6. **प्रत्येक बच्चे एवं परिवार में विभिन्नता एवं विशिष्टताः** प्रत्येक बच्चा एवं परिवार दूसरे बच्चे व परिवार से भिन्न है। यह विभिन्नता सभ्यता की, पारिवारिक बनावट की, सामाजिक व आर्थिक स्तर की या घर के हालात की हो सकती है। इसलिए हर एक बच्चे को अद्वितीय और भिन्न मानकर स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करना चाहिए।

7. **निदान व रोग एवं विकार के उपचार में महत्वपूर्ण सुधारः** प्रौद्योगिकी और जैव चिकित्सा के क्षेत्र में जबरदस्त सुधार की वजह से रोगों एवं विकार के निदान व उपचार में काफी विकास हुआ है। सन् 1990 से आनुवंशिकी विज्ञान में और रोगों की प्रक्रिया को पहचानने में अत्यंत प्रगति हुई है जिससे जटिल रोगों का उपचार करने में अत्यंत सहायता मिली है। अब कई बीमारियों पर फतह हासिल हो गई है जो पहले लाइलाज थीं। अब बच्चे रोगमुक्त होकर सामान्य जीवन जी पा रहे हैं। लेकिन ये प्रगति अपने साथ स्वास्थ्य कर्मियों के लिए चुनौतियां भी लाई है। उदाहरणार्थ– समय से पहले जन्मे बच्चों के जीवित रहने के दर में सुधार होने के साथ–साथ चिरकालीन रोग जैसे खास अंगों का रोग और मानसिक विकास में विलंबता जैसी समस्याएं बढ़ गई हैं। इस बदलते परिवेश में एक परिचारिका को हर अवस्था के बच्चों को कुशलता के साथ सेवाएं प्रदान करने में सक्षम होना चाहिए।

8. **उपभोक्ताओं का स्वास्थ्य देखभाल के प्रति सशक्तिकरणः** बच्चे की देखभाल में परिवार जनों का एवं अभिभावकों का उतना ही महत्व है जितना परिचारिका का। आजकल के शिक्षित अभिभावक अपने तथा अपने बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति

जागरूक हैं और वे स्वयं उसका ध्यान रखना चाहते हैं। इसलिए परिचारिका का कर्तव्य है कि वह अभिभावकों को बच्चों की देखभाल में भाग लेने दे तथा स्वास्थ्य सम्बन्धित निर्णय लेने की प्रक्रिया में उन्हें शामिल करें और उनका सशक्तिकरण करें।

9. **स्वास्थ्य सेवा लाभों के अवरोधों को कम करना:** परिवार की आर्थिक दशा, संसाधनों की कमी, माता–पिता दोनों का कामकाजी होना, अज्ञानता, धार्मिक अंधविश्वास, भाषा की बाधा इत्यादि स्वास्थ्य सेवाओं को अपनाने में बाधा पैदा करते हैं। केन्द्र व राज्य सरकारें बाल विकास के लिए कई योजनाएँ चला रही हैं लेकिन उपर्युक्त बाधाओं के कारण इन सेवाओं का पूर्ण रूप से उपयोग आम जनता नहीं कर पाती है।

10. **बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा:** बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा हेतु कई राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय संगठन कार्यरत हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य – हिंसा, बाल उत्पीड़न, बाल श्रम इत्यादि से बच्चों की रक्षा करना तथा न्याय दिलाना है। ये सब मुद्दे बच्चों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। परिचारिका का कर्तव्य है कि वह बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा करे, उन्हें सम्पूर्ण संवृद्धि एवं विकास का मौका दे तथा शिक्षा एवं चिकित्सा प्रदान करे जिससे कि उनका सही ढंग से विकास हो सके।

निष्कर्ष

बच्चों का शारीरिक व मानसिक विकास होते हुए एवं रोग से मुक्त होते हुए देखकर और उनकी हर समय हर कदम पर सहायता करते हुए एक परिचारिका को अत्यंत सन्तुष्टि मिलती है। परिचारिका जिसे बाल रोग चिकित्सा में विशेष योग्यता प्राप्त है, वह अपनी परिचारिका प्रशिक्षण में प्राप्त कुशलता का पूर्णतया प्रयोग, बच्चों को उत्तम स्तर की सेवाएँ प्रदान करने के लिए करती हैं। बच्चों की उचित देखभाल करना कठिन व जटिलताओं से परिपूर्ण है। लेकिन बाल रोग परिचारिका अपने ज्ञान, बुद्धि, निष्ठा, दृढ़निश्चय और लगन से उनका सामना करती है और बच्चों को उचित सेवाएँ देती है। अन्ततः बच्चों की देखभाल करना उनका सुखदायी अनुभव होता है।

रोगी परिचर्या में एक कुशल नर्स की मूलभूत विशिष्ट योग्यताएं

ज्योति श्रीवास्तव

नर्सिंग महाविद्यालय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

नर्सिंग का परिचय

नर्सिंग को मरीजों की डॉक्टरों के द्वारा दी जाने वाली सुश्रुषा में मदद करने वाली व्यक्ति तक सीमित माना जाता है।

नर्सिंग सेवा का इतिहास मानव के अविर्भाव से जुड़ा है। विश्व में प्रथम शिशु के पैदा होते ही उसकी नर्सिंग सेवा की आवश्यकता की पूर्ति स्वयं उसके माँ के द्वारा प्रदान की गई, तभी से यह एक आवश्यक सेवा के रूप में विस्तृत होती चली गई और वर्तमान में विश्व में पूर्ण रूप से विकसित एवं एक शाखा के रूप में मान्यता प्राप्त है।

नर्सिंग के अलग–अलग आयाम

नर्सें अब अस्पताल में एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य सदस्य बन चुकी हैं। नर्स की कार्यप्रणाली में परिवर्तन होता रहता है। विज्ञान के आधुनिकीकरण से नर्सिंग व्यवसाय में भी विशेषज्ञता की जरूरत पैदा हुई है। निदान के नये तकनीक सामने आने से अस्पताल में नर्स की सेवा में ज्यादा विशेषज्ञता और परिपूर्णता आई है। नर्सिंग में उच्च विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए भारत वर्ष में कई प्रशिक्षण केन्द्र उपलब्ध हैं। जिसमें से पूरे उत्तर प्रदेश में एक राजकीय संस्थान हमारा कालेज ऑफ नर्सिंग, चिकित्सा विज्ञान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है। अस्पतालों में निरीक्षक और वार्ड नर्सों को ज्यादा जिम्मेदारियां सौंपी जाती हैं। इन जिम्मेदारियों में नर्सिंग के विद्यार्थियों का नैदानिक निरीक्षण, उनका शिक्षण, मरीजों की बेहतर देखभाल और अस्पताल के खास यूनिट को चलाना शामिल है।

अस्पतालों की जरूरत

अस्पताल में इलाज के लिए मरीज को सुविधाजनक वातावरण प्राप्त होना चाहिए और इसी वातावरण में मरीज अपना आरोग्य वापस प्राप्त करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा आरोग्य की जो परिभाषा दी गई है उसके अनुसार आरोग्य का मतलब न केवल रोग मुक्त होना है बल्कि मानसिक, सामाजिक आध्यात्मिक और शारीरिक रूप में संतुलन बनाये रखना है। इसी वातावरण में उसे नर्सों की योग्य सुश्रूषा और चिकित्सा प्राप्त होती है।

अस्पताल में यथेष्ट वातावरण निर्माण करने में नर्स की अहम् भूमिका रहती है ताकि जब मरीज चिकित्सा कराने के बाद स्वस्थ हो कर विदाई ले तो वह अस्पताल को कृतज्ञता की दृष्टि से देखे और नर्स को भी आत्मसंतोष मिले।

नर्सिंग व्यवसाय में प्राप्त होने वाले अवसरः

1. **अस्पताल में नर्सिंग सेवा**

   जब नर्सिंग को व्यवसाय की मान्यता मिली तब अधिकतर उसका प्रशिक्षण अस्पताल में ही होता था। नर्स बेडसाईड नर्सिंग, आरोग्य शिक्षण, सेवा का आयोजन पुनर्वसन और बाहरी रोगियों की सेवा में व्यस्त रहती थी।

2. **स्कूल या कालेज ऑफ नर्सिंग में सर्विस**

   नर्स स्कूल और कालेज में शिक्षिका की नौकरी भी कर सकती है।

   स्नातक या परास्नातक की उपाधि प्राप्त करने के बाद ही वह नर्सिंग कालेज में नौकरी कर सकती है। क्लीनिकल थ्योरी और प्रेक्टिकल में भी नर्सिंग क्षेत्र में शिक्षिकाओं की जरूरत पड़ती है।

3. **समाज आरोग्य में नर्सिंग सेवा**

   समाज आरोग्य केन्द्र में नर्सिंग स्टाफ को सुपरवाइजर या स्टाफ नर्स का पद मिलता है जहाँ

प्राथमिक आरोग्य केन्द्र मेडिकल कॉलेज या अस्पताल से जुड़े हो वहाँ पूछने पर आरोग्य सेवा दी जाती है।

4. **उद्योग में नर्सिंग सेवा**

औद्योगिक कार्यस्थलों पर रोगियों की देखभाल एवं दुर्घटनाओं की रोकथाम में योगदान देने का कार्य नर्स करती हैं। औद्योगिक नर्सिंग में भी निपुणता हासिल की जा सकती है।

5. **रेडक्रास सोसायटी में नर्सिंग सेवा**

रेडक्रास में अलग–अलग तरीके से नर्सिंग की प्रैक्टिस की जा रही है। सामान्यतया दो मुख्य सेवाए है : व्यवसायी नर्सें आम आदमी को आरोग्य के बारे में प्राथमिक जानकारी देती हैं तथा वे बीमार और घायलों की सेवा करती हैं।

6. **विदेश में नर्सिंग सेवा**

विदेश में अलग–अलग तरीकों से नर्सिंग सेवा दी जाती है। नर्सिंग आदान–प्रदान कार्यक्रम के तहत नर्सों को अनुभव और निरीक्षण के लिए विदेश भेजा जाता है।

7. **अन्य क्षेत्रों में नर्सिंग सेवा**

राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्र में भारतीय सरकार के अधीन नर्सिंग सलाहकार का पद सबसे उच्च पद होता है।

संस्थागत कार्य में रूचि रखने वाली नर्सों को पूर्ण समय तक काम करने की सुविधा प्राप्त है।

नर्स अस्पताल में रोगियों के अनुकूल वातावरण बनाने में सक्षम है और वह वातावरण को बेहतर बनाने में रोगियों का मार्गदर्शन करती है ताकि वे स्वस्थ रह सकें। एक नर्स रोगियों की आवश्यकताओं को पहचानती है।

सामुदायिक स्वास्थ्य एवं नर्सिंग

कमला सिंह

नर्सिंग महाविद्यालय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सामुदायिक स्वास्थ्य

समुदाय में रहने वाले लोगों का सामाजिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य।

स्वास्थ्य तंत्र– सामुदायिक स्वास्थ्य सुधार तथा स्वास्थ्य सेवायें प्रदान करने के लिए योजना, संगठन और प्रबंधन करना स्वास्थ्य तंत्र के अंतर्गत सम्मिलित है।

स्वास्थ्य होता क्या है उसे जानना अति आवश्यक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार समुदाय में रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य सुधार, स्वास्थ्य संबंधी समस्यायें एवं प्रदान की जा रही स्वास्थ्य सेवायें जो कि एक विशेष समुदाय में दी जा रही हो उसे सामुदायिक स्वास्थ्य कहते हैं।

सामुदायिक स्वास्थ्य में नर्सिंग का महत्व

नये आविष्कारों, स्वास्थ्य शिक्षा देने की नयी तकनीकों के विकास की जानकारी तथा दूसरे वैज्ञानिक और सैद्धान्तिक कारणों से अस्पताल में दी जा रही आधुनिक और प्रशिक्षित सेवाओं की सही जानकारी नर्सिंग सेवा से मिली है।

स्वास्थ्य संगठन

स्वास्थ्य को बढ़ावा देने, स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए बनाई गई योजनायें तथा योजनाओं पर कार्य कर जन स्वास्थ्य कल्याण के लिए समितियां तथा विभाग निर्धारित करना स्वास्थ्य संगठन है। यह स्वास्थ्य तंत्र का केन्द्र बिन्दु है। यह निम्न स्तर पर कार्य करता है:

केन्द्र स्तर पर स्वास्थ्य सेवाएं।

राज्य स्तर पर स्वास्थ्य सेवाएं।

जिला स्तर पर स्वास्थ्य सेवाएं।

ग्रामीण स्तर पर स्वास्थ्य सेवाएं।

शहरी क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवाएं।

स्वास्थ्य देखभाल एवं सेवाएं

समुदाय पर आधारित नर्सिंग

एक समुदाय में रहने वाले लोगों और उनके परिवार के स्वास्थ्य की देखरेख करना तथा उन्हें बेहतर स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करवाना।

समुदाय पर आधारित नर्सिंग देखभाल

व्यक्ति और परिवार

पड़ोसी, समूह मित्रगण और साथ काम करने वाले लोग

सामुदायिक लोग

जिला स्तरीय सामुदायिक लोग

राज्य सरकार

भारत सरकार

स्वास्थ्य सेवा के स्तर

प्राथमिक स्तर स्वास्थ्य देखभाल

द्वितीय स्तर स्वास्थ्य देखभाल

तृतीय स्तर स्वास्थ्य देखभाल

प्राथमिक स्तर स्वास्थ्य देखभाल

यह एक पहला स्तर है जिससे एक व्यक्ति स्वास्थ्य सुधार प्रक्रिया के लिए सबसे पहले पहुंचता है, प्राथमिक लोगों की पहुंच के सबसे निकट होता है। भारतीय स्वास्थ्य प्रणाली के अनुसार यह सुविधा पी.एच.सी. और सब–सेन्टर में प्रदान की जाती है।

द्वितीय स्तर स्वास्थ्य देखभाल

सेवाएं मुख्यतः जिला स्तरीय अस्पताल तथा कम्युनिटी हेल्थ सेन्टर में प्रदान की जाती है। यह स्वास्थ्य

सुविधाएं प्रदान करने का सबसे मुख्य स्वास्थ्य तंत्र माना जाता है।

तृतीय स्तर स्वास्थ्य देखभाल

इनमें मेडिकल कॉलेज हॉस्पिटल की स्वास्थ्य सुविधाएं आती हैं तथा इसे केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवाएं भी कहा जा सकता है। इस अस्पताल में रोगियों तथा व्यक्तियों को अधिकतम सुविधायें प्रदान की जाती हैं।

ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाएं

त्रिस्तरीय प्रणाली, जनसंख्या के आधार पर :

1. **उपकेन्द्रः** जनसंख्या मापदण्ड के अनुसार मैदानी क्षेत्र में 5000 व्यक्तियों पर तथा पर्वतीय एवं आदिवासी क्षेत्र में 3000 व्यक्तियों पर एक उपकेन्द्र स्थापित होना चाहिए।
2. **प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रः** जनसंख्या मापदण्ड के अनुसार मैदानी क्षेत्र में 30,000 व्यक्तियों पर तथा पर्वतीय एवं आदिवासी क्षेत्र में 20,000 व्यक्तियों पर एक पी.एच.सी. होना चाहिए।
3. **सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रः** जनसंख्या माप दण्डों के अनुसार मैदानी क्षेत्र में 120000 व्यक्तियों पर तथा पहाड़ी व आदिवासीय क्षेत्र में 80000 व्यक्तियों पर एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र होना चाहिए।

प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर नर्स के कार्य

प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर नर्स को प्रशासनिक, प्रबन्धकीय, शैक्षणिक, परामर्शात्मक, संगठनात्मक एवं मूल्यांकन संबंधी कार्य करने पड़ते हैं।

1. **शैक्षणिक कार्यः** स्वास्थ्य केन्द्रों पर कार्यरत नर्सिंग कर्मियों के निरन्तर प्रशिक्षण तथा सेवा कालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना। स्थानीय दाइयों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
2. **रिकार्ड का पर्यवेक्षणः** पी.एच.सी. पर रखे जाने वाले रिकार्ड तथा उपलब्ध रिकार्ड का निरीक्षण करना, आवश्यक संशोधन एवं मार्ग दर्शन प्रदान करना, रिपोर्टिंग की व्यवस्था की जांच करना तथा रिपोर्ट को सही समय पर प्रस्तुत करना एवं संबंधित विभाग या अधिकारी तक पहुंचाना।
3. **क्षेत्र कार्य का निरीक्षणः** स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं एवं स्वास्थ्य सहायक {महिला} को निर्धारित होम विजिट तथा वास्तविक रूप से की गयी गृह मुलाकात का विवरण।

   गृह मुलाकात हेतु अपनाई गई तकनीक का निरीक्षण।

   गृह मुलाकात में दी गई नर्सिंग सेवाओं की देखरेख।

   गृह मुलाकात में प्रदान की गयी स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा का विवरण।

   गृह मुलाकात की उपलब्धियां।
4. **दवाइयों के भण्डार का निरीक्षणः** भण्डार में कितनी दवाइयां उपलब्ध है तथा वे किस हाल में हैं, आधुनिक दवाइयां तथा बीमारियों से बचने के तरीकों के बारे में प्रशिक्षण देना।
5. **मूल्यांकनः** कार्य तालिका एवं किए कार्यों की तुलना करना।

   प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य

   संक्रामक रोग पर कन्ट्रोल तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं में स्वास्थ्य केन्द्रों पर उपलब्ध कर्मियों की जांच करना।

   उपयुक्त जांच हेतु चैक लिस्ट बनाना।

   स्वास्थ्य कर्मियों की प्रगति/कमी के बारे में उच्च अधिकारियों को सूचनाएं भेजना।

चिकित्सा क्षेत्र में योग का महत्व

अभिषेक कुमार

नेशनल फैसिलिटी फॉर ट्राइबल एण्ड हर्बल मेडिसिन, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चिकित्सा क्षेत्र में योग का उपयोग 'योग बहिरंग विभाग' में सन् 1980 में शुरू हुआ, जिसमें मुख्य योगी आर.एम. सेट्टीवार जी थे, जिन्होंने कई बीमारियों जैसे उच्च रक्तचाप, अस्थमा, एलर्जी, त्वचा रोग, प्रारम्भिक गुर्दा रोग आदि अन्य रोगों का यौगिक अभ्यासों द्वारा निदान किया। अब यह बहिरंग अपने विस्तृत रूप में 'स्वस्थवृत्त एवं योग विभाग' के रूप में अपनी सेवायें दे रहा है। शोध कार्यों के क्षेत्र में योग थैरेपी, पंचकर्म, यौगिक अभ्यास आदि को सम्पूर्ण करने में काय चिकित्सा, आयुर्वेद विभाग, शारीरिक शिक्षा विभाग एवं अन्य विभाग अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

योग एक ऐसी विधा है जिसके अभ्यास से व्यक्ति सर्वथा निरोग जीवन व्यतीत करता हुआ अपने मुख्य उद्देश्य समाधि को प्राप्त कर सकता है। समाधि को प्राप्त करने के लिए हठयोग व राजयोग में अनेकों विधियां बतायी गयी हैं। इन विधियों में सर्वाधिक प्रचलन आसन, षट्कर्म, प्राणायाम तथा नादानुसन्धान का है। इन अभ्यासों के द्वारा इस शरीर रूपी साधन को दृढ़ एवं परिशुद्ध कर आत्मस्वरूप को जाना जा सकता है।

आसनों के अभ्यास से शरीर में स्थित रोग, व्याधि दूर होकर स्फूर्ति एवं आरोग्यता की प्राप्ति होती है। आसनों में सिद्धासन के सिद्ध हो जाने से प्राण वायु सुषुम्ना मार्ग में संचारित होने लगता है। हठ प्रदीपिका कहती है कि सिद्धासन के समान कोई दूसरा आसन नहीं, केवल कुम्भक {श्वाँस का स्वतः बिना रोके भीतर या बाहर रूकना}, मुद्राओं में खेचरी मुद्रा के समान कोई मुद्रा नहीं एवं नादानुसंधान में अनाहत नाद के समान कोई लय नहीं है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा–बन्ध तथा नादानुसंधान का अभ्यास क्रमशः किया जाता है, तथा इन प्रक्रियाओं को करने के साथ–साथ अपनी दिनचर्या, आहार संयमन एवं प्रार्थना, समर्पण व कल्याण की भावना को ध्यान में रखते हुये हम पूर्ण रूप से स्वस्थ रह सकते हैं।

रोग तथा उनसे मुक्ति के यौगिक उपाय

उच्च रक्तचाप	–	अनुलोम–विलोम, उष्ट्रासन, योगनिद्रा
मधुमेह	–	मत्स्येन्द्रासन, योगमुद्रा
मोटापा	–	पश्चिमोत्तानासन
यादाश्त में कमी	–	भ्रामरी प्राणायाम, शशांकासन, वृक्षासन
उदर सम्बन्धी विकार	–	बज्रासन, मत्स्येन्द्रासन, भुजंगासन
फेफड़ो के विकार	–	उष्ट्रासन, ताड़ासन
जोड़ों के दर्द	–	वज्रासन
कमर दर्द में	–	भुजंगासन, शलभासन
वृक्क रोग में	–	वक्रासन, सरल भुजंगासन, नाड़ीशोधन, पगचालन

सावधानीः आसनों को योग्य व्यक्ति की देख–रेख में ही करें।

योग के क्षेत्र में इस अतिविशिष्ट कार्य प्रणाली को जन–जन तक पहुंचाने हेतु सन् 1981 में 'भारतीय योग अकादमी' की स्थापना हुई। जिसके माध्यम से कई अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन हुआ। कुछ महत्वपूर्ण संगोष्ठियों का विवरण इस प्रकार है :

सन् 1984 कॉन्फ्रेन्स ऑफ योग टुडे एण्ड टूमारो
चेयरमेन – आचार्य के.एन. उडुपा,
सचिव – आचार्य रामहर्ष सिंह

सन् 2001 सिम्पोजियम ऑन स्प्रीचुअल हेल्थ
चेयरमैन – आचार्य रामहर्ष सिंह,
सचिव – आचार्य राणा गोपाल सिंह

यह क्रम 2001 से प्रति दो वर्ष के अन्तराल पर अनवरत चल रहा है जिसमें वर्तमान निदेशक आचार्य राणा गोपाल सिंह का महत्वपूर्ण योगदान है। इस क्रम से जन साधारण, विद्यार्थियों एवं आचार्यों को बहुत लाभ है।

मरीजों के अधिकार

प्रो. यू.पी. शाही

रेडियोथेरैपी एण्ड रेडिएशन मेडिसीन, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

किसी भी अस्पताल में और विशेषकर सरकारी अस्पताल में यदि आप जाएं तो पाएंगे लंबी–लंबी कतारें या भीड़ का रेला जो बाहर से डॉक्टर के परीक्षण कक्ष तक पहुंचा रहता है। चिकित्सक के कक्ष में कौन बैठा है? यह भी पता नहीं कि मरीज की बारी कब तक आएगी, उसे कौन देखेगा। कौन परामर्श देगा उसकी बारी आने तक कितने अन्य मरीज बीच में ही कतार को ठेंगा दिखाते हैं, इसकी जानकारी नहीं रहती है। मरीजों के इंतजार कक्ष नामक कोई चीज नहीं, न गर्मी से राहत को कोई रास्ता, उससे अनेक निजी प्रश्न डॉक्टर पूछता है, वह लोगों से घिरे ही सारी भावनाओं को किनारे कर जवाब देने का प्रयास करता है। निजी बातें जो डॉक्टर एवं मरीज के बीच गोपनीयता के कानून के तहत की जानी चाहिये वह सबके सामने उजागर करता है। शारीरिक जाँच के उपरांत अन्य आवश्यक परीक्षण जैसे एक्स–रे, अल्ट्रासाउण्ड, सिटी स्कैन एवं एम.आर.आई. इत्यादि के लिए फिर जद्दो जहद शुरू हो जाती है। लंबी और अनियमित व अनियंत्रित कतारें; अनेकानेक काउंटर पर दौड़ लगाते–लगाते हिम्मत जवाब दे जाती है और मरीज सोचता है बेहतर होता बाहर ही डॉक्टर को दिखा लेता बाहर ही जांच करवा लेता इतने धक्के तो न खाने पड़ते।

भारत में चिकित्सक एवं मरीज का रिश्ता बड़ा अजीबोगरीब रहा है। चिकित्सक हमेशा रिसिविंग एंड पर होता है मरीज को ज्यादा पूछने का अधिकार नहीं है। सच तो यह है कि डॉक्टर के पास समय ही नहीं है इतना कि वह धैर्य से रोगी को सुन सके एवं उन्हें उत्तर देकर संतुष्ट कर सके। वैसे मरीजों को संतुष्ट करना भी कठिन है लेकिन संतोष प्रदान कराने की आवश्यकता तो है ही। प्रश्न उठता है कि क्या मरीजों के भी कुछ अधिकार हैं। चलिये इसकी चर्चा यहां करते हैं और यह देखें कि उनके अधिकर वर्तमान में किस अवस्था में हैं।

मानवीय व्यवहार की अपेक्षा

सर्वप्रथम मरीज तो कोई भी हो सकता है। समाज के किसी तबके का। हममें आपके बीच कहीं भी और बीमार होने से उसके भौतिक अधिकारों में कोई कमी भी नहीं आ जाती। उस व्यक्ति को यह पूरा अधिकार है कि उसके साथ मनुष्य की तरह व्यवहार किया जाय और बीमारी की हालत में तो और भी अच्छे व्यवहार की अपेक्षा की जाती है।

मरीज को डॉक्टर की उपस्थिति एवं कौन सा चिकित्सक उसका परीक्षण व निदान व उपचार करने वाला है इसकी सही जानकारी होनी चाहिए। उसे अपना चिकित्सक चुनने का अधिकार होना चाहिए। इमरजेंसी की अवस्था में अपने डॉक्टर के बारे में जानकारी होनी चाहिए। अतः आवश्यक है कि अस्पताल के विभाग में या डॉक्टर के क्लिनिक पर उपरोक्त जानकारियां पूरी स्पष्टता से प्रदर्शित हो। वहां दूरभाष या इस तरह की अन्य व्यवस्था हो जिससे मरीज एवं उसके सहयोगी आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकें। जिससे सही समय पर सुविधाएं मिल सके।

आज जब संचार क्रांति का युग है, उपरोक्त सुविधा कठिन नहीं प्रतीत होती है। आवश्यकता है जनता के प्रति मरीज के प्रति एक सहानुभूतिपूर्ण रवैये की।

अस्पताल में यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित रहे कि चिकित्सक के विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे हो सकती है, कहां से हो सकती है एवं आवश्यकतानुसार नियमित सुविधाएं उपलब्ध करवानी चाहिए। मसलन रक्त की जांच, एक्स–रे, अल्ट्रासाउंड, सीटी स्कैन, एम.आर. आई. एवं अन्य की अस्पताल में क्या सुविधा है और यदि नहीं है तो क्या शहर में या अन्य जगह यह सुविधा उन्हें मिल सकती है। बड़े अस्पताल ऐसे बाहरी सुविधाओं की तालिका भी प्रदर्शित कर सकते हैं, जिससे उनकी

विश्वसनीयता पर मुहर लग सकती है। मरीजों को विकल्प देना श्रेयस्कर साबित होगा।

मरीजों के परीक्षण एवं आवश्यक जांच के उपरांत चिकित्सकीय परामर्श की आवश्यकता पड़ती है, जिसका जिक्र स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए, एवं अस्पताल की प्रणाली को इस प्रकार चलना चाहिए कि मरीज को कम से कम खर्च उठाना पड़े। मरीजों की अधिकता व सुविधाओं की कमी के बीच में एक सामंजस्य बिठाने का प्रयास किया जाना चाहिए। जिससे केन्द्र में सभी सुविधाओं का सर्वोत्तम उपयोग हो सके। अनेक बार मरीज की शारीरिक स्थिति उसे इजाजत नहीं देती है कि वह खुद अस्पताल में अपने इच्छित चिकित्सक के पास आ सके वैसे परिस्थिति में कार्य प्रणाली में ऐसे बदलाव की आवश्यकता है कि चिकित्सक को मरीज के घर पर सुविधा पहुंचाने की इजाजत दी जाय क्योंकि अंततः मरीज की भलाई ही प्रमुख है।

अक्सर यह देखने में आता है कि मरीज का उपचार कई दिनों से चल रहा होता है परंतु उसे या उसके परिवार मित्रों को उसकी अवस्था, उपचार एवं प्रगति या गिरावट के बारे में कुछ भी पता नहीं रहता है। कई बार बीमारी बेकाबू हो जाने पर उन्हें अचानक ही इसकी खबर मिलती है, वह नहीं रहा। वह नहीं जान पाता क्या करूं या क्या ना करूं। मरीज को यह अधिकार है कि वह अपने ईलाज की पूरी जानकारी प्राप्त करे जैसे उसे कौन सा रोग हुआ है। उसका ईलाज क्या है। ईलाज पर होने वाला खर्च कितना है, कितने दिनों तक उसे अस्पताल एवं चिकित्सक की निगरानी में रहना होगा। दवाओं से यदि कोई हानि की आशंका हो तो उसका भी विवरण दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार नियमित समय पर मरीज का स्वास्थ्य बुलेटिन जारी करना या जानकारी देना चाहिए। मरीज को अपने चिकित्सक उनकी योग्यता एवं अस्पताल एवं यहां उपलब्ध सुविधाओं के बारे में जानकारी उपलब्ध होनी चाहिए। यह अति आवश्यक है एवं इससे लोगों के मन में विश्वास कायम रहता है।

गोपनीयता एवं निजता की रक्षा

चिकित्सकीय उपचार में मरीज द्वारा प्रदत्त जानकारी गोपनीय रखी जानी चाहिए। चिकित्सक एवं मरीज के बीच अनेक निजी जानकारियों का आदान प्रदान होता है, विशेषकर मरीज के विषय में जिसका सार्वजनिक होना मरीज के लिए अत्यन्त हानिकारक हो सकता है। अतः परीक्षण एक सुरक्षित एवं नितांत निजी वातावरण में सम्पन्न किया जाना चाहिए। जिससे उनके विश्वास की डोर मजबूत हो सकेगी। महिला मरीजों के शारीरिक परीक्षण के दौरान यह आवश्यक है कि उससे अनुमति लिजिये एवं एक अन्य महिला की उपस्थिति में ही मरीज चिकित्सक के बीच जानकारियों का विनिमय करें इस दौरान गोपनीयता एवं निजता की रक्षा सर्वाधिक आवश्यक है।

सेवा

मरीज को अपने ईलाज के लिए चिकित्सक एवं अन्य लोगों से सेवा पाने का हक है। बीमारी कोई भी हो, मरीज की अवस्था जो भी हो उसे स्वस्थ सेवा प्राप्त करने का अधिकार है। उसके साथ भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

वर्तमान समय में स्वास्थ्य सेवायें भी काफी महंगी होती जा रही हैं। इसके बावजूद, कई स्तर की सुविधाएं उपलब्ध हैं। चैरिटेबुल अस्पतालों से लेकर सरकारी संस्थाओं तथा कार्पोरेट निजी अस्पतालों तक। बीमार के इलाज पर होने वाले खर्च में काफी भिन्नता है। इसलिए मरीज को अपने अस्पताल एवं डॉक्टर के यहां ईलाज लेने तथा अन्य सेवाओं, सुविधाओं के लिए होने वाले पूर्ण खर्च को पूरी तरह समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार, यदि सामाजिक संस्थानों या सरकार की तरफ से यदि आर्थिक सहायता उपलब्ध है तो इसकी जानकारी मरीजों को स्पष्ट रूप से दी जानी चाहिए। सरकार के तरफ से मरीजों के ईलाज के लिए कई प्रकार की सहायता उपलब्ध की जा रही है। इससे बारे में मरीजों को बताया जाना चाहिये।

शोध एवं शिक्षा में शामिल होने की स्वतन्त्रता

विज्ञान एवं तकनीकी विकास के क्षेत्र में काफी बढ़ोतरी हुई है। इस विकास के लिए शोध की बड़ी आवश्यकता है। इसी प्रकार नए चिकित्सक की शिक्षा एवं ट्रेनिंग के लिए अस्पताल शोध लैब की तरह कार्य कराती है। मरीज कई ढ़ंग से इसमें सहयोग करते हैं परन्तु इन्हें पूरी स्वतन्त्रता रहती है कि वह किसी वैज्ञानिक व स्वास्थ्य क्षेत्र में होने वाले नवीन शोध में शामिल हो अथवा नहीं हो।

मरीजों की स्वीकृति के बिना उसे किसी रिसर्च व शिक्षा क्षेत्र में शामिल नहीं किया जा सकता है।

मरीज अपने ईलाज में शामिल चिकित्सक व अन्य कर्मचारियों के बारे में आवश्यक जानकारी भी मांग सकता है जैसे उसके ईलाज में प्रमुख चिकित्सक कौन हैं? एवं अन्य कर्मचारियों की योग्यता क्या है? अन्य शामिल कनिष्ठ चिकित्सक कौन हैं?

यदि मरीज ईलाज नहीं करवाना चाहता है तो भी उसे चिकित्सकीय सलाह पाने का अधिकार है एवं ईलाज स्वीकार कराने या इनकार कराने की अन्तिम स्वीकृति मरीज को ही होती है।

मरीज चिकित्सक एवं अस्पताल से क्या अपेक्षा रखता है

1. मरीज को अपने चिकित्सक से अपनी बीमारी, उसके ईलाज से लाभ एवं उसके खर्च के बारे में जानकारी पाने का हक है। उसे ईलाज एवं अन्य उपलब्ध उपचार के विषय में जानकारी पाने का अधिकार है। मरीज अपने डॉक्टर से उचित उपचार के बारे में निर्देशन मांग सकता है। वह अपने रिकार्ड की प्रतिलिपि व संक्षिप्त अनुबंध की कापी मांग सकता है।
2. मरीज यह अपेक्षा रखता है कि चिकित्सक व अन्य कर्मचारी उसके साथ सम्मानजनक व्यवहार करें एवं समयानुकुल ध्यान दें तथा उसकी गोपनीयता को बनाये रखा जाये।
3. मरीज को चिकित्सक द्वारा दिये गये सलाह को स्वीकार करने या इनकार करने का पूर्ण अधिकार है।
4. स्वास्थ्य सेवा की निरंतर उपलब्धता का अधिकार मरीज को है। यदि उपचार का एक भाग किसी एक चिकित्सक के द्वारा किसी जगह हुआ है तो मरीज को यह हक है कि वह अपना बचा हुआ ईलाज दूसरे डॉक्टर द्वारा दूसरे स्थान पर करवा सकता है एवं चिकित्सक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह मरीज की इच्छा का सम्मान करे।
5. सामाजिक व आर्थिक स्थिति से हट कर हर रोगी को यह अधिकर है कि उसे उपलब्ध समुचित स्वास्थ्य सेवा मिले। इसके लिए चिकित्सक व समाज दोनों को मिलकर आगे आना है एवं मरीज के इलाज में अपना पूरा सहयोग करना है।

चिकित्सक–रोगी सम्बन्ध एवं मर्यादाएं

डॉ. आर.के. उपाध्याय

चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वैश्विक क्षितिज पर अपना देश प्रगति पथ पर है, इसके सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि हुई है। विदेशी मुद्रा का भण्डारण भी उत्साहजनक है। इसके बावजूद 70 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से जीवन यापन करने के लिए बाध्य है। विकास के नाम पर जीवन जीने की मूलभूत सुविधाओं जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन, वस्त्र एवं आवास से समाज का एक बड़ा भाग वंचित है। इन अभाग्यशाली लोगों के दर्द से छुटकारा दिलाने व रोगों को दूर करने के लिए सरकारी स्तर पर गांवों व शहरों में चिकित्सक नियुक्त हैं।

चिकित्सा सेवा बड़ा पुनीत कार्य का क्षेत्र है। वैदिक काल से ही गुरू–शिष्य परम्परा रही है। चिकित्सा कार्य के लिए गुरू अपने शिष्यों को ईमानदारी से रोगी की सेवा करने की शिक्षा देते थे। यह परम्परा संहिता काल में भी कायम रही। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता एवं वाग्भट संहिता में विस्तार से वर्णित है कि गुरू अपने शिष्यों को चिकित्साशास्त्र की शिक्षा देने के पूर्व उन्हें शपथ दिलाता था कि वे विद्या प्राप्त कर गरीबों, असहायों तथा महिलाओं की चिकित्सा बिना किसी भेदभाव के करेंगे। साथ ही, मर्यादित आचरण का निर्वाह करेंगे। उसी परम्परा का अनुसरण करते हुए आज भी आयुर्वेद संकाय में स्नातक एवं स्नातकोत्तर छात्रों के लिए प्रत्येक वर्ष औपचारिक रूप से उपनयन संस्कार का आयोजन होता है जिसमें चिकित्सा क्षेत्र का ज्ञान अर्जन करने के पहले शपथ दिलाने का कार्यक्रम सम्पन्न कराया जाता है। यह एक अच्छी परम्परा है।

नव प्रवेशी छात्र एवं छात्राओं को बीएएमएस एवं एमडी (आयुर्वेद)/एमएस (आयुर्वेद) कोर्स करने हेतु आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उनका उपनयन संस्कार की परम्परा है। इस अवसर पर महर्षि चरक शपथ दिलाया जाता है वह निम्न है –

''हे द्विज! पूर्वाभिमुख होकर पवित्र अग्नि एवं विद्वानों की साक्षी में प्रतिज्ञा करो कि –

मैं अपने अध्ययनकाल में संयमी, सात्विक एवं अनुशासित जीवन व्यतीत करूंगा/करूंगी। गुरू के अधीन होकर पूर्ण समर्पित भाव से गुरू के कल्याण तथा प्रसन्नता हेतु पुत्रवत्/पुत्रीवत् आचरण करूंगा/करूंगी। मेरा व्यवहार सतर्कतापूर्ण, सेवापरायण तथा उद्दण्डता और ईर्ष्या से रहित होगा। मैं अपने आचरण में संतोषी, आज्ञापालक, विनम्र, निरन्तर मननशील एवं शांतियुक्त रहूंगा/रहूंगी। गुरू के अभीष्ट लक्ष्य के प्रति सम्पूर्ण सामर्थ्य से प्रयत्नशील रहूंगा/रहूंगी। चिकित्सक के रूप में अपनी सफलता, यश एवं अर्थ प्राप्ति के लिए मैं सदैव अपनी विद्या का उपयोग प्राणीमात्र के कल्याण हेतु करता रहूंगा/करती रहूंगी।

अत्यधिक व्यस्तता एवं विश्रांति की अवस्था में भी मैं दिन–रात रोगी की सेवा हेतु आत्मवत् तत्पर रहूंगा/रहूंगी। निज स्वार्थ एवं अर्थ लाभ के लिए किसी रोगी का अहित नहीं करूंगा/करूंगी तथा पर स्त्री एवं पराये धन की कामना नहीं करूंगा/करूंगी। अनैतिकता मेरे विचारों में भी नहीं आयेगी।

मैं सदैव मधुर, पवित्र, उचित, आनन्दवर्धक, सत्य हितकारी तथा विनम्रवाणी प्रयुक्त करूंगा/करूंगी तथा अपने पूर्व अनुभवों का उपयोग करते हुए, ज्ञान के विकास एवं नवीनतम उपलब्धि के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहूंगा/रहूंगी।

किसी स्त्री की चिकित्सा उसके पति अथवा आत्मीय की उपस्थिति में ही करूंगा। रोगी के परीक्षण के समय मेरा विवेक, ध्यान एवं इन्द्रियां रोग निदान हेतु ही केन्द्रित होगी।

मैं रोगी या उसके घर से संबंधित गोपनीय बातों का प्रचार नहीं करूंगा/करूंगी। मैं मरणासन्न रोगी की

विवेचना नहीं करूंगा/करूंगी, क्योंकि वह रोगी या उसके आत्मीयजनों को आघातकारक हो सकती है। मैं अधिकृत विद्वान होते हुए भी अपने ज्ञान की अभिव्यक्ति अहंकार के रूप में नहीं करूंगा/करूंगी, क्योंकि इससे रोगी के स्वजन अपमानित अनुभव कर सकते हैं।''

इस तरह उपनयन संस्कार के माध्यम से छात्रों को संस्कारित किया जाता है। साथ ही, विद्यार्थियों को स्नातक एवं स्नातकोत्तर उपाधि प्रदान करते समय भी शपथ दिलायी जाती है। उसी परम्परा का निर्वाह करने के लिए भारतीय चिकित्सा परिषद एवं भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने चिकित्सकों को पालन करने हेतु कुछ नीतियां निर्धारित की हैं। चिकित्सकों को उसका अनुपालन करना चाहिए। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने अपने सर्वेक्षण में यह पाया कि मात्र 30 प्रतिशत चिकित्सक सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का अनुपालन करते हैं।

भारत अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर एक विकासशील देश के रूप में जाना जाता है, लेकिन स्वास्थ्य सेवाओं पर जी. डी.पी. का 0.9 प्रतिशत से भी कम खर्च किया जा रहा है। 1980–90 के दशक में यह खर्च कुल जी.डी.पी. के 1 प्रतिशत से ज्यादा किया जाता था।

डॉक्टर रोगी का अनुपात वर्तमान समय में चिकित्सक के क्षमता से कहीं अत्यधिक रोगियों की संख्या का होना भी है। इस दबाव में चिकित्सक को जितना ध्यान प्रत्येक रोगी पर देना चाहिए उतना समय नहीं मिल पाता जिससे रोगी एवं उसके सम्बन्धित प्रायः असन्तुष्ट ही दिखाई पड़ते हैं। समय रहते सरकारी संसाधन एवं चिकित्सकों की संख्या बढ़ाकर जिला स्तर पर बने चिकित्सालयों को द्वितीयक स्तर के मानक के अनुसार एक अभियान चलाकर बनाना होगा।

जहाँ एक ओर देश सभी क्षेत्रों में प्रगति पथ पर अग्रसर है, नये–नये उपकरणों की खोज हुई है, चिकित्सा जगत भी उससे अछूता नहीं है। नये–नये आविष्कारों से रोगों पर काबू पाया जा सका है। असाध्य बीमारियों का सफल ईलाज खोज निकाला गया है। नवजात शिशु मृत्यु दर में कमी आयी है। आम आदमियों की जीवन अवधि में वृद्धि हुई है, वहीं ईश्वर का दर्जा प्राप्त स्वास्थ्य क्षेत्र के कर्मियों में चारित्रिक अवमूल्यन हुआ है।

चिकित्सा शिक्षा क्षेत्र में स्नातक एवं स्नातकोत्तर के स्तर पर पढ़ा जाने वाले पाठ्यक्रम में मानवीय संवेदना एवं मानवीय मूल्य संयुक्त विषय का समावेश होना चाहिए, साथ ही साथ जीवन एवं कार्यक्षेत्र में उसका अनुपालन होना चाहिए। सरकार के द्वारा स्थापित विभिन्न विनियामक निकायों जैसे मेडिकल कौंसिल, सी.सी.आई. एम., एन.सी.आई. एवं डी.सी.आई. द्वारा प्रत्येक स्तर पर नियमावली बनाई गयी है। लेकिन उसका अनुपालन कराने की जिम्मेदारी जिन संस्थाओं या शीर्ष पर बैठे अधिकारियों पर है उन्हें ठीक से लागू हो इसके लिए समय–समय पर आकस्मिक जांच करना एवं कड़ाई से अनुपालन कराना आवश्यक है।

चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े सभी सरकारी, प्राइवेट एवं नर्सिंग होम में कार्य करने वाले लोगों के मानक के अनुसार शिक्षा, सेलरी एवं रोगी से चार्ज किये जाने वाले शुल्क का निर्धारण करना होगा।

समय–समय पर नीतियों में संसोधन कर रोगी एवं चिकित्सकों के सम्बन्ध की विवेचना करते हुए उनसे जुड़ी हुई संस्थाओं को मानक के अनुरूप संचालन करने हेतु प्रेरित करना होगा, साथ ही इस व्यवस्था में जो उत्कृष्ट कार्य कर रहे हैं उन्हें समय–समय पर पुरस्कार देकर उनका मनोबल बढ़ाना एवं स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का वातावरण तैयार करना होगा।

चिकित्सा नीति के निर्देशक तत्वों की जानकारी स्कूल, कालेज स्तर पर दी जाय। चिकित्सा छात्रों के पाठ्यक्रम में चिकित्सा नीतियों को जोड़ा जाय। चिकित्सक और रोगी का रिश्ता गोपनीयता, विश्वास व ईमानदारी पर टिका होता है उसका निर्वाह तत्परता से होना चाहिए।

नेशनल फैसिलिटी फॉर ट्राइबल एण्ड हर्बल मेडिसिन

जनजातीय औषधियों के वैज्ञानिक अध्ययन का अतिविशिष्ट एकल राष्ट्रीय केन्द्र

डॉ. सत्यप्रकाश, डॉ. प्रवीण कुमार सिंह, डॉ. सुषमा तिवारी एवं राजीव कुमार दूबे

चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

राष्ट्रीय जनजातीय एवं वानस्पतिक औषधियों के पुरातन ज्ञान के वैज्ञानिक मूल्यांकन एवं नवीन औषधियों के अन्वेषण के लिए भारत सरकार द्वारा स्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का यह केन्द्र भारतवर्ष का एकमात्र शोध केन्द्र है, जो जनजातीय औषधियों का जी.एल.पी. (Good Lab Practice) मानदण्ड के अनुरूप चिकित्सीय परीक्षण ट्रायल एवं वैज्ञानिक विश्लेषण कर रहा है। इस केन्द्र की स्थापना विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सन् 2008 में प्रो. राणा गोपाल सिंह के कुशल निर्देशन में किया।

केन्द्र के मुख्य कार्यकारी अंगों में न्यूरोडिजनरेशन लैब, ड्रग ट्रॉयल एवं क्लीनिकल जी.एल.पी. लैब, इम्यूनो–पैथोलॉजी लैब, ट्रायल ड्रग निरीक्षण एवं गुणवत्ता इकाई तथा बहिरंग विभाग प्रमुख हैं। स्थापना के मूल उद्देश्यों की पूर्ति हेतु केन्द्र में युवा वैज्ञानिकों एवं चिकित्सा कर्मियों का विशिष्ट समूह प्रथम दृष्टया चार मानवीय विकारों मुख्यतया मोटापा, मधुमेह, वृद्धावस्थाजनित स्मृतिक्षीणता और स्त्री–मासिक धर्म निवृत्ति सम्बन्धी विसंगतियों के निराकरण एवं रोकथाम के लिए अन्वेषित की गई औषधियों का विश्लेषण एवं अनुप्रयोग परीक्षण कर रहा है।

उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त अन्य विकारों के निदान हेतु जनजातीय एवं नवीन औषधियों के विकास के लिए भी परीक्षण किये जा रहे हैं जिससे की भारतीय ज्ञान सम्पदा का राष्ट्र हित में संरक्षण एवं मानव कल्याण के लिए प्रयोग किया जा सके।

केन्द्र की स्थापना के मूल उद्देश्य

आदि जनजातीय औषधियों के प्रयोग एवं उनके संरक्षण की प्रासंगिकता सर्वविदित है। यद्यपि भारतवर्ष के मध्यभाग के जनजातीय क्षेत्रों की औषधियों का पूर्ण विश्लेषित ज्ञान एवं अवलोकन अभी कमतर है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अभिन्न ज्ञान केन्द्रों एवं इस विषय की महत्ता को विभिन्न स्तरों पर चिन्हित करने के पश्चात विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने इस राष्ट्रीय केन्द्र की स्थापना की। इस केन्द्र का प्रथम एवं मूल उद्देश्य जनजातीय औषधियों के पहचान, रासायनिक विश्लेषण, उच्च स्तरीय मानक स्थापना एवं गुणवत्ता नियंत्रण की कार्यशैली द्वारा नवीन औषधियों का विकास करना है। औषधियों के जैविक मानक स्थापना में क्लीनीकल ट्रायल एक महत्वपूर्ण एवं अंतिम निर्णायक चरण है जिसका अनुप्रयोग वर्तमान काल में चार औषधियों पर किया जा रहा है।

केन्द्र में स्थापित इकाइयाँ एवं कार्यदायित्व

इकाई 1. न्यूरोडिजनरेटिव अध्ययन एवं निद्रा प्रयोगशाला

प्रयोगशाला में प्रो. जी.पी. दूबे एवं डॉ. अरूणा अग्रवाल के सतत् निर्देशन में अनेकों प्रायोगिक तकनीकी संसाधनों की स्थापना की गई है जिनमें मुख्य रूप से निम्न उपकरण प्रयोज्य हैं:

- न्यूरोपरफेक्ट प्लस
- स्लीप केयर पाली सोम्नोग्राफी
- मल्टीपैरामीटर मानीटर
- डिजिटल मेमोरी स्कोप
- ट्रान्सक्रैनीयल डाप्लर
- अटेन्शन स्पान
- टी.एम.टी. मशीन
- ई.ई.जी. एनालाइजर
- सी.डी.ई. मशीन
- ई.एन.जी. मशीन

ब्रेन मैप मशीन

फिजियोपैक पालीग्राफ मशीन।

उपरोक्त मशीनों का कम्प्यूटरीकृत समायोजन कर विश्लेषकों की कुशल अध्ययन निरीक्षण क्रिया प्रणाली द्वारा रोगियों की विसंगतियों का अवलोकन किया जाता है तथा निदान हेतु औषधियों में गुणवत्ता सुधार किया जाता है।

इकाई 2. औषधि परीक्षण एवं क्लीनिक पैथोलॉजी प्रयोगशाला

उच्चकोटि की जी.एल.पी. कार्यप्रणाली हेतु स्थापित इस केन्द्र के अन्तर्गत नवीन उपकरणों से युक्त इस इकाई में मूख्यरूप से निम्न उपकरण स्थापित है, जिनका प्रयोग कर रोगियों के रूधिर अवयव एवं मूत्र अवयव का अवलोकन किया जाता हैः

बायोकेमिस्ट्री एनालाईजर – पूर्णतः स्वचालित

हिमेटोलॉजी एनालाईजर – पूर्णतः स्वचालित

एलाईजा एनालाईजर – पूर्णतः स्वचालित

यूरीन एनालाईजर – पूर्णतः स्वचालित

इकाई 3. इम्यूनोपैथोलॉजी प्रयोगशाला

पैथोलॉजी विभाग के सानिध्य में इस इकाई की स्थापना की गई है जिनमें विभाग के विभिन्न उपकरणों के अतिरिक्त निम्न उपकरण केन्द्र के अन्तर्गत स्थापित किये गये हैंः

एलाइजा रीडर

इलेक्ट्रोफोरेसिस

संवेदनशील सूक्ष्मदर्शी

क्रायोस्टेट

पी.सी.आर.

क्रायोसेन्ट्रीफ्यूज

इस केन्द्र के द्वारा रूधिर एवं मूत्र में हार्मोनल विश्लेषण एवं डी.एन.ए. स्तर पर होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। प्रो. उषा के निर्देशन में केन्द्र के कर्मचारियों द्वारा परीक्षण एवं विश्लेषण कर विभिन्न जानकारियों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है।

इकाई 4. रिकार्ड एवं आर्काइवल यूनिट

जी.एल.पी. के निर्धारित मानदंड़ों के अनुरूप डॉ. अरूणा अग्रवाल के कुशल नेतृत्व में केन्द्र की इस इकाई में वैज्ञानिक परीक्षण के मूल निष्कर्ष एवं सम्बन्धित सामग्रियाँ दीर्घकालीन समय से रखी जा रही है।

इकाई 5. क्षेत्रीय अध्ययन इकाई

रोगियों की पहचान एवं उनके पंजीकरण हेतु केन्द्र की इस इकाई द्वारा वर्षपर्यन्त विभिन्न क्षेत्रों में शिविर लगाकर, घर–घर प्रचार करके एवं व्यक्तिगत परामर्श द्वारा सर्वेक्षण किया जाता है एवं इसका व्यवस्थित अभियोजन केन्द्र के कर्मचारियों द्वारा किया जाता है। अब तक दस हजार से अधिक रोगियों का सफल मार्गदर्शन एवं हजारों रोगियों का विभिन्न रोग श्रेणियों में नियोजन इस समूह के द्वारा किया जा चुका है।

इकाई 6. औषधि परीक्षण एवं गुणवत्ता विश्लेषण इकाई

वानस्पतिक औषधियों का मूल गुणवत्ता अध्ययन एवं विश्लेषण करने हेतु केन्द्र की इस इकाई की स्थापना की गई है। दवाओं के निर्माण एवं उनके गुणधर्म का विश्लेषण कर उनमें अतिरिक्त गुणवर्धन सम्बन्धित कार्य इस इकाई द्वारा विभिन्न केन्द्रों के सहयोग से किया जाता है।

इस इकाई के निर्देशन में विभिन्न योग्य आयुर्वेदिक औषधि निर्माताओं द्वारा दवाओं के निर्माण जी.एम.पी. स्तर पर परीक्षण हेतु किया जाता है। प्रो. जी.पी. दूबे के निर्देशन में पिछले पांच वर्षों में चार औषधियों का निर्माण एवं प्रयोग इस इकाई के द्वारा किया गया एवं इन दवाओं का परीक्षण विश्वस्तर की विभिन्न कार्यशालाओं में पुनःस्थापित किया गया।

इकाई 7. जी.सी.पी. मेटाबोलिक वार्ड

भारत सरकार के पूर्ण निर्देशन में एवं विश्व विद्यालय के वर्तमान कुलपति पद्मश्री डॉक्टर लालजी सिंह के अवलोकन एवं सम्बंधित सहयोग के पश्चात विश्वविद्यालय का प्रथम जी.एल.पी. मेटाबोलिक वार्ड इस केन्द्र में स्थापित किया जा रहा है। इस वार्ड में 6 रोगियों का परीक्षण करने हेतु पूर्णतया विशिष्ट संसाधनों से युक्त वार्ड की स्थापना की जा रही है।

इकाई 8. बहिरंग विभाग, सरसुन्दर लाल चिकित्सालय

केन्द्र में कार्य से सम्बन्धित विशिष्ट ओ.पी.डी. की अनवरत व्यवस्था की गई है, जिसमें कुशल चिकित्साधिकारियों द्वारा सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार व शुक्रवार को रोगियों का परीक्षण एवं पंजीकरण किया जाता है। समय–समय पर रोगियों को आवश्यक परामर्श एवं परीक्षण औषधि का वितरण किया जाता है।

नेशनल फैसिलीटी के सहयोगी परीक्षण केन्द्र

एन.एफ.टी.एच.एम. के विभिन्न अध्ययनों का परीक्षण एवं कार्ययोजना के सहयोग हेतु प्रो. जी.पी. दूबे के निर्देशन में निम्न वैज्ञानिक केन्द्रों एवं विश्वविद्यालयों का चुनाव कर लिया गया है एवं सहयोगी विश्लेषण चल रहा है, जिससे कि उच्च कोटि की औषधियों का विकास किया जा सके:

जीनोम फाउन्डेशन, कलवारी, जौनपुर

एस.आर.एम. विश्वविद्यालय, चेन्नई

बैजनाथ फार्मा, पालमपुर, हिमांचल प्रदेश

वेन्कटेश फार्मा, मध्य प्रदेश

मेडिकल कालेज, भटिण्डा

शास्त्रा विश्वविद्यालय {पूर्व केन्द्र}

सी.सी.आर.एस. {आयुष}

वैज्ञानिक प्रयोगों की नवीन कार्यप्रणाली अनुसार विभिन्न कार्यों के लिए एक से अधिक परीक्षण केन्द्रों का समायोजन एवं विश्लेषण निर्देशित है। इस केन्द्र के द्वारा उपरोक्त प्रयोगशालाओं का सहयोग एवं समायोजन इसी क्रम में अनुकरणीय है।

केन्द्र की प्रमुख उपलब्धियाँ

एन.एफ.टी.एच.एम. केन्द्र के द्वारा किये गये प्रयोगों को आधार बनाकर भारत सरकार की विभिन्न संस्थाओं ने देश के विभिन्न केन्द्रों को औषधियों पर परीक्षण करने हेतु लगभग 50 करोड़ रूपये स्वीकृत किया है और अधिक परियोजनायें आवंटित करने की दिशा में प्रयासरत है। केन्द्र के द्वारा परीक्षण की गयी चार औषधियों के परीक्षण के उपर औषधियों का राष्ट्रीय स्तर पर निर्माण हेतु कार्ययोजना को मूलरूप दिया जा रहा है। भारत सरकार के औषधि परीक्षण नियामक द्वारा आठ से अधिक दवाओं के क्लीनीकल परीक्षण स्वीकृति इस केन्द्र की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है जिसमें हमारे अध्ययन निदेशक प्रो. जी.पी. दूबे का निर्देशन अति प्रासंगिक है। प्रो. जी.पी. दूबे के निर्देशन में केन्द्र के द्वारा निम्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पेटेन्ट किये गये हैं:

1. हृदय रोग एवं स्मृति विसंगति– ई.पी. 1569666
2. स्त्री रोग एवं स्मृति विसंगति–851 डी.ई.एल. 2007
3. स्मृति रोग वृद्ध विशेष – 715 डी.ई.एल. 2007
4. मधुमेह रोकथाम एवं निवारण – 666 डी.ई.एल. 2002, 4328
5. आर्थराइटिस – 317 डी.ई.एल. 2002
6. स्त्री रोग मासिक धर्म निवृत्ति–714 डी.ई.एल. 2002
7. मधुमेह एवं सूक्ष्म विसंगतियां – इन 2005/000223
8. हृदय रोग एवं अतिरिक्त विसंगतियां – 704 के. ओ.एल. 2006
9. टाइप–2 मधुमेह एवं सूक्ष्म विसंगतियां– 314 सी. एफ.आई.ई. 2007

केन्द्र के कार्यों की वैश्विक पटल पर महत्ता

कम्पीलीमेंट्री एवं अल्टरनेटिव मेडिसीन की अवधारणा वैश्विक स्तर पर विदित है एवं एलोपैथ के अतिरिक्त विभिन्न निदान पद्धतियों को पुर्नस्थापित कर विश्व समुदाय के स्वास्थ्य हितों की रक्षा करने हेतु वानस्पतिक एवं आयुर्वेदिक औषधियों के पुरातन ज्ञान के वैज्ञानिक परीक्षणों एवं वैश्विक स्वीकारोक्ति को महत्व दिया गया है। विश्व की एक वैज्ञानिक एवं विशिष्ट पत्रिका {जे.बी.सी.} में इस बात पर बल दिया गया है कि भारतवर्ष विश्व पटल पर जैविक विश्लेषणों एवं वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी उपयोगिता द्वारा वर्तमान आर्थिक विकास की दिशा में सर्वश्रेष्ठ बन सकता है। अन्वेषणों द्वारा भारतीय ज्ञान सम्पदा का दोहन भारतीय हितों को ध्यान में रखकर करने की दिशा में केन्द्र द्वारा किये जाने वाले कार्यों की महत्ता प्रासंगिक है।

सतत विकास एवं आर्थिक उन्नति हेतु भारतीय औषधीय ज्ञान का अनुप्रयोग एवं विकास अति महत्वपूर्ण

है। भारतीय भौगोलिक संरचना एवं विभिन्न संसाधनों की प्रचुरता को ध्यान में रखकर प्राकृतिक विकास हेतु जनजातीय औषधियों का उत्पादन एवं उनके निर्माण की कार्यशैली जनजाति लोगों को बिना विस्थापित किये विकास का एक मूल मंत्र है। हमारे केन्द्र के मूल उद्देश्यों को राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर निर्धारित किया गया है। वैश्विक आर्थिक एवं औद्योगिक निकाय द्वारा क्लीनीकल परीक्षण की दिशा में भारतवर्ष की पहचान एक वृहत एवं मूल केन्द्र के रूप में की गई है, जिसका आर्थिक मूल्य लगभग हजारो करोड़ है। भारत सरकार ने चिकित्सीय परीक्षण केंद्रों एवं अनुप्रयोगों को स्थापित करने के लिये विभिन्न नियामकों की स्थापना की है। इस प्रकार इस केन्द्र द्वारा किये जा रहे कार्य राष्ट्र के विकास एवं राष्ट्रहितों की रक्षा प्रणाली के अनुरूप हैं।

भविष्य योजना एवं केन्द्र का विकास

वर्तमान कुलपति पद्मश्री डॉ. लालजी सिंह जी के निर्देशन में एन.एफ.टी.एच.एम. केन्द्र का विकास एक उच्च श्रेणी के ट्राइबल मेडिसीन एवं जिनोम स्टडी के संस्थान के रूप में करने की योजना पर कार्य चल रहा है जिसके लिए भारत सरकार से रूपया 500 करोड़ आवंटित कराने हेतु कार्ययोजना प्रस्तुत की जा रही है।

वैश्विक मूल की कार्यशैली को ध्यान में रखकर विकसित किये गये इस केन्द्र को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पहचान कराने हेतु विभिन्न प्रायोगिक इकाइयों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा एम.ओ.यू. स्थापित किये जा रहे हैं। भारतीय पुरातन औषधि ज्ञान एवं उनके जैविक संरचना का विश्लेषण इस केन्द्र का मूल उद्देश्य है, जिसका अनुप्रयोग देश के पिछड़े एवं विस्थापित जनजातियों के विकास एवं राष्ट्रीय हितों के संरक्षण में किया जा सकता है।

आदि जनजातीय क्षेत्र में
सर्वेक्षण एवं परामर्श

नेशनल फैसिलीटी
लैब एवं परीक्षण

स्वास्थ्य शिविर परीक्षण
एवं औषधीय वितरण

नेशनल फैसिलीटी बहिरंग
कार्यक्रम एवं अन्वेषण अभिलेख